विद्वत परिषद द्वारा समीक्षित पत्रिका

ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 11 संयुक्तांक 44-45 अक्टूबर, 2025-मार्च, 2026

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक

कलानाथ मिश्र

जे.डी. वीमेंस कॉलेज, पटना के हिंदी विभाग में आयोजित 'समकालीन कथा साहित्य में सामाजिक प्रतिरोध' विषयक राष्ट्रीय सेमिनार का उद्घाटन करते हुए पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रो. उपेंद्र प्रसाद सिंह, बिहार राज्य विश्वविद्यालय सेवा आयोग के अध्यक्ष प्रो. गिरीश चौधरी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र की अध्यक्ष प्रो. वंदना झा, दिल्ली विश्वविद्यालय से डॉ. अर्चना त्रिपाठी, मणिपुर विश्वविद्यालय से ए. विजयलक्ष्मी, महाविद्यालय की प्राचार्य प्रो. मीरा कुमारी, हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. रेखा मिश्रा, डॉ. नलिन रंजन आदि।

अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना में आयोजित नाट्य कार्यशाला के शुभारंभ के अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ कवि आलोकधन्वा, महाविद्यालय की प्राचार्य प्रो. रेखा रानी, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के पूर्व कुलपति प्रो कृष्ण कुमार सिंह, हिंदी विभाग के अध्यक्ष और कार्यक्रम के संयोजक प्रो. कलानाथ मिश्र, विभाग के प्राचार्य डॉ. संजय कुमार सिंह, डॉ. कुमार वरुण, डॉ. विद्याभूषण, डॉ. नवीन कुमार, डॉ. भारती कुमारी, नाट्य कार्यशाला के निर्देश डॉ. कुमार विमलेंदु, कुंदन कुमार आदि।

जे.डी. वीमेंस कॉलेज, पटना में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में वक्तव्य देते हुए पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति प्रोफेसर उपेंद्र प्रसाद सिंह।

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

Peer Reviewed Journal

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

संपादक

कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

सदस्यता फार्म

एक अंक	:	150/- (डाक खर्च के साथ)
'साहित्य यात्रा' विशिष्ट सदस्यता	:	2100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	600/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	2000/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	2100/-
आजीवन सदस्यता	:	25000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)

उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। ऑन लाईन खाते में डाल दिया हूँ (रेपफरेन्स नं.) कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन नं. :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय :	

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम : रु. .... द्वारा............................

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :...

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :.................................... दिनांक :...................

दिनांक :		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्रा, पंजाब नेशनल बैंक,
एस.के. पुरी शाखा, पटना-1

खाता क्रमांक- 6236000100016263, IFSC- PUNB0623600

वेबसाईट - www.sahityayatra.com

यहाँ से काटिए

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

(पीयर रिव्युड जर्नल)

वर्ष-11 संयुक्तांक-44-45 अक्टूबर-मार्च, 2026

परामर्शी
डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित
डॉ. प्रेम जनमेजय
डॉ. हरीश नवल

सम्पादकीय सलाहकार
श्री आशीष कंधवे

समीक्षक मंडल
प्रो. शैलेन्द्र कुमार चौधरी
संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय
(पूर्व विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, कॉलेज ऑफ कॉमर्स)

प्रो. प्रतिभा सहाय
(पूर्व आचार्य, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग)

डॉ. सुजीत दूबे
(अध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, ए.एन. कॉलेज, पटना)

उप-संपादक
डॉ. करुणा पीटर 'कमल'

सहायक संपादक
डॉ. अमित कुमार मिश्रा

कार्यालय सहयोग
प्रिया कुमारी

साज-सज्जा
निशिकान्त / मनोज कुमार

संपादक
कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है। पत्रिका में प्रकाशित किसी भी आलेख का पुनार्प्रकाशन के पूर्व संपादक की अनुमति अनिवार्य है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा का साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा पूर्व अनुमोदित

विद्वत परिषद् द्वारा समीक्षित पत्रिका

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)

मोबाइल : 8434880332/09304302308/09835063713/9546138889

ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com

वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹100/- (एक सौ रुपये मात्र)

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, शालीमार स्टूडियो के पास, सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क '**साहित्य यात्रा**' के नाम पर भेजें।

'**साहित्य यात्रा**' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : प्रो. कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

आलेख

संस्कृत-ग़ज़ल का उद्‌भव और विकास 17
प्रो. (डॉ.) बहादुर मिश्र

डॉ. रामदरश मिश्र की गजलें 27
डॉ. अमर कांत कुमर

अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र के जन्मप्रसंग 40
प्रो. (डॉ.) प्रतिभा राजहंस

तुलसी के शुभंकर 45
कृष्ण बिहारी पाठक

'साये में धूप' के पचास साल और दुष्यंत कुमार की गजलधर्मिता 52
डॉ. अविनाश भारती

सभ्य (?) समाज को सौंपा गया एक त्याग-पत्र 59
राजेन्द्र सिंह गहलौत

'ठीकरे की मंगनी' में स्त्री 63
डॉ. अनीश के.एन.

उदय प्रकाश : अभिनव शिल्प-संरचना और विलक्षण कथ्य-संदर्भ का अकेला कथाकार 71
डॉ. संजय कुमार सिंह

हिमांशु श्रीवास्तव : यथार्थवादी कथाकार 80
डॉ. जीतेन्द्र वर्मा

पुस्तक समीक्षा

मृत्युंजय (मराठी) 87
डॉ. दीपा श्रीवास्तव

मेरे हिस्से का आसमान 95
संदीप तोमर

कहानी

ये कैसा अपराध 99

सुधा गोयल

आलेख

अल्पना मिश्र के उपन्यास में समाज 106

प्रो. अमिता तिवारी

जिंदगी का अनुवाद है आसिफ रोहतासवी की गजलें 115

डॉ. अमित कुमार मिश्रा

नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में व्यक्त मुक्ति की चेतना 124

आनंद दास

हाशिए से न्याय तक : 'जय भीम' में आदिवासी संघर्ष 132

नेहा जॉनी

रामकथा साहित्य में प्रचलित मुस्लिम रामायण 138

दीपेंद्र कुमार शर्मा

यात्रा संस्मरण

आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव उनवांस की यथा कथा 150

अश्विनी कुमार आलोक

दस्तावेज

श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता 160

प्रो. रामअवध द्विवेदी

विषयांतर 167

श्री फणीश्वरनाथ रेणु

सम्पादकीय

स्वर के स्वर्ण युग का साहित्य में अवदान

हिंदी सिनेमा गीतों का स्वर्ण युग कला और साहित्य का अमर संगम रहा है।

आशा गणपतराव भोसले के पंचतत्व में विलीन होने के साथ ही भारतीय संगीत जगत के एक स्वर्णिम युग का अंत हो गया। जब-जब कोई महान स्वर मौन होता है, तब केवल एक कलाकार का अंत नहीं होता, बल्कि एक पूरे युग की धड़कन थम जाती है। आशा भोसले के जाने के साथ ही मानो वह स्वर्णिम संगीत अपनी अंतिम साँसें गिनने लगा, जिसकी नींव संगीत साम्राज्ञी लता मंगेशकर, मोहम्मद रफी, मुकेश, किशोर कुमार, हेमंत कुमार, मन्ना डे, वाणी जय राम, सुमन कल्याणपुरी, आशा भोसले, गीता दत्त, जैसे अमर साधकों ने रखी थी। यह वह कालखंड था, जब संगीत केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि आत्मा की अभिव्यक्ति थी। एक सांस्कृतिक चेतना, जो शब्द और स्वर के अद्‌भुत संयोग से जन्म लेती थी।

वह समय 'स्वर्ण युग' इसलिए नहीं था कि केवल महान गायक और संगीतकार थे, बल्कि इसलिए भी कि गीतों के पीछे गहरी साहित्यिक चेतना विद्यमान थी। शैलेन्द्र, साहिर लुधियानवी, मजहरूल सुल्तानपुरी, कैफी आजमी, नीरज, ईन्दीवर, गुलजार, भरत व्यास, सी. रामचंद्रण, (दक्षिण भारत के थे पर हिन्दी में लिखते थे) भूपेंद्र, राजा मेहदी, अली खान (झुमका गिरा रे गीत के रचनाकार), वर्मा मल्लिक, समीर अनजान, योगेश, राजेंद्र कृष्ण, संतोष आनंद- (एक प्यार का नगमा है मौजों की रवानी है) जैसे- गीतकार किसके हृदय को स्पंदित नहीं कर देते हैं।

ऐसे गीतकारों ने गीतों को कविता का दर्जा दिया। उनके शब्दों में जीवन की जटिलता, प्रेम की मार्मिकता और समाज की विडंबनाएँ एक साथ झलकती थीं। यही कारण था कि उस दौर का संगीत सुनते समय श्रोता केवल धुन नहीं, बल्कि अर्थ और अनुभूति के गहन संसार में प्रवेश करता था।

उस युग के संगीतकार थे - शंकर जयकिशन, कल्याण जी आनंद जी, शालिनी चौधरी, अनिल विश्वास, हेमंत कुमार, एस.डी. बर्मन, आर.डी. बर्मन रवि, नौसादर, रौशन, ओ.पी. नैयर, मदन मोहन आदि। इन्होंने समाज को बहुत कुछ दिया। हिंदी जगत उनके प्रति ऋणी रहेगा। हिंदी के प्रसार में सिनेमा के योगदान को हमें नहीं भूलना चाहिए।

आज जब हम इस युग के अंत की बात करते हैं, तो यह केवल व्यक्तियों का क्षय नहीं, बल्कि संवेदनशीलता की उस परंपरा का क्षरण भी है, जिसमें कला और साहित्य एक-दूसरे के पूरक थे। वर्तमान समय में तकनीक ने संगीत को सहज और व्यापक बना दिया है, परंतु कहीं-न-कहीं वह आत्मीयता, वह साहित्यिक गहराई, वह सांगीतिक साधना दुर्लभ होती जा रही है। शब्द अब त्वरित उपभोग की वस्तु बनते जा रहे हैं, और स्वर क्षणिक लोकप्रियता के शोर में खोते प्रतीत होते हैं। 'मनुष्य की भावनाएँ जब शब्दों का रूप लेती हैं और सुरों के पंख लगाकर उड़ती हैं, तो वह साहित्य बन जाती हैं।'

यह स्थिति केवल संगीत तक सीमित नहीं है। साहित्य के क्षेत्र में भी वही संकट दिखाई देता है। जहाँ पहले रचनाएँ समय की कसौटी पर कसकर अमर होती थीं, वहीं आज तात्कालिकता और बाजारवाद का दबाव रचनात्मकता को प्रभावित कर रहा है। जैसे संगीत में राग की साधना कम होती जा रही है, वैसे ही साहित्य में भाषा और विचार की तपस्या दुर्लभ होती जा रही है।

साहित्य वह कला है जो शब्दों को अपने साधन के रूप में उपयोग करती है। साहित्य एक-दूसरे से संवाद करने, अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने में मदद करता है।

संगीत अभिव्यक्ति के सबसे शानदार माध्यमों में से एक है। मानव जाति विचारों, भावनाओं को व्यक्त करने में सक्षम है। उनकी अलग-अलग संवेदनाएं संगीत के लय में ढल कर और अधिक प्रभावी हो जाती हैं, उसका साधारणीकरण हो जाता है। स्वर्ण युग के गीतकार वास्तव में उच्च कोटि के कवि थे। साहिर लुधियानवी की तल्खी, मजरूह सुल्तानपुरी की रुमानियत, शैलेंद्र की सादगी और गुलजार की प्रतीकात्मकता ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। कैफी आजमी और नीरज जैसे मनीषियों ने गीतों में दर्शन पिरोया।

संतोष आनंद का 'एक प्यार का नगमा है' जीवन की नश्वरता और प्रेम की शाश्वतता का प्रतिबिंब है।

राजा मेहदी अली खान ने 'झुमका गिरा रे' जैसे गीतों से लोक संस्कृति को मुख्यधारा में लाया।

भरत व्यास, इंदीवर, योगेश और राजेंद्र कृष्ण ने शब्दों को वह शक्ति दी कि गीत केवल सुनने की वस्तु न रहकर 'भावों का आंदोलन' बन गए।

संगीत ध्वनियों, धुनों और लय की प्रणाली है। संगीत भावनाओं को सही दिशा देकर व्यक्ति को अपने दुखों से मुक्ति पाने में मदद करता है। तभी तो कहा गया है-

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥

साहित्य, संगीत और कला से विहीन मनुष्य साक्षात् पूँछ और सींघ रहित पशु के समान है। और यह पशुओं का भाग्य है कि वो उनकी तरह घास नहीं खाता।

संगीत और साहित्य ने अनेक प्रकार के संबंधों का अनुभव किया है और करते आ रहे हैं। संगीत के भीतर साहित्य समाहित है इसलिए संगीतकारों के माध्यम से साहित्य भी सृजित होते रहा है। केवल इसलिए कि वह सिनेमा से जुड़ा है, उसका महत्व कम नहीं हो जाता। संगीत प्रेमी लेखकों के माध्यम से साहित्य और समाज को बहुत कुछ मिला है। एक ऐसा परिदृश्य जो समृद्ध और विविधतापूर्ण है, जिसमें शायद कुछ प्रकार के संबंधों को अलग-अलग पहचानना भी आवश्यक होगा।

"संगीत और काव्य दोनों नाद आधारित कलाएँ है। संगीत स्वर प्रधान है, काव्य शब्द प्रधान। दोनों के मूल में नाद है। भाव दोनों का प्राण हैं। काव्य और संगीत दोनों एक-दूसरे से इतनी गहराई से जुड़े हैं कि इनको अलग करना कला की आत्मा को नष्ट करने जैसा होगा। संगीत अर्थबोध के लिए काव्य का सहारा लेता है और काव्य प्रभाव वृद्धि के लिए संगीत का"।

पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ने कहा है कि देह के साथ आत्मा का जो संबंध है, वही संगीत का कविता से संबंध है। मूल रूप से गीत सामान्य तौर पर छंद और लय का साहित्य है। डॉ. शरतचंद्र श्रीधर परांजपे कहते हैं "संगीत नाद प्रधान साहित्य है और साहित्य शब्द प्रधान संगीत है"।

हिन्दी साहित्य के छायावादी कवियों के द्वारा रचित काव्य का प्रमुख आकर्षण भी उनकी संगीतमयता ही है। हिन्दी साहित्य का छायावादी काल 1918 से 1936 तक माना जाता है। छायावाद हिन्दी साहित्य की वह काव्य धारा है, जिसमें प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। लक्षणा व व्यंजना शब्दशक्ति के प्रयोग के साथ-साथ स्थूल पर सूक्ष्म को स्थापित किया गया है। हालांकि आरम्भ में छायावाद एक व्यंग्यात्मक संबोधन था, उस नई विचारधारा के लिए, जिसमें कल्पना तत्व का विशेष महत्व था। इसका एक विशेष कारण अंग्रेजों की गुलामी थी। जहाँ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नहीं थी। इसलिए छायावादी कवि, जो गुलाम भारत की युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, ने भारतीय जनता को स्वतंत्रता के लिए ऊर्जान्वित करने के लिए व उनका आह्वान करने के लिए एक सांकेतिक शैली की खोज की, जिस पर पाश्चात्य रेनेसा शैली का भी प्रभाव था।

तत्कालीन हिन्दी के कई आलोचकों, यहाँ तक कि रामचंद्र शुक्ल ने भी उनके इस महत्व को पूर्णतः न पहचानकर लगभग उसकी खिल्ली उड़ाते हुए छायावाद नाम दे दिया। यह नाम कालांतर में नई धारा के कवियों द्वारा पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया।

जयशंकर प्रसाद ने मोती की चमक और शब्दों की चमक की समानता बताते हुए यह सिद्ध किया कि कविता में संकेत और ध्वनि ही उसे उच्चस्तरीय कविता बनाती है। अर्थात व्यंजना अथवा ध्वन्यात्मकता के कारण ही कविता में गहन से गहनतम् अर्थ व्याप्त रहता है, जो छायावाद के काव्य में पाया जाता है।

इस तरह छायावाद शब्द सर्वमान्य हो गया, उसे रामचंद्र शुक्ल ने विशिष्ट शैली का काव्य कहा। संक्षेप में कहें तो मानवीकरण, प्रतीकात्मकता, ध्वन्यात्मकता, बिम्बात्मकता, विशेषण विपर्यय आदि छायावादी कविता की विशेषता के अंतर्गत आते हैं।

यहाँ यह उल्लेख इसलिए कर देना आवश्यक था कि संगीत छायावादी कविता का सहजात गुण एवं अन्तरंग तत्व है। लय की थिरकन तो इसमें सर्वत्र द्रष्टव्य है। छायावादी काव्य की उत्कृष्टता, प्रभावशीलता एवं हृदयस्पर्शिता का मूलाधार संगीत ही है। इसमें संगीत का नैसर्गिक समावेश जहाँ पाठक को रसानुभूति कराता है, वहाँ अलौकिक आनंद की भी अनुभूति कराता है। इस धारा के काव्य में संगीत की अबाधित धारा निरन्तर प्रवाहित हुई है।

महादेवी ने मेरा पग-पग संगीत भरा जैसी पंक्तियों की रचना करके छायावादी काव्य में पग-पग पर संगीत का ही संकेत किया है। संगीत लहरी की मधुर गूँज छायावादी काव्य के लिए श्रृंगार ही नहीं वरन् उसके वैशिष्ट्य का भी द्योतक है। संगीत और छायावादी काव्य दोनों ही सूक्ष्म, रहस्यमय एवं सुकुमार हैं। अतः समानधर्मा होने के कारण संगीत का छायावादी काव्य में अनुस्यूत हो जाना स्वाभाविक है।6

छायावादी कवि संगीत की आत्मा से परिचित थे। उन्हें काव्य रस का ही बोध नहीं था, संगीततत्वों, वाद्ययन्त्रों, राग-रागनियों और नृत्यभेदों का भी ज्ञान था। उन्होंने रस के अनुरूप स्वर और राग, भावाभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त संगीततत्वों, राग-रागनियों एवं वाद्ययन्त्रों का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने शैली के उस रूप को अपनाया, जिसमें संगीत स्वतः मुखरित हो जाता है।

---

1. प्रो. विश्वनाथ प्रसाद, कला एवं साहित्य-प्रवृत्ति और परम्परा, पृ.-16
2. संगीत पत्रिका, हाथरस से प्रकाशित, मई 1951, कविता और संगीत
3. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव (संपादक), संगीत निबंध संग्रह ''साहित्य और संगीत'' पृ.-75

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद के काव्य में जहाँ आकार की लघुता, लालित्य, सरसता, माधुर्य, प्रवाह एवं लयात्मकता आदि संगीतोपयोगी विशेषताएँ विद्यमान है, वहाँ भाषा और शैली भी संगीतानुकूल है। प्रसाद की रचनाओं-चित्रधार, काननकुसुम, झरना, आँसू, लहर और कामायनी आदि में संगीत तत्व प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। वहीं सुमित्रनंदन पंत कविता में भाव संगीत और भाषा संगीत के प्रस्फुटन को आवश्यक मानते हैं। इसलिए उनकी काव्य कृतियों में संगीत तत्वों का सहज समावेश हुआ मिलता है।

महादेवी के काव्य में शब्द संगीत और स्वर संगीत का बड़ा अनूठा मिश्रण है। उन्होंने स्वयं स्वर के साथ सार्थक शब्दावली की संगति पर बल दिया है। इनके काव्य में संगीत के वाद्ययंत्र, रागोल्लेख तथा नृत्य वर्णन द्वारा भी संगीत तत्वों की अभिव्यंजना हुई है। इसके साथ ही निराला की आत्मानुभूति को सहज अभिव्यक्ति देने में संगीत तत्वों ने बहुत अधिक सहयोग दिया है। निराला के काव्य में जहाँ नादाश्रित माधुर्य, रागात्मकता, कोमल व मधुर शब्दावली, राग-रागिनी की सम्यक योजना आदि संगीत तत्वों की अभिव्यक्ति में सहायक हैं, वहाँ गायन, वादन व नृत्य संबंधी उल्लेख संगीत तत्वों के अभिव्यंजक है। निराला के काव्य में भाव के अनुरूप लय तथा संगीत का प्रयोग किया गया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार निराला के काव्य में संगीत तत्वों की अतिशयता है, इसलिए उनका काव्य संगीत के अधिक निकट है। इनके अतिरिक्त अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि कलमकारों ने अपने काव्य क्षीर में संगीत मधु को बड़ी कुशलता से घोला है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है। .... छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। ......छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत की कथन।'

छायावादी कवियों ने अपनी काव्य-रचनाओं में संगीत से संबंधित शब्दावली, जैसे नाद, स्वर, राग-रागिनी, लय, ताल और तान का व्यापक और कलात्मक उपयोग किया। इसके परिणामस्वरूप उनके काव्य का सौन्दर्य अत्यधिक निखरा, उसकी मर्मस्पर्शिता गहन हुई तथा उसकी लोकप्रियता में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई।

---

4. कौशल नंदन गोस्वामी- छायावादी काव्य में संगीत तत्व, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ. - 09
5. कौशल नंदन गोस्वामी- छायावादी काव्य में संगीत तत्व, प्रकाश बुक डिपो, बरेली, पृ. दृ 10
6. हिन्दी साहित्य के छायावादी कवियों का संगीत पेम डॉ. अमित कुमार वर्मा असिसटेन्ट प्रोफेसर, संगीत भवन विश्व भारती, शन्तिनिकेतन

जब कलाकार स्वर तथा लय के माध्यम से अपने मन के भावों को अभिव्यक्त करता है तब संगीत कला का आविर्भाव होता है। संगीत सौन्दर्य का साकार एवं सजीव प्रदर्शन है तथा शब्द ब्रह्म की उपासना द्वारा स्वर ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है।

जयशंकर प्रसाद के काव्य में शब्द संगीत का अवतरण उल्लेखनीय है। स्वानुभूति की अभिव्यक्ति में वे लिखते है-

पिये हिय भरि रूप रस ये प्यासे आज
श्रुति सुधा संगीतमय हो शान्ति के सुख साज

महादेवी वर्मा का तो पग-पग ही संगीत भरा है, जिसके माध्यम से वो विराट संगीत को अभिव्यंजित करती है-

मेरा पग-पग संगीत भरा
श्वासों में स्वप्न पराग झरा
गूंथ उनकी सांसो के गीत
कौन रचता विराट संगीत

निराला अपने व्याकुल मन की अभिव्यक्ति में संगीत शब्द का प्रयोग बड़े ही निराले ढंग से करते है-

आज बह गई, मेरी वह व्याकुल संगीत हिलोर
किस दिगन्त की ओर ?

पंत ने समस्त जगत्व जीवों में संगीत की मौन अभिव्यक्ति को अनुभूत करते हुए लिखा है-

संगीत एक ही व्याप्त मौन, तृण तरू जीवों के अंतर में
वस्तुएं सभी पाती निःस्वर, अभिव्यक्ति उसी अविदित स्वर में

पंत ने राग की महत्ता को अभिव्यंजित करते हुए कहा है-

जी करता कुछ नूतन गाऊँ
प्राणों के वीणा तारों में
सोया आकुल राग जगाऊँ

राग गायन में विस्तार का महत्वपूर्ण अंग है- तान। इसका प्रयोग द्रुतगति में होता है। भारतीय संगीत में तान का वही स्थान है, जो स्त्रियों के लिए आभूषण का। संगीत में तानों का प्रयोग चमत्कारवर्धक होता है, किन्तु यह चमत्कार गायक व वादक के सुरीलेपन की सीमा तक ही उत्पन्न किया जाता है। कविताओं में तान शब्द की योजना सांगीतिक वातावरण निर्माण के साथ-साथ विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में भी उपयुक्त है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में जितना योगदान व्याकरण और पाठ्यपुस्तकों का रहा, उससे कहीं अधिक प्रभावशाली भूमिका फिल्मी गीतों की रही। अहिंदी भाषी क्षेत्रों में भी यदि आज हिंदी समझी और बोली जाती है, तो इसका श्रेय उन अमर गीतों को जाता है, जिन्होंने भाषा की सीमाओं को तोड़ दिया। दक्षिण भारत के सी. रामचंद्रण जैसे कलाकारों ने सिद्ध किया कि कला की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। सिनेमा ने हिंदी को क्लिष्टता से निकालकर उसे 'आम आदमी की बोली' बना दिया।

इन कालजयी शब्दों को लता मंगेशकर की सुरीली आवाज और मोहम्मद रफी की बहुआयामी गायकी मिली, तो इतिहास रच गया। मुकेश की आवाज में जीवन का दर्द था, तो किशोर कुमार में गजब की ऊर्जा।

'मन्ना डे' की शास्त्रीय पकड़ और हेमंत कुमार की भारी, गंभीर आवाज ने रूह को छुआ। आशा भोसले और गीता दत्त ने अपनी गायकी से हर भाव को जीवंत किया।

वाणी जयराम और सुमन कल्याणपुर की आवाजों ने उस दौर की गरिमा को बनाए रखा। इन गायकों ने गीतों को इस प्रकार जिया कि 'तोरा मन दर्पण कहलाए' जैसे बोल सुनते ही श्रोता के हृदय में आत्म-चिंतन की लहर दौड़ जाती है।

शब्दों और सुरों को पिरोने का काम उन संगीतकारों ने किया, जिन्होंने भारतीय लोक धुन और पाश्चात्य वाद्ययंत्रों का अद्‌भुत मेल कराया।

हिंदी सिनेमा के ये अमर शिल्पी समाज के प्रति अपने दायित्वों से भली-भांति परिचित थे। उन्होंने केवल मनोरंजन के लिए गीत नहीं लिखे, बल्कि सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया, देशभक्ति की अलख जगाई और प्रेम की मर्यादा सिखाई। 'बोल रे पपीहरा' जैसे गीतों में छिपी तड़प हो या 'झुमका गिरा रे' का उल्लास, ये सब हिंदी साहित्य की वह 'अमूल्य निधि' हैं, जिसे आने वाली पीढ़ियाँ हमेशा सहेज कर रखेंगी।

---

7. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
8. वही, हिन्दी साहित्य के छायावादी कवियों का संगीत

हिंदी जगत इन महान विभूतियों का सदैव ऋणी रहेगा। उनके द्वारा रचित और स्वरबद्ध किया गया यह युग वास्तव में 'स्वर्ण युग' था, जिसने करोड़ों दिलों में हिंदी के प्रति अनुराग पैदा किया। आज भी जब ये गीत गूँजते हैं, तो हृदय में सात्विक भावों का संचार होता है, जो हमें हमारी जड़ों और हमारी भाषा से जोड़े रखता है। हिंदी सिनेमा के स्वर्ण युग के संगीतकारों ने केवल धुनें नहीं बनाई, बल्कि जीवन के विविध रंगों को सुरों में ढाल दिया। उनके द्वारा रचित गीत आज भी भाव, सौंदर्य और संगीतात्मक उत्कृष्टता के अद्वितीय उदाहरण हैं। आइए, कुछ प्रमुख संगीतकारों के गीतों का विस्तार से उल्लेख करें -

नौशाद : शास्त्रीयता और भव्यता के सम्राट थे। नौशाद ने हिंदी फिल्म संगीत में भारतीय शास्त्रीय संगीत को प्रतिष्ठा दिलाई।

"मोहे पनघट पे नंदलाल छेड़ गयो रे" (मुगल-ए-आजम) - यह गीत कथक नृत्य और शास्त्रीय रागों की गरिमा का अद्भुत उदाहरण है। इसमें राग गारा की झलक मिलती है और धुन इतनी सुसंस्कृत है कि शास्त्रीयता और लोकप्रियता दोनों का संगम बन जाता है।

"मन तड़पत हरि दर्शन को आज" (बैजू बावरा) - राग मालकौंस पर आधारित यह भजन भक्ति और विरह की चरम अभिव्यक्ति है। मोहम्मद रफी की आवाज और नौशाद की धुन मिलकर इसे आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करते हैं।

एस.डी. बर्मन लोकधुन और सादगी के जादूगर थे। एस.डी. बर्मन की विशेषता थी - सरलता में गहराई।

"आज फिर जीने की तमन्ना है" (गाइड) - गीत स्वतंत्रता और नवजीवन की भावना का प्रतीक है। इसकी धुन में लोक संगीत की सहजता और आधुनिकता का सुंदर समन्वय है।

"ओ रे माझी मेरे साजन हैं उस पार" बंदिनी का यह गीत - नदी, नाव और जीवन की यात्रा का प्रतीकात्मक चित्रण इस गीत में मिलता है। यह गीत विरह और आशा दोनों को साथ लेकर चलता है।

आर.डी. बर्मन प्रयोगधर्मिता और आधुनिकता के अग्रदूत थे। आर.डी. बर्मन ने संगीत में नए प्रयोगों का युग शुरू किया।

"ओ हसीना जुल्फों वाली" तीसरी मंजिल सिनेमा का यह गीत है। इसमें पश्चिमी संगीत, जैज और रॉक का प्रभाव स्पष्ट है। यह गीत ऊर्जा और लय का शानदार उदाहरण है।

मदन मोहन दर्द और गजल के संगीतकार थे। मदन मोहन को गजलों का जादूगर कहा जाता है।

"लग जा गले कि फिर ये हसीं रात हो न हो" वो कौन थी सिनेमा का यह गीत प्रेम और विरह की चरम संवेदना को व्यक्त करता है। लता मंगेशकर की आवाज और मदन मोहन की धुन इसे अमर बना देती है।

"नैना बरसे रिमझिम रिमझिम" इसमें रहस्य, करुणा और सौंदर्य का अद्‌भुत मिश्रण है।

शंकर-जयकिशन भव्यता और विविधता के प्रतीक कहे जाते हैं। शंकर जयकिशन ने हर शैली में उत्कृष्टता दिखाई।

"आवारा हूँ" आवारा सिनेमा का यह गीत वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय हुआ और भारतीय सिनेमा की पहचान बना।

"ये मेरा प्रेम पत्र पढ़कर" संगम के इस गीत में कहाँ साहित्यिकता का अभाव है। यह प्रेम की कोमल भावनाओं को अत्यंत मधुर धुन में प्रस्तुत करता है।

ओ.पी. नैयर को लय और ठेठपन के उस्ताद कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ओ.पी. नैयर की धुनों में पंजाबी लोक और चंचलता की झलक मिलती है।

"ये है रेशमी जुल्फों का अंधेरा" (मेरे सनम) - इसमें लय और आकर्षण का अनूठा संयोजन है।

"इशारों इशारों में दिल लेने वाले" (कश्मीर की कली) - यह गीत रोमांस और चुलबुलेपन का सुंदर उदाहरण है।

इन संगीतकारों के गीत केवल ध्वनि-संयोजन नहीं हैं, बल्कि भारतीय जीवन, संस्कृति और संवेदना के जीवंत दस्तावेज हैं। हर गीत में एक कथा है, एक दर्शन है, और एक ऐसा भाव-संसार है जो श्रोता के मन को छूकर उसे आत्मानुभूति की अवस्था तक पहुँचा देता है।

यही कारण है कि हिंदी सिनेमा का स्वर्ण युग आज भी हमारे हृदय में जीवित है- इन गीतों के माध्यम से, इन सुरों के माध्यम से, और उन अमर शिल्पियों की स्मृति के माध्यम से। हिंदी सिनेमा का 'स्वर्ण युग' केवल मनोरंजन का काल नहीं था, बल्कि यह भारतीय संस्कृति, भाषा और भावनाओं का वह संगम था, जिसने हिंदी को जन-जन की भाषा बनाने में युगांतकारी भूमिका निभाई। इस युग के गायक, संगीतकार और गीतकार केवल कलाकार नहीं थे, बल्कि वे 'सरस्वती के वरद पुत्र' थे, जिन्होंने अपनी कला से समाज के अंतर्मन को झंकृत किया। साहित्य में उन्हें कम करके नहीं आंकना चाहिए। साहित्य में उनकी उपेक्षा उचित नहीं। भारतीय संस्कृति और साहित्य इन गीतों से समृद्ध हुआ है।

हर सांध्य बेला के भीतर एक नई भोर की संभावना छिपी होती है। इन महान विभूतियों की विरासत केवल स्मृति नहीं, बल्कि प्रेरणा है। यदि नई पीढ़ी इस परंपरा से सीख लेकर शब्द और स्वर के उस दिव्य संगम को पुनः स्थापित कर सके, तो यह 'अवसान' एक नए 'उदय' का प्रारंभ भी बन सकता है। अतः यह समय स्मरण और संकल्प का है कि हम उस स्वर्णिम धरोहर को केवल याद ही न करें, बल्कि उसे अपने सृजन में जीवित रखें। तभी संगीत और साहित्य की यह संयुक्त परंपरा पुनः अपने उत्कर्ष को प्राप्त कर सकेगी।

'साहित्य यात्रा' के इस अंक में डॉ. अमर कान्त कुमर का रामदरश मिश्र की गजल पर केंद्रित लेख, प्रो. बहादुर मिश्र का लेख 'संस्कृत गजल का उद्‌भव और विकास', प्रो. प्रतिभा राजहंस का 'अंगिका लोकगीतों में श्रीराम का जन्म प्रसंग', राजेन्द्र सिंह गहलौत का 'सभ्य समाज को सौंपा गया त्यागपत्र', उदय प्रकाश की कहानियों पर डॉ. संजय कुमार सिंह का लेख, डॉ. अनीश के एन का 'ठीकरे की मंगनी में स्त्री', डॉ. अविनाश भारती का 'साये में धूप के पचास साल', प्रो अमिता तिवारी का 'अल्पना मिश्रा के उपन्यास में समाज', आनंद दास का नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में मुक्ति चेतना, दीपेंद्र कुमार शर्मा का रामकथा साहित्य में प्रचलित मुस्लिम रामायण, अश्विनी कुमार आलोक का 'आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव उनवांन की यथा कथा' आदि लेखों के साथ और भी महत्वपूर्ण लेख, दस्तावेज, समीक्षा जैसे स्तंभ प्रकाशित हैं। डॉ. सुधा गोयल की कहानी 'ये कैसा अपराध' विशेष रूप से प्रकाशित की गयी है।

आशा है, पत्रिका का यह अंक पाठकों को रुचिकर और उपयोगी लगेगा।

कलानाथ मिश्र

संस्कृत-ग़ज़ल का उद्‌भव और विकास

प्रो. (डॉ.) बहादुर मिश्र

तदुपरांत ग़ज़ल उत्तर भारत में आई और देखते-देखते छा गई। मिर्जा गालिब, मीर, सौदा, ज़ौक, मोमिन, मो. इकबाल, फ़िराक गोरखपुरी जैसे-दर्जनों नाम ग़ज़ल को हरतरह से समृद्ध कर गए। इनका प्रभाव संस्कृत के कवियों पर भी पड़ा। संस्कृत के रचनाधर्मी लोगों ने ग़ज़ल के छन्दशास्त्र को आत्मसात् कर बेहतरीन ग़ज़लें रचीं। समय और संस्कृत-ग़ज़ल इस बात के साक्षी हैं कि ईसा की 20वीं सदी के द्वितीय दशक से संस्कृत-ग़ज़ल अस्तित्व में आ चुकी थी। बीसवीं सदी के प्रथम चरण में कवि-शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने फारसी छन्दःशास्त्र का गहन अध्ययन कर छोटी-बड़ी सब तरह की 'बहरों' की ग़ज़लें उनके नैसर्गिक शिल्प में ढालकर लिखीं।'' पुनश्च ''संस्कृत में ग़ज़ल-विधा की अवतारणा हिन्दी से पहले हुई। दुष्यन्त कुमार और डॉ. सूर्यभानु गुप्त जैसे हिन्दी गजलकारों के युग से दशकों पहले संस्कृत में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जैसे गजलकारों का विपुल मात्रा में सर्जन-प्रकाशन हो चुका था।

संस्कृत-ग़ज़ल के विकास-क्रम का आकलन प्रस्तुत करने के पूर्व ग़ज़ल के संस्कृत-नामकरण पर प्रकाश डालना चाहूँगा।

ग़ज़ल अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है, जिसका अर्थ प्रेमिका से वार्तालाप होता है। इसमें प्रायः 5 से 11 शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ़ और क़ाफ़िए में होते हैं और हर शेर का मज़्मून अलग होता है। पहला शेर 'मत्ला' कहलाता है, जिसके दोनों मिस्रे (मिसरे) सानुप्रास होते हैं और अंतिम शेर 'मक्ता' होता है, जिसमें शाइर (शायर) अपना उपनाम (तख़ल्लुस) लाता है। ग़ज़ल के संग्रह को 'दीवान'...और अच्छी ग़ज़ल कहने वाले को 'ग़ज़लगो' कहते हैं।''[1]

राष्ट्रपति एवं साहित्य अकादेमी द्वारा सम्मानित ग़ज़लकार डॉ. जगन्नाथ पाठक भी 'ग़ज़ल' को अरबी शब्द ही मानते हैं। द्रष्टव्य है उनका अभिमत - '' 'ग़ज़ल' इति शब्दः आरब्य भाषाया अस्ति। अस्य शब्दार्थः स्त्रिया सहैकान्तिकी वार्ता, प्रिययया साकं नर्मालाप इति। अथ च शब्दोऽयम् एकस्याः काव्यपद्धतेरपि, सूचकतां बिभर्ति।''[2] अर्थात् 'ग़ज़ल' शब्द अरबी भाषा का है। इसका अर्थ स्त्री के साथ ऐकान्तिक वार्तालाप होता है, प्रिया के साथ कोमल-मधुर संलाप।

'बृहत हिन्दी कोश' भी ग़ज़ल को स्त्रीलिंग अरबी शब्द मानते हुए यों परिभाषित करता है - ''फारसी-उर्दू में मुक्तक काव्य का

एक भेद, जिसका प्रधान विषय प्रेम होता है।''[3]

सबसे अलग हटकर कोशकार प्रो. रामसरूप शास्त्री ने 'ग़ज़ल' को 'शृंगार कविता' के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाला स्त्रीलिंग फारसी शब्द माना है।[4]

प्रो. शास्त्री ने 'गज़ल़' को, न जाने, किस आधार पर फारसी का शब्द माना। यह सही है कि ग़ज़ल अरबी का शब्द है, किन्तु इसका लालन-पालन फारसीभाषा देश ईरान में हुआ। ईरानी शायरों ने क़सीदे (व्यंग्यात्मक, प्रशंसात्मक, शोकगीत या धमकी के अर्थ में प्रयुक्त होनेवाली अरबी कविता। इसमें प्रायः 17 पंक्तियाँ होती हैं। अधिक की कोई सीमा नहीं। इसके कई प्रकार माने गए हैं; जैसे- तश्बीब, गुरेज़, मदह, दुआ इत्यादि।) की 'तश्बीब' को स्वतंत्र छन्द का रूप देकर ग़ज़ल का नाम दे दिया। कहते हैं, फारसी के आदिकवि 'रुदकी' (ईसा की 10वीं सदी) के समय ग़ज़ल-लेखन शुरू हो गया था। इसे नया परिधान पहनाने का काम 'सिनाई' (12वीं सदी) ने किया। उन्होंने इसे न केवल भाव की गंभीरता दी, अपितु परिनिष्ठित भाषा भी। कालक्रम में फ़रीदुद्दीन अत्तार, मौलाना रूमी, ईराक़ी, शेख सादी, हाफ़िज सिराजी प्रभृति शायरों ने इसे पल्लवित-पुष्पित किया।

इधर भारतीय शायरों- अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) और हसन देहलवी (1253-1327 ई.) ने भी इसकी ख़ुमारी को बढ़ाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी।

दक्खिनी (दकनी) हिन्दी में ग़ज़ल को परवान चढ़ाने वालों में मु.कुली क़ुत्ब शाह (1564/1566-1612/1611 ई.) तथा वली मुहम्मद (1682-1730 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं।

तदुपरांत ग़ज़ल उत्तर भारत में आई और देखते-देखते छा गई। मिर्जा गालिब, मीर, सौदा, ज़ौक, मोमिन, मो. इकबाल, फ़िराक गोरखपुरी जैसे-दर्जनों नाम ग़ज़ल को हरतरह से समृद्ध कर गए। इनका प्रभाव संस्कृत के कवियों पर भी पड़ा। संस्कृत के रचनाधर्मी लोगों ने ग़ज़ल के छन्दशास्त्र को आत्मसात् कर बेहतरीन ग़ज़लें रचीं। समय और संस्कृत-ग़ज़ल इस बात के साक्षी हैं कि ईसा की 20वीं सदी के द्वितीय दशक से संस्कृत-ग़ज़ल अस्तित्व में आ चुकी थी।

ग़ज़ल के नामकरण को लेकर भी संस्कृत-गजलकारों में मतान्तर है। भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, जगन्नाथ पाठक तथा राधावल्लभ त्रिपाठी ने ग़ज़ल को 'गजलगीति' की संज्ञा दी। इनमें त्रिपाठी जी ने 'ग़ज़ल' को परिभाषित करते हुए लिखा - ''द्विपादिकाभिर्निबद्धा गीतिर्गजलमुच्यते'', अर्थात् दो पादों में निबद्ध रचना गीतिगजल कहलाती है, अर्थात दो चरणों में निबद्ध गीति गजल कहलाती है।

आगे उन्होंने 'गजलगीति' के व्याकरण पर प्रकाश डाला; यथा - ''गजले प्रत्येकं पादयुगलं शेर इत्यभिधीयते। प्रथमा द्विपदी प्रारम्भिकी मतलेति वा कथ्यते। द्विपद्या एकं चरणं च मिसरा इति कथ्यते। प्रतिगजलं पञ्च वा पञ्चाधिकानि वा पादयुगल स्युः। गगग प्रतिपादयुगलमुत्तरपादे एकः द्वौ त्र्यो वा शब्दा आवर्तयन्ते इमं अन्त्यश्रुतिः (रदीफ) इत्यभिधीयते। रदीफात् प्राक् उपान्त्यश्रुतिः (काफिया) वितन्यते।..अन्तिम पादयुगलं 'मक्ता' इति कथ्यते। मक्तायां कविः प्राय आत्मनाम उपनाम वा कीर्तयति।''[5]

अर्थात् ग़ज़ल में प्रत्येक पादयुगल को शेर कहा जाता है। प्रथम चरण-युगल, अर्थात् शेर 'मत्ला' कहलाता है। प्रत्येक शेर का एक पाद या चरण (पंक्ति) मिसरा कहलाता है। प्रत्येक ग़ज़ल में पाँच या उससे अधिक शेर होने चाहिए। प्रत्येक पाद-युगल (शेर) के अंत में एक दो या तीन शब्दों की आवृत्ति होती रहती है। इसे अंत्यश्रुति या रदीफ़ कहते हैं। रदीफ से पूर्व उपान्त्य श्रुति, अर्थात् काफ़िया आता रहता है। 'मक्ता' में कवि अपना नाम या उपनाम रखता है।

डॉ. हर्षदेव माधव (20.10.1954, वरतेज, भावनगर, गुजरात) ने ग़ज़ल को 'गजलगीतिका' कहकर अभिहित किया है। इस नाम से उन्होंने एक गजल ही लिख दी। इसका 'मत्ला' देखिए -

''नेत्रे तिर्यक् कृत्वा गच्छति हृदयं हृत्वा गजलगीतिका।
मधुमधुरं द्राक्षासवपात्रं याति गृहीत्वा गजलगीतिका।''[6]

अर्थात् नेत्रों को तिरछा कर, फिर हृदय को हरकर गजलगीतिका जाती है/ जा रही है/चली जाती है। मधु के समान मधुर द्राक्षासव-पात्र (मदिरापूर्ण चषक) को लेकर गजलगीतिका जाती है/चलती है।

एक अन्य ग़ज़लगो प्रो. (डॉ.) महेश झा (1946-2020, मधुबनी, बिहार) ने अपने प्रथम संस्कृत-गज़ल-संग्रह, 'संस्कृत-ग़ज़लम्' को कोष्ठक में 'गज्जलिका' नाम दिया है।[7] एतदर्थ उन्होंने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

दूसरी ओर सर्वाधिक संस्कृत-ग़ज़ल रचनेवाले प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र (जन्म : 1943, द्रोणीपुर, जौनपुर, उ.प्र.) ग़ज़ल को 'गलज्जलिका' की संज्ञा प्रदान करते हैं। देखिए उन्हीं के शब्दों में - ''ग़ज़ल को मैं गलज्जलिका कहता हूँ। यह संज्ञा मैंने 1972 में ही गढ़ी थी और 'वाग्वधूटी' में संकलित गलज्जलिका शीर्षक के रूप में प्रयुक्त की थी। इसकी व्याख्या करते हुए मैंने लिखा था - ''गलन्ति जलानि नयनाश्रूणि यस्यां सा गीतिर्गलज्जलिका, अर्थात् हृतंत्री को झंकृत कर देनेवाली वेदनोत्थापिनी कोई मर्मस्पर्शी गीतिका ग़ज़ल कहलाती है।[8]

इस तरह, संस्कृत में ग़ज़ल के चार नाम मिलते हैं। संतोष की बात यह रही कि संस्कृत ग़ज़ल के आधुनिक हस्ताक्षर मूल नाम के साथ बने रहे। व्यावहारिकता की दृष्टि से यह सही भी है।

अधिकांश लोग इस बात को खुले मन से स्वीकारते हैं कि ग़ज़ल ईरान से चलकर भारत आई। इसके विपरीत न केवल ग़ज़लकारों, बल्कि ग़ज़ल के विमर्शकारों ने भी (हिन्दू-मुस्लिम-दोनों) ग़ज़ल को भारत की संतान बताया। ख़्वाब अकबराबादी, डॉ. सीताराम सिंह, डॉ. अमरेन्द्र, डॉ. सत्यानन्द झा, सर्वोपरितः डॉ. चन्द्रकान्त शुक्ल 'भास्कर' प्रभृति के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

ख्वाब अकबराबादी ने उर्दू ग़ज़लशास्त्र का विवेचन करते हुए एक स्थल पर उल्लेखनीय टिप्पणी यह की कि ग़ज़ल में प्रचलित फारसी छन्दों का निर्माण खलील बिन अहमद बखरी

(731-787 ई.) ने संस्कृत छन्दों के आधार पर किया था। इससे सहमत होने वाले लोगों की संख्या अत्यल्प है। फिर भी एक उदाहरण देखिए -

''बना के फ़कीरों का हम भेस गालिब।
तमाशा-ए-अहले करम देखते हैं।''

बहरे मुतकारिब पर आधारित मिर्ज़ा गालिब का यह शेर संस्कृत छन्द भुजंगप्रयात, अर्थात् चार यगण - ।SS, ।SS, ।SS, ।SS (उर्दू में फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन, फऊलुन) पर आधारित है;

यथा - ''नमामीशमीशान निर्वाणरूपम्।
विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।।'' (रामचरितमानस, उत्तरकांड)

इसीतरह, इस फ़िल्मी गजल-गीत में भी यही छन्द प्रयुक्त हुआ है-

''अजी रूठ के अब कहाँ जाइएगा।
जहाँ जाइएगा हमें पाइएगा।''

डॉ. चन्द्रकान्त शुक्ल 'भास्कर' ने डॉ. महेश झा-कृत पुस्तक 'संस्कृत-गजलम्' के 'उपोद्घात' में उर्दू के इस शेर -

''पुकारता चला हूँ मैं गली-गली बहार की,
बस एक छाँव ज़ुल्फ की बस इक कली बहार की।''
पर शिवताण्डवस्तोत्र की छाया महसूस की है -
''जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले।
गलेऽवलम्बलम्बितां भुजंगतुंग मालिकाम्।

डॉ. सीताराम सिंह ने अपने शोध-ग्रंथ 'हिन्दी ग़ज़ल और चेतना का विकास' में एक स्थल पर प्रकारान्तर से यही बात लिखी- ''ऋग्वेद में ऐसे स्तोत्र हैं, जिनमें अन्त्यानुप्रास या उपान्त्याप्रास का निर्वाह किया गया है।''

संरचनात्मक दृष्टि से 'मार्कण्डेयपुराण' में सन्निविष्ट 'दुर्गासप्तशती' के स्तुतिपरक छन्दों में उर्दू ग़ज़लों की तरह क़ाफिया और रदीफ़ों का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है; जैसे -

(क) शरणागतदीनार्तपरित्रणपरायणे सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते।
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोस्तु ते।

(ख) या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।
या देवी सर्वभूतेषु छायारूपेण संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।[9]

प्रथम स्तुति में 'सर्वस्यार्तिहरे' तथा 'कौशाम्भःक्षरिके' काफिया तो 'देवि नारायणि नमोस्तु ते'- रदीफ़ की तरह व्यवहृत हुए हैं। इसी तरह द्वितीय स्तुति में 'क्षुधा' और 'छाया'

काफिया की तरह प्रतीत होते हैं तो ' संस्थिता नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः' रदीफ़ की तरह।

अस्तु, आधुनिक रूप में फारसी छन्दशास्त्र पर आधारित संस्कृत गजल-लेखन की शुरुआत भट्ट मथुरानाथ शास्त्री 'मंजुनाथ' (1889-1964 ई, जयपुर, राजस्थान) से मानी जाती है। उनके सुपुत्र कवि-समीक्षक देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने अभिराज राजेन्द्र मिश्र (ज. 1943 ई/द्रोणीपुर, जौनपुर, उ. प्र.) के प्रथम ग़ज़ल-संग्रह 'मत्तवारणी' (2001) के पुरोवाक् में लिखा कि ''...बीसवीं सदी के प्रथम चरण में कवि-शिरोमणि भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने फारसी छन्दःशास्त्र का गहन अध्ययन कर छोटी-बड़ी सबतरह की 'बहरों' की ग़ज़लें उनके नैसर्गिक शिल्प में ढालकर लिखीं।'' पुनश्च ''संस्कृत में ग़ज़ल-विधा की अवतारणा हिन्दी से पहले हुई। दुष्यन्त कुमार और डॉ. सूर्यभानु गुप्त जैसे हिन्दी गजलकारों के युग से दशकों पहले संस्कृत में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जैसे गजलकारों का विपुल मात्र में सर्जन-प्रकाशन हो चुका था। ''साहित्य वैभव'' और ''गीतिवीथी'' में भट्ट श्री (मेरे पिता) की सैकड़ों ग़ज़लें सन् 1930 में ग्रन्थाकार में निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से छप चुकी थीं। पत्र-पत्रिकाओं में तो संस्कृत ग़ज़लें बीसवीं सदी के प्रथम दशक से ही देखी जा रही थीं।''

कलानाथ जी की इस बात पर मुहर लगाते हुए क्रमशः (डॉ.) जगन्नाथ पाठक एवं हर्षदेव माधव के निम्नोद्धृत कथन। पाठक जी अपने ग़ज़ल-संग्रह 'पिपासा' (1987 ई.) की भूमिका में लिखते हैं- ''जयपुरतः 1929 खिस्ताब्दे मंजुनाथोपाह्वेन कविशिरोमणिना स्व. भट्टश्री मथुरानाथ शास्त्रिणा 'गीतिवीथी' नाम्नी रचनैका प्रकाशिता। तस्यां 'उर्दूभाषाचत्वरे' अष्टपञ्चाशत संख्याका ग़ज़ल गीतयः सन्ति।'' अर्थात् कविशिरोमणि भट्टश्री मथुरानाथ शास्त्री 'मंजुनाथ' ने 1929 ई. में जयपुर (राजस्थान) से 'गीतिवीथी' नाम से एक रचना (पुस्तक) प्रकाशित कराई, जिसमें उर्दू भाषा चत्वर में अट्ठावन गजलगीत हैं। राधावल्लभ त्रिपाठी भी अपने 'संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास' (चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी; प्रथम संस्करण, 2020) की पृष्ठ संख्या - 1064 पर लिखते हैं - ''संस्कृत ग़ज़ल के भी प्रवर्तक शास्त्री जी (भट्ट मथुरानाथ) ही कहे जा सकते हैं। ग़ज़ल के विधान पर उनका असाधारण अधिकार है।''

इसी बात को किंचित् विस्तृत रूप में संपुष्ट करती है साहित्य अकादमी, दिल्ली से प्रकाशित संस्कृत-ग़ज़ल-संग्रह 'द्राक्षावल्ली' (2016) के संकलन-संपादक हर्षदेव माधव की ये पंक्तियाँ -

एतदर्थ, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री की एक छोटी-सी ग़ज़ल द्रष्टव्य है -

वा न वा

ख्बहरे कामिल मुसम्मन सालिम,

(मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन मुतफ़ायलुन)

विरहापगातटमुत्तरं पुनरागमिष्यति वा न वा।

अपि मानसी मम वेदना विषमा गमिष्यति वा न वा।।1।।

विलिखामि मानसवेदनां विसृजामि हन्त तदन्तिके।
परमन्तरं परिशङ्कते स विलोकयिष्यति वा न वा।।2।।

नवपल्लवा विलसन्ति संविकसन्ति ते कुसुमोत्कराः।
मम भागधेयतरूः सखे सरसं फलिष्यति वा न वा।।3।।

अयि मञ्जुनाथ मनो विनोदय संगमेन सचेतसाम्।
अपि नीरसेषु जनेषु ते प्रणयो भविष्यति वा न वा।।4।।[10]

आप देख सकते हैं, गजल के मक़ता में ग़ज़लगो के उपनाम 'मञ्जुनाथ' का प्रयोग हुआ है। 'वा न वा' रदीफ़ बनकर प्रयुक्त हुआ है तो 'गमिष्यति, विलोकयिष्यति, फलिष्यति और भविष्यति' काफिया।

ऊपर आपने देखा कि हर्षदेव माधव ने मथुरानाथ शास्त्री के समकालीन गजलगीति-रचनाकार कमलेश मिश्र का नामोल्लेख तो किया, परन्तु उनकी रचनाओं को संस्कृत-गजल-सङ्कलना 'द्राक्षावल्ली' में शामिल नहीं किया। दूरभाष पर खीझ प्रकट करते हुए उन्होंने लोगों की उदासीनता को इसके लिए उत्तरदायी ठहराया।

ज्ञातव्य है कि कमलेश मिश्र (1844-1935 ई.) बिहार राज्य के जहानाबाद जिलान्तर्गत 'बेलखरा' गाँव में पं. रामबक्स मिश्र के पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए थे। यह जानकर सुखद विस्मय होगा कि भारत की एक दर्जन भाषाओं के ज्ञाता व प्रयोक्ता कमलेश मिश्र हिन्दी के युग-प्रवर्तक साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सहपाठी थे। उनकी कीर्त्ति का आधार उनका गीत-ग़ज़ल-संग्रह 'कमलेश विलासः' है। उनकी इसी पुस्तक से एक ग़ज़ल देखिए -

''श्रीराम-संज्ञकमहो भातीव भाति नो मनो।
दधतोऽनिशं कमित्यदो रातीव राति नो मनो।।1।।

महिमानमस्य नो विदुर्द्रुहिणादयोऽपि भुंजते।
ह्यमुनै व दत्त-सम्पदो लातीव लाति नो मनो।।2।।

विविधं दधाति यद् वपुः स्वजना वनाय शंतमम्
शरणागतं जनं सदा पातीव पाति नो मनो।।3।।

अवगंतुमेव यद् गतिं श्रुतिभिः प्रभूयते च नो।
निज-तंत्रताभिगामि यद् याती व याति नो मनो।।4।।

कमलेश-वागि यं सती सुलभं सुभक्तिमत् कृते।
अतिवत्सलं विभुस्वकम् माती व माति नो मनो।।5।।''[11]

कमलेश मिश्र की अधिकतर गजलें भक्तिपरक हैं। श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीराम प्रभृति

इनके आलंबन हैं। इनकी गजलों को पढ़कर अँगरेजी, हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, बंगला और मैथिली के विद्वान् आचार्य एवं इलाहाबाद तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयों के कुलपति डॉ. अमरनाथ झा (25.02.1897-02.09.1955) ने विस्मित होकर यह उद्गार प्रकट किया था - ''फारसी के छंदों में संस्कृत पद्य (ग़ज़ल) मैंने कभी और नहीं देखे हैं।''

इसका अर्थ यह हुआ कि तबतक भट्ट मथुरानाथ शास्त्री ने गज़ल-लेखन प्रारंभ नहीं किया था अथवा प्रारंभ किया था तो उनकी गजलें प्रकाश में नहीं आ सकी थीं। ज्ञातव्य है कि कमलेश मिश्र उम्र में उनसे पैंतालिस साल बड़े थे। ऐसे में 'संस्कृत-ग़ज़ल के प्रवर्तक कौन', इस पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है।

भट्ट मथुरानाथ तथा कमलेश मिश्र के पद्चिह्नों का अनुसरण करते हुए पं. शालग्राम शास्त्री, गिरिधर शर्मा नवरत्न, हरिशास्त्री, रामनाथ पाठक प्रणयी, जानकीवल्लभ शास्त्री, गणेशराम शर्मा, बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान', जगन्नाथ पाठक, रमाकान्त शुक्ल, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पुष्पा दीक्षित, महेश झा, हरिदत्त शर्मा, राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्षदेव माधव, भाग्येश झा, विन्ध्येश्वरी प्र. मिश्र 'विनय', महाराज दीन पाण्डेय 'विभाष', कौशलेन्द्र पाण्डेय, बनमाली बिश्वाल, इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव', जनार्दन प्र. पाण्डेय 'मणि', रामविनय सिंह, नारायण दाश, कौशल तिवारी, प्रवीण पण्ड्या, राजकुमार मिश्र, बलराम शुक्ल, संस्कृता मिश्रा, ऋषिराज जानी प्रभृति ने विविध विषयों और बहरों में गजलें लिखीं; जैसे - श्रृंगार, विनय, लोकरंजन, समाज, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता, आज की गंदी राजनीति, विश्व-मानवता, सरोगेट मदर के प्रति भ्रूण की धिक्कारोक्ति, पंजिका, गरीबी, चूल्हा, अर्थलोलुपता इत्यादि।

उपरिलिखित गजलकार संस्कृत-गजल की तीन पीढ़ियों का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं।

पहली पीढ़ी (1929-1964) : संस्कृत-ग़ज़ल की प्रथम पीढ़ी के प्रतिनिधि ग़ज़लकार हैं- भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, कमलेश मिश्र, जानकीवल्लभ शास्त्री, बच्चू लाल अवस्थी 'ज्ञान', गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' प्रभृति।

ऊपर भट्ट मथुरानाथ और कमलेश मिश्र की गजलें देख चुके हैं। अब जानकीवल्लभ शास्त्री एवं बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' का एक-एक शेर देखा जाए।

जानकीवल्लभ शास्त्री - ''न जाने नाथ चिन्तामणिवर! त्वं क्वासि दिग्वलये
नभसि किं वा, सरसि किं वा, मनसि वा, कल्पनानिलये।।[12]

अर्थात् हे चिन्तामणि-श्रेष्ठ! मुझे नहीं मालूम कि तुम किस दिशा के घर में कहाँ हो- नभ में, तालाब में या कल्पना-गृह में? इस गजल का स्वर भक्त्यात्मक है, किन्तु एक जिज्ञासु भक्त का।

बच्चूलाल अवस्थी 'ज्ञान' की गजलें छोटी-बड़ी-सभी बहरों में दृष्टिगत होती हैं। उनकी गजलें प्रायः व्यंग्यात्मक होती है; यथा - ''क एते' नामक गजल का यह शेर देखा जाए-'' स्वयं न्यायपीठे प्रभुत्वं गृहीत्वा।

परस्वे स्वतां निर्णयन्तः क ऐते।''[13]

अर्थात् स्वयं न्यायपीठ पर अधिकार ग्रहण कर दूसरों के पक्ष में अपने मन से निर्णय देने वाले ये कौन हैं?

दूसरी पीढ़ी (1965-2010) : इस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाले गजलकारों में जगन्नाथ पाठक, रमाकान्त शुक्ल, अभिराज राजेन्द्र मिश्र, पुष्पा दीक्षित, महेश झा, राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्षदेव माधव प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

इनमें जगन्नाथ पाठक (1934-2017, सासाराम, बिहार) 1987 ई. में प्रकाशित अपने बृहत्काय गजल-संग्रह 'पिपासा' के लिए ख्यात हैं, जिसमें 200 संस्कृत गजलें संकलित हैं। इसकी पहली गजल का मतला देखिए -

''दृशस्तवैव शुभायाः फलं पिपासेयम्,
निवार्यतां न कदापि क्षयं पिपासेयम्।

काफिया में यत्र-तत्र शिथिलता बरतने वाले पाठक जी ने इस तरह के परंपरित छंद (बहर) में धर्म, साहित्य, समाज, वैषम्य इत्यादि पर कई गजलें लिखी हैं। इनकी गजलों में कहीं-कहीं गालिब का भावानुहरण लक्षित होता है। 'दीवान-ए-गालिब' का तो इन्होंने बाजाप्ता संस्कृत-अनुवाद किया। इसके लिए पाठक जी अनुवाद-संवर्ग में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत-सम्मानित भी हुए। पाठक जी ने यत्र-तत्र प्रतीकों का सटीक प्रयोग किया है।

राष्ट्रपति-पदक-प्राप्त रमाकान्त शुक्ल (1940, खुर्जा, बुलंदशहर, उ. प्र.) 'भाति मे भारतम्' के लिए प्रसिद्ध हैं तो अभिराज राजेन्द्र मिश्र (1943, द्रोणीपुर, जौनपुर, उ. प्र.) सर्वाधिक संस्कृत गजल-लेखन के लिए। उन्होंने संस्कृत में लगभग ढाई सौ गजलें लिखी हैं, जो 'मत्तवारणी' (2001 ई.) 'शालभञ्जिका' (2007 ई.), 'कनीनिका' (2008 ई.) तथा 'हविर्धानी' (2009) में संकलित हैं। इन्होंने गजल को उसके परंपरित बाड़े से बाहर निकाल समाज, राष्ट्र, विश्व-मानवता से जोड़ा।

गजल को 'गलज्जलिका' नाम देने वाले मिश्र जी की उपरिलिखित चारों पुस्तकें 'मिश्रोऽभिराजेन्द्रः' के नाम से छपी हैं। वाग्वैदग्ध्य का नमूना पेश करता उनका एक शेर देखिए -

''मेनका वा भवेन्मोनिका वा भवेत्।
कस्यचित्कौशिकस्य व्रतं खण्डितम्।।[14]

'मेनका' हो या मोनिका (लेविंस्की), किसी कौशिक (विश्वामित्र/बिल क्लिंटन) का व्रत (तपस्या) तो खंडित हुआ न।

'मत्तवारणी' से उद्धृत ये तीन शेर देखिए -
''मूषिकस्तर्जति विडालं विश्वसिहि बन्धो।
फलति शाखोटे, रसालं विश्वसिहि बन्धो।।

(विश्वास करो, भाई! चूहा बिलाड़ को फटकार रहा है और आम का फल शाखोटक में फल रहा है)

वायसस्सुधयोपलिप्तो हन्त साहसिकः।
स्वैरमनुकुरुते मरालं विश्वसिहि बन्धो।।

(वाह! चूने से (स्वयं को) लीप-पोतकर साहसी कौआ सरेआम राजहंस का अनुकरण कर रहा है। विश्वास करो, भाई!)

वटुरयं प्रश्ने कृते मरिचं मधुस्वादम्।
भणति कण्टकिनं रसालं विश्वसिहि बन्धो।।[15]

(प्रश्न किये जाने पर यह छात्र मिर्च को मीठे स्वाद वाली और आम के पेड़ को कँटीला बता रहा है, विश्वास करो, भाई!)

उदाहरणस्वरूप उद्धृत ये सारे शेर सिद्ध करते हैं कि वाग्वैदग्ध्य का परिधान पहनाकर मिश्र जी ने संस्कृत-गजल को कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया।

तीसरी पीढ़ी (2011- अद्यावधि) : संस्कृत-गजल की इस पीढ़ी में महाराजादीन पाण्डेय 'विभाष', जनार्दन प्र. पाण्डेय 'मणि', नारायण दाश, कौशल तिवारी, प्रवीण पण्ड्या, बलराम शुक्ल, संस्कृता मिश्रा प्रभृति आते हैं। प्रायः समसामयिक विषयों को आधार बनाकर लिखने वाले इन गजलकारों की संख्या डेढ़-दो दर्जन है।

आज की भारतीय राजनीति किस तरह निचले स्तर पर पहुँच गई है, इसी का चित्र प्रस्तुत करती है युवा गजलकार संस्कृता मिश्रा (जन्म : 1984, लखनऊ) की 'पश्य बन्धो राजनीतिम्' शीर्षक गजल -

''लोकतन्त्रे राजनीते रङ्गमञ्चं पश्य बन्धो।
नेतृरूपे नटनटीनां नृत्यगीतं पश्य बन्धो।।
पङ्क-पिण्डं मुखे धृत्वा प्रक्षिपन्ति द्वन्द्वभावे।
जनसभासु त्वं हि रूपं नाट्यनीतं पश्य बन्धो।।
धन-सुपीनाः सन्ति हृष्टाः मुद्रया क्रीणन्ति सत्यम्।
निर्धनानां न्याय-लब्धौ मनो भीतं पश्य बन्धो।।
मन्त्रि-रूपे गुण्डराजो देशरक्षायै प्रवृत्तः।
राजनीत्या किं न रूपम् हा गृहीतं पश्य बन्धो।।[16]

लोकतंत्र में राजनीति का रंगमंच देखो, बन्धु। नेता के रूप में नट-नटियों का नृत्यगीत देखो, बन्धु।। मुँह में कीचड़ का लौंदा रखकर द्वन्द्वभाव से (एक दूसरे पर) फेंकते (उछालते) हैं। जनसभाओं में (उनका) नाटकीय रूप (तो) देखो, बन्धु। धनाढ्य लोग (नेता) पैसे के बल पर सत्य को खरीदकर प्रसन्न होते हैं, जबकि निर्धन लोगों का मन न्याय-प्राप्ति से भयभीत है, देखो बन्धु! मंत्री के रूप में देश की रक्षा के लिए प्रवृत्त गुण्डों के सरदार को देखो, बन्धु।)

आपने देखा, कैसे संस्कृत-ग़ज़लकार दूसरे भाषा-गजलकारों की तरह ही समसामयिक विषयों, समस्याओं और विकृतियों से गहरे जुड़कर उन्हें प्रभावी अभिव्यक्ति दे रहे हैं। गजल का रूप नहीं बदला, लेकिन वर्ण्य विषय युगानुरूप अवश्य हुआ है। आज कई युवा चेहरे संस्कृत-ग़ज़ल को समृद्ध करने में मनोयोग से लगे हैं। बलराम शुक्ल, प्रवीण पाण्ड्या, संस्कृता मिश्रा प्रभृति के नाम सादर उल्लेखनीय हैं।

संदर्भिका :

1. मद्दाह, मुहम्मद मुस्तफ़ा. ''उर्दू-हिन्दी शब्दकोश''. लखनऊ : उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान (हिन्दी समिति प्रयाग), 1977.
2. पाठक, जगन्नाथ. पिपासा. प्रयाग : गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठम्, 1987.
3. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (सं.). बृहत् हिन्दी कोश. वाराणसी-1 : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, फरवरी, 2016, (पुनर्मुद्रण)
4. शास्त्री, रामसरूप आदर्श-हिन्दी-संस्कृत-कोशः वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन., 1957.
5. त्रिपाठी, राधावल्लभ अभिनवकाव्यालङ्कारसूत्रम्, 3.1.9 . वाराणसी : सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय. 2005.
6. माधव, हर्षदेव (सं.) द्राक्षावल्ली (संस्कृतग़ज़लसंङ्कलना) : नई दिल्ली-1, साहित्य अकादमी, 2016.
7. झा, डॉ. (प्रो.) महेश. संस्कृत ग़ज़लम् : मुंगेर, भगवती प्रकाशन, 2008 (जून).
8. मिश्रोऽभिराजराजेन्द्र. कनीनिका. इलाहाबाद : वैजयन्त प्रकाशन, जनवरी, 2008.
9. वेदव्यास. श्री दुर्गासप्तशती. गोरखपुर : गीताप्रेस, सं. 2062
10. माधव, हर्षदेव. द्राक्षावल्ली. नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2016
11. मिश्र, कमलेश. कमलेश विलासः. गया : कमलेश कुटीर, 1955.
12. माधव, हर्षदेव. द्राक्षावल्ली : नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2016 (प्रथम संस्करण)
13. उपरिवत्
14. मिश्र, अभिराजराजेन्द्र. मत्तवारणी. इलाहाबाद : वैजयन्त प्रकाशन, 2001.
15. उपरिवत्
16. माधव, हर्षदेव. द्राक्षावल्ली : नई दिल्ली : साहित्य अकादेमी, 2016.

से. नि. प्रो. (डॉ.) बहादुर मिश्र, हिन्दी विभाग, ति. माँ. भा. वि. वि. भागलपुर।
विक्रमशिला कॉलोनी, उर्दू बाजार रोड, भागलपुर-812002 (बिहार)
मो. : 9472506322 (ह्वाट्स ऐप), 9934694386 (मो.), ईमेल : bahadur.mishra8@gmail.com

डॉ. रामदरश मिश्र की गजलें

डॉ. अमर कांत कुमर

गजलगो रामदरश मिश्र ने हिन्दी गजल और उर्दू गजल के पचड़े में पड़े बगैर अपने छन्द-निर्माण की क्षमता के बल पर गजलों का सृजन किया है, बहर को बनाया है। रामदरश मिश्र की गजलें, गीत जैसे मुसलसल-गजलों की श्रेणी में आती हैं। जिसमें गीत जैसी केन्द्रीय संवेदना की बात होती है। उनका मानना है कि कविता की शैली कोई भी हो, उसमें काव्यात्मक तरीके से जीवन की छवियों को रूपायित किया जाना चाहिए। रामदरश मिश्र ने अपने एक गजल-संग्रह की भूमिका में गजल, बहर आदि पर विचार करते हुए लिखा है कि - 'मैंने उर्दू छन्द-शास्त्र का विधिवत अध्ययन नहीं किया है -- गजल के पारंपरिक और नए स्वरूप पर चर्चा होती रहती है। गजल के नामर्थ रदीफ, काफिया, बहर, मतला आदि पर विमर्श चलता रहता है--- मेरी अधिकांश गजलें गीत के रूप में आई हैं यानी कि उनमें एक ही केन्द्रीय संवेदना की यात्रा होती है, सारे शेर अलग-अलग बात न कहकर एक ही कथ्य के विविध आयामों की छवियाँ खोलते हैं। गजल अगर हिन्दी में आयी है तो उसे हिन्दी के स्वरूप में भी ढलना चाहिए।'

'शतं जीवेम शरदः' वेद की शाश्वत् वाणी में छिपी आशा-स्पृहा को चरितार्थ करने वाले शतवर्षीय शताब्दी पुरुष आदरणीय डॉ. रामदरश मिश्र आज हिन्दी के महान वटवृक्ष हैं, जिनके नीचे कितने ही साहित्य-यात्री विश्राम कर पुनः अपनी अनन्त यात्रा पर चले गए। जैसा रामदरश मिश्र का शतवर्षीय शरीर है वैसी ही उनकी असीतिपार पुस्तकों की बड़ी सूची भी है। उनके इस वय में हिन्दी के कितने ही युग, वाद और विमर्श आये, जिनमें कुछ आकर चले गए कुछ प्रौढ़ हो रहे हैं। मजे की बात यह है कि इन वादों, युगों, विमर्शों के परिपक्व विचारों पर लिखकर भी मिश्र जी इनसे निरन्तर दूरी बनाए रहे। वे युग की धमक को सुन, समझ और लिख जरूर रहे थे पर युगों-वादों-विमर्शों से आबद्ध होकर नहीं। वे युग, वाद, विमर्श-मुक्त साहित्य-साधना की शाश्वत चिन्तन धारा से प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। वे न कभी गुटों से जुड़े न अपने को वादों में सीमित किया और न विमर्शों की क्षुद्र राजनीति के पक्षधर हुए, किन्तु एक स्वच्छंद साहित्य-साधक की तरह वे निरन्तर साहित्य-साधना में लीन रहे। उनकी लेखनी मानवता, प्रकृति, समस्या, गाँव-गवई की निर्मल चेतना, जिन्दगी की जद्दोजहद, संघर्षरत मजदूरों के पसीने की कीमत आँकने में व्यस्त रही। उन्होंने इन सब के बीच अपनी उन चाहतों को भी कलम की नोक पर चढाया जहाँ हजार-हजार साधक जन उनके जैसे जीवन

की यात्रा पूरी कर आज पर्वत शिखर पर चढ़कर दुनिया का सिंहावलोकन कर रहे हैं।

गोरखपुर जिले के छोटे भोजपुरिया गाँव डुमरी से 1924 ई. में लक्ष्यहीन जीवन-यात्रा शुरू करने वाले आदरणीय रामदरश मिश्र का जीवन धीरे-धीरे कैसे लक्ष्यवान बनता गया और आज वे शताब्दी के बड़े साहित्यकारों में शुमार हो रहे हैं, यह एक पूरे युग के विकास-क्रम की कहानी भी हो सकती है। उनमें कई युग बोलता दिखाई देता हैं। वे जिजीविषा के सहज गतिशील पथिक रहे हैं। उनकी जीवन-यात्रा में संयोग और वियोग की कई परिस्थितियाँ आयीं, पर उनका लेखन-क्रम कभी रुका नहीं। वे एक बेहद संवेदनशील रचनाकार हैं, जो अपने आस-पास को कभी भूलते नहीं। संवेदना का ऐसा अजस्र स्रोत उनको उनकी माता जी से प्राप्त बाल-कथाओं और बोध-कथाओं से प्राप्त हुआ था- उनकी इस बात को 'मूल्यपरक सर्जना की शताब्दी गाथा' नामक आजकल (मासिक) अगस्त 2024 के अंक में प्रकाशित अपने लेख में विदुषी किरण झा लिखती हैं- 'माँ कुछ बहुत करुण लोककथाएँ सुनाती थी -- बिना माँ के बच्चों की कथाएँ, माँ की दुर्दशा की कथाएँ, निष्कासित रानी की कथाएँ, रानी या बच्चों के फूल या पेड़ बनजाने की कथाएँ और मैं सुन-सुन कर रोता था। पता नहीं माँ ने इन कथाओं द्वारा मेरे मन का कितना विस्तार किया। अपने से बाहर के जगत के साथ तादात्म्य अनुभव करने का कितना दर्दभर दिया।'(1)

डॉ. रामदरश मिश्र का रचना-संसार विशाल और विस्तृत है- इनकी अस्सी से ऊपर रचनाओं का जिक्र आता है; जिनमें कविता, कहानी, उपन्यास, गजल, संस्मरण, जीवनी, समालोचना आदि आते हैं। अनेक और महत्वपूर्ण गद्य कृतियाँ लिखकर भी रामदरश जी मूलतः कवि हैं। कविता की विधाओं में उन्होंने लिखा, प्रबन्ध काव्य लिखें, कविताएँ लिखीं, गीत लिखें और गजल विधा में भी जमकर लिख रहे हैं। हिन्दी में डॉ. रामदरश मिश्र मूलतः गीतकार के रूप में जाने जाते रहे हैं लेकिन गजल में स्थानांतरित हो गए-से दिखते हैं। 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' के संपादक ओम निश्चल लिखते हैं- 'कविताएँ रामदरश मिश्र जी की रचनात्मकता का पुराना ठीहा है, तो गजलें उनके कवित्व का नया विस्तार। हिन्दी में गजलों की जो दिशा कभी दुष्यंत कुमार जैसे गजलगों ने रखी, हिंदी के अनेक समर्थ गजलकारों ने उसे आगे बढ़ाया है। रामदरश मिश्र उनमें एक हैं, जिनके अब तक कई गजल संग्रह आ चुके हैं। 'बाजार को निकले हैं लोग' उनका पहला संग्रह था जो गजल की दुनिया में उनका पहला कदम था। उसके बाद जैसे-जैसे उनकी गजलों को लोकप्रियता, मिलती गयी, वे गीतों की दुनिया से गजलों में शिफ्ट होते गए।'(2) 'बाजार को निकले है लोग' वर्ष 1986 से शुरू होकर उनकी गजल-लेखन की यात्रा हंस प्रकाशन की 'तू कहाँ है' (2023) तक आयी है, जिनमें उनके तकरीबन 10 गजल संग्रह आते हैं। किसी भी विधा में पूर्णतः और मुख्यतः स्थापित होने के लिए ये संख्या अत्यधिक है। आज भी उनका लेखन जारी है। उनके गजल-संग्रहों के नाम हैं- 1986 तक कही हुई गजलों का पहला संग्रह आया 'बाजार को निकले हैं लोग', 1997 ई. में 'हँसी होठ पर आँखें नम है', 2005 में 'तू ही बता ऐ जिन्दगी', 2008 'हवाएँ साथ हैं' (चयनित), 2010 ई. में '51 गजलें', सन 2017 में 'सपना सदा पलता रहा', सन् 2019 में 'दूर घर नहीं हुआ।' इसी वर्ष 96वीं जन्मदिन पर 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' आया। इधर उनके जन्मशती के अवसर पर संपादक ओम निश्चल द्वारा चयनित

गजल-संग्रह 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' 2023 आयी है। इसके बाद एक और कृति 'तू कहाँ है' छप कर हंस प्रकाशन से 2023 में ही आयी है। इसके अतिरिक्त उनकी कतिपय गजलें उनके अन्य कविता-संग्रहों में भी संकलित हैं।

हिंदी में गजल भारतेंदु युग से ही लिखना शुरू हुआ, महाप्राण निराला ने भी दो सौ से ऊपर गजलें लिखीं। अस्थापित रूप से आगे भी गजलें लिखी जाती रहीं, मगर हिंदी में गजल को स्थापित और चमकदार बनाने में दुष्यंत कुमार की भूमिका अतिमहत्वपूर्ण है। उनके साथ गजल में महबूबा से बतियाने और इश्क फरमाने की चलन का खात्मा होता है और हिन्दी गजल रोजबरोज की जद्दोजहद और सामाजिक राजनीतिक सरोकारों से सीधे जुड़ जाती है। वह जन सरोकारों की पैरोकार बन जाती है, प्रतिरोध के स्वर को बुलंद करती है और सीधे आमजनता और शोषित समाज की आवाज बुलंद करने लगती है। बहर की फार्मेट तो वही रहती है, पर कहन की भंगिमा में बदलाव आ जाता है। हिंदी में दुष्यन्त ऐसे बदलाव लेकर आते हैं कि उस स्वर को पकड़ कर उसी धारा में बहुत सारे गजलगो थोड़ी और तल्खी अखतियार करते हुए राजनीति और सामाजिक शोषण पर व्यंग्य करते हुए सीधे-सीधे प्रहार भी करने लगते हैं। अदम गोंडवी आदि दुष्यन्त की धारा के अगली फसल थे, जो जनवाद की भाषा तक ले जाते हैं। दुष्यन्त की धारा को आगे बढ़ाने वाले रचनाकारों के दौर में रामदरश मिश्र भी सिख रहे थे। मगर इनका स्वर शालीन और अपने जैसा था, जिसमें मानवीय मूल्य और संवेदनाएँ थीं। बनी-बनायी हिन्दी गजल की लीक से हट कर रामदरश मिश्र एक अलग हिन्दी गजल की दुनिया सृज रहे थे। हिन्दी गजल के विकास में यह एक अलग प्रयास, जो सहज था, कहा जा सकता है। अपने एक आलेख में डॉ. वेदमित्र शुक्ल लिखते हैं- 'आज जब दुष्यन्त नुमा गजलें कहने या फिर एक ही परम्परा से चिपके रहने की अनजानी जिद के कारण बेवजह जुमले या शब्दजाल द्वारा तार्किकता और प्रतिरोध से आकर्षित करने वाली भाषा गढ़ने की होड़ में अनेक लोकप्रिय गजलकार देखे- सुने जा सकते हैं, तब मानवीय मूल्यों एवं संवेदनाओं से युक्त कहन वाली रामदरश मिश्र की गजलें हिन्दी गजल के विकास में एक नया अध्याय जोड़ रही है। असल में, हिन्दी गजल की दुनिया में दुष्यन्त की परम्परा के समांतर एक और रेखा देखी जा सकती है।'(3) यह दीगर बात है कि इस धारा से जुड़कर लिखने वाले गजलगो ने खुद भी किसी धारा के प्रणेता के रूप में खुद को नहीं माना और जीवन को सहजता से उड़ेलते रहे। यह भी सही है कि गजल के धुरंधर समीक्षकों- आलोचकों ने भी इस धारा को दुष्यन्त-धारा से अलग कर स्पष्टता से नहीं देखा - नहीं समझा। केवल कुछ बिखरे मूल्यांकन के प्रयास हुए, जिससे दूसरी धारा की गजलों को सतत् धारा की श्रेणी में रखकर देखी जा सके। स्वयं डॉ. रामदरश मिश्र ने गजलें तो बहुत-सी लिखीं, पर गजल पर बहुत न तो कहा और न बहुत लिखा। इसलिए गजल की यह धारा अलग रास्ता बनाकर चलती तो रही पर बहुत मुख्य नहीं बनती दिखती है। यह सही बात है कि लेखन-धारा के पक्ष में बहुत लिखा भी जाना चाहिए। डॉ. वेदमित्र शुक्ल ने अपने लेख में गजलकार नरेश शाण्डिल्य को उद्धृत करते हुए कहा है कि वे लिखते हैं कि- 'मिश्रजी की हिन्दी गजलें चमत्कृत नहीं स्पन्दित करती हैं। गजल की बनी-बनायी परिभाषा के ढर्रे में कैद होकर लिखना पसंद नहीं करते। वे अपने मूल

स्वभाव में बसी सहजता और स्वच्छंदता के बल पर ही गजलों में आगे बढ़े हैं।'(4)

गजलगो रामदरश मिश्र ने हिन्दी गजल और उर्दू गजल के पचड़े में पड़े बगैर अपने छन्द-निर्माण की क्षमता के बल पर गजलों का सृजन किया है, बहर को बनाया है। रामदरश मिश्र की गजलें, गीत जैसे मुसलसल-गजलों की श्रेणी में आती हैं। जिसमें गीत जैसी केन्द्रीय संवेदना की बात होती है। उनका मानना है कि कविता की शैली कोई भी हो, उसमें काव्यात्मक तरीके से जीवन की छवियों को रूपायित किया जाना चाहिए। रामदरश मिश्र ने अपने एक गजल-संग्रह की भूमिका में गजल, बहर आदि पर विचार करते हुए लिखा है कि - 'मैंने उर्दू छन्द-शास्त्र का विधिवत अध्ययन नहीं किया है -- गजल के पारंपरिक और नए स्वरूप पर चर्चा होती रहती है। गजल के नामर्थ रदीफ, काफिया, बहर, मतला आदि पर विमर्श चलता रहता है--- मेरी अधिकांश गजलें गीत के रूप में आई हैं यानी कि उनमें एक ही केन्द्रीय संवेदना की यात्रा होती है, सारे शेर अलग-अलग बात न कहकर एक ही कथ्य के विविध आयामों की छवियाँ खोलते हैं। गजल अगर हिन्दी में आयी है तो उसे हिन्दी के स्वरूप में भी ढ़लना चाहिए।'(5) डॉ. नरेश शाण्डिल्य ने इसीलिए डॉ. रामदरश मिश्र की गजलों को जोर देकर मुसलसल गजलों की संज्ञा दी है और बताया है कि यह उर्दू में प्रचलित गजल की तमीज और लेखन के तहजीब से बिल्कुल भिन्न प्रकार की, भिन्न कहन, भाषा और एक हद तक भिन्न शिल्प की गजलें हैं।(6) डॉ. रामदरश मिश्र ने उर्दू में प्रसिद्ध गजल के ढाँचे के भीतर रक्त, मज्जा, मांस हिन्दी की भर दी है। इतना ही नहीं इन गजलों में आत्मा भी हिन्दी की है। इसीलिए डॉ. रामदरश मिश्र की गजलों में जहाँ एक ओर कहन की सादगी, चिन्तन और भरोसे के साथ ग्रामज परिस्थियों की सीधी सरल अभिव्यक्ति, प्रेम, करुणा, दया, प्रकृति, गाँव, समाज, परिवार, घर, मूल्य, संस्कार आदि जीवन से जुड़े तमाम आसंगों की अभिव्यक्ति है।

मिश्र जी का मानना है कि गजल लिखी नहीं 'कही' जाती है और हिन्दी गजल कही जाएगी तो हिन्दी के उच्चारण विन्यास में ही कही जाएगी। शब्द और विचार भी हमारे पुराने और बचपन में तैयार सहज-सरल स्वभाव के संस्कार से परिष्कृत होकर ही बाहर आएगा। इसीलिए गजल को हिन्दी में आकर, हिन्दी में चलकर, हिन्दी की तरह चलनी पड़ेगी। उर्दू में व्यवहृत वर्तनीवाले बहुत से शब्द हिन्दी में कुछ अलग वर्तनी में बदलाव ग्रहण कर चुके हैं। तो गजल में हिन्दीस्थ उच्चारण वाले शब्द-वर्तनी का ही उपयोग होना चाहिए। इस प्रसंग में नरेश शाण्डिल्य ने कहा शहर (S1) हिंदी शहर (1S), जह्र (S1) हिंदी जहर (1S), गद्र (S1) हिंदी गदर (1S) कुरआन (SS1) हिंदी कुरान (1S1), किलंआ (SS) हिंदी किला (1S) बोला या कहा जाना चाहिए।(7) डॉ. राम दरश मिश्र ने ऐसे ही हिन्दीकरण की स्वीकृति की ओर गजलों को अपनाने की बात भी स्वीकारी है और उस पर अपनी गजलों मे अमल भी किया है।

डॉ. रामदरश मिश्र का मानना है कि साहित्यलेखन में विधा का चयन जो भी हो, हर विधा को काव्यात्मक ढंग से जीवन की अनेकता को रूपायित करना चाहिए। उन्होंने दुष्यन्त कुमार की गजलों में स्वानुभूत सच्चाई को महसूसते हुए दुष्यन्तवादी परवर्ती गजलगों की गजलों के शिल्प

और कथ्य पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि ये लेखक दुष्यन्तवादी गजलों को एकांगी बनाकर छोड़ देंगे। इस प्रसंग में उन्होंने गोण्डवी को उद्धृत किया है। वे लिखते हैं- 'दुष्यन्त की गजलों के प्रशंसित होने के बाद गजल लिखने वालों की भीड़ उमड़ आयी। दुष्यन्त की गजलों ने स्वयं को सामाजिक यथार्थ के विविध आयामों से जोड़ा और इस तरह गजल के कथ्य को एक नयापन दिया। दुष्यन्त की परंपरा से अपने को जोड़ने वाले गजलकारों ने अपने-अपने ढंग से अपनी गजलों को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। एक बात ध्यान देने की है कि दुष्यन्त ने अपने मन की प्रेरणा से ऐसी गजलें लिखीं, इसीलिए इनमें अनुभूति की नवीनता है, प्रभविष्णुता है और पहचान की निजता है। उनकी देखा-देखी लिखी जाने वाली गजलों में न तो निजी पहचान का सौन्दर्य है न जीवन के विविध अनुभवों की प्रतीति है। अनेक गजलकार ऐसे भी हैं जिनकी गजलों में जीवनानुभव के अनेक आयाम हैं और लगता है गजल लिखने के लिए गजल नहीं लिख रहे हैं, उनके भीतर की आवाज उनसे गजल लिखवा रही है। अदम गोंडवी तथा उन जैसे गजलकारों की लाउड गजले तो गजल को एकांगी बनाकर छोड़ देगी। (8)

डॉ. रामदरश मिश्र की गजलें केवल प्रतिरोध की गजलें नहीं हैं, बल्कि जीवन के विविध अध्याय और विषयों पर लिखी गई गजलें हैं। इनकी गजलें जीवनानुभूति से उपजी हुई गजले हैं। समय के साथ इनके चिन्तन और काव्यशिल्प और शैली में भी बदलाव आए तथा मिश्र जी विधागत प्रचलित लेखन-परम्परा को भी अपनाते गए। दुष्यन्त का दौर आया; तो गजल में जो हाथ आजमाईश हुई वह इन के आगे की रचना-यात्रा की मुख्य विधा भी बन गयी पर उसमें रंग उनका अपना है, ढंग उनका अपना है और आसंग उनका अपना है। वे गजल को अपना बनाकर अपनी सहज अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं और दुष्यन्त से शुरू होकर भी अपनी राह वे स्वयं बनाते चलते हैं, जो नितान्त उनका अपना लगता है। उनकी सारी-की-सारी निजता उसमें व्यक्त हुई है। गजल लेखन की निरंतरता ऐसी कि 10 गजल-संग्रहों का साम्राज्य खड़ा कर देते हैं। गीत-लेखन घट जाता है गजल लेखन उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। ओम निश्चल जी ने इसी को उनका गीतों से गजल में शिफ्ट होना कहा है।(9)

प्रत्येक रचनाकार की रचनाओं में कुछ उनके सिग्नेचर रचनाएँ हो जाती हैं। डॉ. रामदरश मिश्र की 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' ऐसी ही सिग्नेचर गजल बन गई है। इसमें उनका जीवन ही बोलता है। हर गोष्ठी में लोग फरमाईश करके इस गजल को अवश्य सुनते हैं। यह उनका एक असाधारण गजल है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने गजल-लेखन की शुरुआत छठे दशक में की थी और स्वेच्छा से कुछ गजलें लिखी थीं। गजल है -

ये आवारा बादल जो छाये हुए हैं
न मालूम किसके बुलाए हुए हैं। (1954)
दर्द दुनिया भर का सीने में लिये जाते हैं हम
जिन्दगी जीने की मजबूरी जिये जाते हैं हम । (1954)

कोई आया न, कोई खत, न तार की आया
लौट आखिर को मेरा इन्तजार ही आया ।। (1954)

स्पष्ट है कि इन शुरूआती गजलों में भी रामदरश मिश्र की अलग छाप स्पष्ट दिखती है। दर्द, प्रतीक्षा और प्रश्न तीनों से रू-ब-रू होते हैं इन गजलों में। छठे दशक में शुरू हुई उनकी गजल की आँच प्रज्वलित हो उठती है। आठवें और नौवें दशक में जहाँ उन्होंने, न केवल कुछ बेहतरीन गजलें कहीं हैं, बल्कि 1985 में लिखी गई उनकी सिग्नेचर गजल - 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे / खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।' मतला के साथ कई खूबसूरत अशआर सामने आते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र की जिन्दगी की इसमें अनेक छवियाँ व्यक्त हैं, जिसमें जीवटता, क्रियाशीलता और प्रगतिशीलता व्यक्त है। यह गजल उनके पहले गजल संग्रह 'बाजार को निकले हैं लोग' (1986) में संकलित होकर बाहर आती है। गजल कुछ इस तरह है-

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे।
किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा जिन्दगी का सफर धीरे-धीरे ।
जहाँ आप पहुँचे छलागँ लगाकर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे ।
पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यों ही सर धीरे-धीरे ।
गिरा मैं कहीं तो अकेले में रोया
गया दर्द से घाव भर धीरे-धीरे ।
जमीं खेत की साथ लेकर चला था
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे ।
न रोकर, न हँसकर किसी में उड़ेला
पिया खुद ही अपना जहर धीरे-धीरे ।
मिला क्या न मुझको, ऐ दुनिया तुम्हारी
मुहब्बत मिली है मगर धीरे-धीरे ।। (10)

इस गजल में सभी श्रोता और पाठक अपनी पीड़ा का अनुभव करते हैं। अपनी ही अभिव्यक्ति पाते हैं। इसका भाव-संसार अत्यंत विस्तृत और कबीराना है। यह सबको स्पंदित करती है।

परमेश्वरी प्रकाशन से प्रकाशित दूसरा गजल-संग्रह है- 'हँसी होठ पर आँखें नम हैं' जिसका प्रकाशन 1997 ई. में हुआ था। यह पूरा संग्रह गजलों का संग्रह है; जिसमें उनके अनुभवशीलता से उपजे जीवन के वैविध्य का, प्रकृति का, प्रेम का, चेतना का, आज की विडम्बना का, राजनीति, धर्म, न्याय में छिपी विकृति का, विसंगतियों का सत्य कविता की भाषा में व्यक्त किया गया है। डॉ. रामदरश मिश्र द्वारा 1997 के बाद 2005 तक लिखी गई गजलों का संकलन 'तू ही बता ऐ

जिन्दगी' के नाम से प्रकाशित होता है और 2008 ई. में प्रकाशित होकर एक और गजल-संग्रह 'हवाएँ साथ है' (चयनित) के नाम से। पूर्व के संकलनों से चयनित होकर आता है 2010 ई. में डायमंड पब्लिकेशन प्रा.लि. से प्रकाशित गजल संग्रह '51 गजलें' आया। इस गजल संग्रह में 38 गजलें नई हैं और 13 गजलें पुरानी हैं। संग्रह के बारे में लेखक लिखते हैं कि- 'मेरी कोशिश रही है कि बोलचाल की भाषा में अपने और परिवेश के सुख-दुख और समय के सच को स्वर दे सकूँ।' (11) ब्लॉग में मिश्र जी के वक्तव्य को रखा गया है इस संग्रह में कि- 'गजल पर अपने अधिकार का दावा न कल किया था न आज कर रहा हूँ।' (लेखक) डॉ. रामदरश मिश्र का 2017 में एक महत्वपूर्ण गजल संग्रह 'सपना सदा पलता रहा' छपता है। इसमें सामाजिक जीवन के आयाम के विविध पक्ष दृष्टिगत होते हैं। इस संग्रह में उनकी लिखी तिरासी (83) गजलें संकलित हैं। इस गजल संग्रह के विषय और कथ्य वैविध्य के विषय में स्वयं डॉ. रामदरश मिश्र लिखते हैं- 'मेरी गजलों में कथ्य का वैविध्य है। उनमें प्रेम है, प्रकृति है, शहर है, गाँव है, घर-परिवार है, व्यक्तिगत जीवन यात्रा के कई संदर्भ हैं, सामाजिक जीवन की छवियाँ हैं, राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों के चेहरे हैं, आमजीवन के प्रति गहरी अनुरक्ति है, ऊँचे कहे जाने वाले लोगों के जीवन की कृत्रिमताओं की पहचान है।'(12) इसी का समर्थन करते हुए डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने 'कथादेश' में प्रकाशित अपने लेख में लिखा है कि- 'हिन्दी गजलों के कहन में आम जनजीवन के विविध रंग कैसे उतर आते हैं, देखना है तो रामदरश मिश्र जी की गजलों से अच्छा उदाहरण संभवतः नहीं कहीं होगा।'(13) जिन्दगी की सकारात्मता को व्यक्त करने वाली डॉ. रामदरश मिश्र की एक गजल का यह शेर देखिए -

वह पहुँच पाया नहीं है, मंजिलों को यह गिला
पर निकलकर रोज घर से वह कहीं जाता तो है। (14)

डॉ. रामदरश मिश्र के गजल संग्रह 'सपना सदा पलता रहा' से कुछ गहरी चोट भी, जीवन-दर्शन भी देखिए -

घर में लगाके आग वे मंदिर में छिप गए
मुद्दत से चल रहा है यों उनका धरम-करम ।।
एक कविता बन गयी दूजी सियासत की जबान
देवता की प्रार्थना उसने भी की, उसने भी की।
सहम-सहम के बह रहा है नदी का पानी
हवा बहार की कैसी डरी-डरी-सी है।
दुनिया में हम आते हैं तो होती है एक जाति
आकर के यहाँ हिन्दु-मुसलमान हो गयी ।

(सभी सपना सदा पलता रहा से)

डॉ. रामदरश मिश्र का सातवाँ गजल संग्रह है- 'दूर घर नहीं हुआ।' यह संग्रह 2019 ई. में ईशा ज्ञानदीप प्रकाशन से छपकर आया था। इस संग्रह में 43 नई गजलें और 14 पुराने संग्रहों से

चयन कर - कुल 57 गजलें प्रकाशित हैं। इस संग्रह की भूमिका में रामदरश मिश्र ने बड़ी विनम्रता से लिखा है कि- 'अच्छी गजलों की भीड़ में इनकी जगह कहाँ है, है कि नहीं, मैं नहीं कह सकता किन्तु ये मेरी अपनी हैं, इनका अपनापन है यह बोध तो मुझे सुख देता ही है। अपनी गजलों के बारे में मैंने कभी कोई दावा नहीं किया, अब भी नहीं कर रहा हूँ।'(15)

इन गजलों पर उस समय की मुख्यधारा में लिखी जा रही गजलों की चमक का कोई असर नहीं है। ये गजलें डॉ. रामदरश मिश्र ने परिवेश से उठी हुई अनुभूतियों से लबरेज होकर लिखी हैं। इसीलिए इन गजलों में सहज और एक अलग शिल्प विधान के साथ संवेदनाओं को पिरोया गया है। 'दूर घर नहीं हुआ' ऐसी मर्मस्पर्शी गजलों का संग्रह है, जिसका प्रतिनिधि शेर है-

चाहे जहाँ रहा मैं दूर घर नहीं हुआ
होने को तो हो जाता जुदा पर नहीं हुआ।
लोगों के बीच उनसा बना गूँजता रहा
सुनसान को ढ़ोता सा मैं शिखर नहीं हुआ। (16)

ऐसी ही अनेक संवेदनाओं को उद्‌बुद्ध करने वाली गजलों से लबरेज है 'दूर घर नहीं हुआ' जिसमें आत्मीयता है, समय से युद्ध है और बदलाव देख हताशा है, एक शेर देखिए -

बाजार को निकले हैं लोग बेच के घर को
क्या हो गया है जाने आज मेरे शहर को। (17)

इसी तरह इस आशय का एक शेर देखिए -

छोटा सा घड़ा हूँ मैं मगर प्यास बुझाता
खुश हूँ कि यार उनसा समन्दर नहीं हुआ।(18)

इसी संग्रह में एक शेर डॉ. रामदरश मिश्र जी ने कही है, जिसमें उनके सौ वर्ष के करीब पहुँचकर शरीर की थकान की अनुभूति का बयान है-

मेरी अजीज जिन्दगी मुझे दे अब आराम
मुझे दिए थे काम जो-जो वे मैं कर आया ।(19)

डॉ. रामदरश मिश्र की गजलों की पुस्तक 'दूर घर नहीं हुआ' पर विचार करते हुए उनके बेहद करीबी और उनकी गजलों के संकलन प्रकाशितकर्ता ओम निश्चल जी लिखते हैं- 'इस बार जब उनका गजल संग्रह 'दूर घर नहीं हुआ' उलट-पलट रहा था तो वे बहुत सारी शामें अचानक याद हो आई जो उनके सानिध्य में बीती हैं। पास ही घर होने से यह सुविधा है कि जब याद किया, पहुँच गए। उन्होंने इस पुस्तक की कई गजलें सुनाई है। आज उन गजलों से गुजर रहा हूँ तो लगता है बीता हुआ समय सामने ठिठक कर खड़ा हो गया है और वे गजलें सुना रहे हैं।'(20) गाँवों के स्मरण हो आने और मन में एक पुलक उत्पन्न हो जाने पर उनकी एक बेहतरीन गजल है। मतला के संग एक प्रसिद्ध शेर देखिए -

पास तुम आए तो कीचड़ में कमल-सा मन हुआ
लग रहा है आज सारा जग मेरा दर्पण हुआ।
इक नदी बहने लगी गाती हुई भीतर मेरे
यह महीना जेठ का मेरे लिए सावन हुआ। (21)

'दूर घर नहीं हुआ' संग्रह डॉ. रामदरश मिश्र की बड़ी चर्चित और बेहतरीन संग्रह है। इस संग्रह की एक गजल में कवि का आज की मानवता के नाम एक जरूरी संदेश है, जो बकौल ओम निश्चल डॉ. रामदरश मिश्र की नजर में सबसे बेहतरीन गजल है।(22) गजल के कुछ शेर हैं-

मनुष्य है मनुष्यता के हक में तू विचार कर
मनुष्य, पशु-पखेरुओं लता-द्रुमों से प्यार कर।
है प्यार से बड़ी नहीं जहाँ में कोई संपदा
तू मिल किसी से भी तो मिल सदा अहम उतारकर ।
वतन है दे रहा तुझे न जाने क्या-क्या बाखुशी
खुशी के वास्ते वतन की तू भी कुछ निसार कर।
मनुज मनुज के बीच धर्म भी है तो तोड़ दे
अगर है ये गुनाह तो गुनाह बार-बार कर ।(23)

यश पब्लिकेशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32 से ओम निश्चल जी के संपादन में डॉ. रामदरश मिश्र की 96वीं जन्म दिन पर प्रकाशित चुनिन्दा गजलों का संग्रह 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' 2019 में ही आया। इस संबंध में इसके संपादक संकलनकर्ता प्रसिद्ध समीक्षक ओम निश्चल लिखते हैं - 'यह उनकी 96वीं वर्षगाँठ पर उन्हें और उनके पाठकों को समर्पित है। उनकी इस सीख के साथ कि दुनिया धीरे-धीरे बनती है, पेड़ धीरे-धीरे बड़े होते हैं, सफर धीरे-धीरे कटता है, जिन्दगी धीरे-धीरे अनुभव सिद्ध होती है। उनकी गजलें इस दिशा में एक मिसाल की तरह है। आज जितना बड़ा उनका कवि-कद है, उससे छोटी उनके शायर की शख़्सीयत नहीं है।'(24) चूंकि यह संग्रह डॉ. रामदरश मिश्र के पूर्व प्रकाशित संग्रहों से चुनी हुई गजलों से संपादित है इसी लिए यह आपको स्पंदित करती, आनन्दित करती है और आपके जेहन को सोचने के लिए मजबूर भी करती हैं। इस संग्रह का उनके 1985 ई. में प्रकाशित गजल संग्रह 'बाजार को निकले हैं लोग' की एक कालजयी गजल के एक मिसरा से शीर्षक तैयार किया गया है।

हंस प्रकाशन, दिल्ली से 2023 ई. में प्रकाशित 53 गजलों का संग्रह है 'तू कहाँ है'। इसमें 40 गजलें नई हैं और 13 गजलें, पुराने गजल-संग्रहों से संकलित हैं। इसमें 2022 के अंत के महीने में लिखी गई 24 गजलें हैं और 2023 के प्रारंभ में रची गई 10 गजलों के साथ इसी अवधि में रचित कुछ मुक्तक भी हैं। इस गजल-संग्रह के 'पुरोवाक' में गजलकार की उक्ति है- 'इस वय में पढ़ना-लिखना बंद-सा है फिर भी मन के भीतर जो रचनात्मक रुचि रह गई है वह कभी डायरी के बहाने, कभी गजल और मुक्तक के बहाने कुछ रूप ले लेती है।'(25) विदुषी किरण झा ने लिखा है कि, 'जीवन के सौवें वसंत में गजल-संग्रह का प्रकाशित होना कोई किंवदन्ती नहीं तो किंचित उससे कम भी नहीं है।'(26)

यह गजल-संग्रह कवि के यादों की दुनिया का पुनर्जीवित हो उठने वाली ताजा मिठास से भरी गजलों से भरा पड़ा है, तो दुनियावी छल-छद्मों से व्यथित कवि का अराजकता, असमानता को मिटाने की आशा से भी दीप्त है। 'तू कहाँ है' गजल संग्रह की एक गजल का एक शेर देखिए-

वे बटोरे जा रहे हैं माल क्या-क्या बेतहाशा
भार उनका वह बेचारा ढ़ो रहा है तू कहाँ है।(27)

इस संग्रह की एक गजल में सामाजिक विद्रूपता और भेद दृष्टि पर एक शेर देखिए, जिसमें राजनीति पर व्यंग्य है-

गरीबों के दुख से आँखें मिलाते न अमीरों के आगे ठहर जा रहे हैं
न सोचो कि वे आ रहे देने को कुछ बटोरे हुए माल घर जा रहे हैं।(28)

डॉ. रामदरश मिश्र मानवीय संवेदनाओं के चितेरे हैं गीतों में, गजलों में, कविताओं, कहानियों, उपन्यासों में भी। उनकी चाहत है कि यह समाज प्रेम और भाईचारे से जीता, तो कितना ही अच्छा होता। वे एक गजल का मतला लिखते हैं-

लोगों के सुख-दुख का यदि आपस में प्रिय याराना होता
लगता है तब मुझको मेरा यह जगत परम सुहाना होता।(29)

समाज ही नहीं, राष्ट्र ही नहीं, विश्व पटल पर शस्त्र-संग्रह से कवि का अन्तर्मन मानवता के विध्वंस की कल्पना से घबरा उठता है। वे एक गजल के एक शेर में लिखते हैं-

अपने-अपने स्वार्थ खातिर देश दो-दो लड़ रहे
सोच कर विध्वंस एटम बम का भर जाता है दिल
क्षुब्ध कुदरत हो रही है आदमी के जुल्म से
सोचकर अंजाम उसका हा सिहर जाता है दिल।(30)

रूस और यूक्रेन के बीच युद्ध और बम, एटम बम की होड़ में बढ़ते तनाव से चिंतित कवि की चिंता उचित है और ताजा है। इन सारी चिंताओं के परे कवि अपने गाँव की सहजता को भूल नहीं पाता है और लिख उठता है-

मेरे प्यारे गाँव ये तेरी कैसी अद्‌भुत-सी माया है
तुझको छोड़ चला तो देखा तू भी साथ चला आया है।
रह-रह मन में हँस पड़ते हैं मौसम ऋतुएँ त्योहारी दिन
जिनके साथ भरा मस्ती से बारंबार गीत गाया है।
तपन जेठ की जब-जब लगती तब-तब मैं अनुभव करता हूँ
मेरे ऊपर खुद को फैलाए-सी बरगद की छाया है।
सन्नाटे में कल-कल की जब मीठी-मीठी ध्वनि होती है तब
लगता है मेरे भीतर नदिया का पानी लहराया है।

ताल-तलैया बाग-बगीचे खेतों में लहराती फसलें
कितनी ही तेरी छवियों को हरदम अपने संग पाया है।(31)

डॉ. रामदरश मिश्र का यह गजल संग्रह 'तू कहाँ है' उनके जीवन के उत्तरार्द्ध की परिपक्व चिन्ता से उपजी गजलों का अनूठा और मानवीय चिन्ताओं से परिपूर्ण संग्रह है। विदुषी किरण झा लिखती हैं- 'लोकगीतों की महीन बुनावट में गढ़े जीवन के विविध रंगों से प्रेरित प्रारंभिक रचनाओं से शुरुआत कर जीवन के विविध रूपों को दर्शाती गजलों में सम्पूर्ण जीवन-दर्शन निहित है।'(32) वस्तुतः इस गजल संग्रह में समाज, जीवन और विश्व-पटल का गहरा चिन्तन और उसकी चिन्ता भी है, जो उन्हें समसामयिक गजलगो बनाता है।

डॉ. रामदरश मिश्र के जन्मशती के अवसर पर प्रसिद्ध समीक्षक-आलोचक ओम निश्चल द्वारा संपादित संचयन 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' सर्वभाषा गजल सीरीज के अन्तर्गत सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली से 2023 में ही प्रकाशित हुआ है। आलोचक-संपादक ओम निश्चल ने। इनकी गजल यात्रा की 86 चुनिन्दा गजलों का अनूठा संग्रह तैयार किया है, संपादक ओम निश्चल लिखते हैं- 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' उनकी बेहतरीन गजलों का चयन है। यह उनकी 100वीं वर्षगाँठ पर उन्हें और उनके पाठकों को समर्पित है।'(33) इस संग्रह का नामकरण भी उनकी प्रसिद्ध गजल 'बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे' की दूसरी पंक्ति यानी मिसरा-ए-सानी से किया गया है। यह गजल इस संग्रह में 29वे नंबर पर रखी गई है। संग्रह की पहली गजल है -

ये आवारा बादल जो छाये हुए हैं
न मालूम किसके बुलाये हुए हैं।
डरी चाँदनी बादलों से फिसलती
ये तरु नंगी बाहें बिछाए हुए हैं ।(34)

यह 1954 की गजल है। रहस्य और दर्शन की गजल देखिए-

दूर ही दूर से बुलाता है
कौन है पास नहीं आता है।
उसकी आवाज अजनबी जैसी
फिर भी लगता युगों का नाता है।(35)

एक प्रेमभींनी गजल देखिए-

चाँद को आज रात भर देखा
तेरा क्या-क्या नहीं असर देखा।(36)

आज के छल को बयां करती गजल का शेर देखें-

रोशनी में बड़ा अँधेरा है

आज यह कौन सा सवेरा है।
रात भर साथ हम चले जिसके
दिन में देखा कि वह लुटेरा है।(37)

'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे' की पचासी वीं गजल देखिए, जिसमें जीवन की जद्दोजहद के बाद विश्राम में तन्हाई बांटने की बात शायर करता है -

बहुत दौड़े पार की सौ बार खाइयाँ
आइए अब पास बैठें बाँट ले तन्हाइयाँ ।।(38)

डॉ. रामदरश मिश्र कवि, गीतकार, उपन्यासकार, कहानीकार आदि अनेक विधा के सर्जक ख्यात रचनाकार तो हैं ही, वे उतने ही बड़े और प्रतिष्ठित गजलकार भी हैं। उनके जैसा वयोवृद्ध रचनाकार आज हिन्दी में कोई नहीं है। उनकी गजलों का संसार लगभग 400 के ऊपर है, जो ख्याति और तादाद की दृष्टि से अपरिमित है। उन्हें वह प्रतिष्ठा हिंदी गजल के एक अनूठे शैलीकार और सहज मुससल गजलकार के रूप में मिली भी है। समीक्षक ओम निश्चल लिखते हैं- 'हिन्दी गजलों की वह परंपरा जिसकी बुनियाद दुष्यन्त कुमार ने रखी, अदम ने उसे एक नई आबोहवा में सींचा, अनेक छोटे-बड़े सैकड़ों-हजार शायर इसे जिन्दादिली से सींच रहे हैं, रामदरश मिश्र जैसे गजलों के साथ निरंतर, एक सहयात्रा में हैं। यह उनकी गजलों के साथ यायावरी के दिन है। इनमें मनुष्यता का एक नैतिक प्रतिकथन समाया हुआ है।'(39) डॉ. रामदरश मिश्र की गजलें सुरुचिपूर्ण सुधी पाठकों को मनुष्यता से परिचय कराती, संवेदनाओं से सहलाती, परिवेशगत सच्चाइयों से रू-ब-रू कराती जन की भाषा में, जनता के लिए, जनता का आख्यान करती सहज-सरल गजलों का गुच्छा है। गजल की दुनिया में वे एक अलग रास्ता तैयार करने वाले रचनाकार दिखते हैं।

संदर्भ सूची :

1. मूल्यपरक सर्जना की शताब्दी गाथा - किरण झा, आजकल (मासिक), अगस्त 2024, पृ. -19
2. खुले मेरे ख्याबों के पर धीरे-धीरे- संपादक - ओम निश्चल भूमिका, पृ.-7
3 जीवन-राग से गुंजायमान रामदरश मिश्र की गजलें- डॉ. वेदमित्र शुक्ल, कथादेश - पृ० 39, अगस्त 2023
4. वही, पृष्ठ -39
5. उद्धृत - चमत्कृत नहीं स्पन्दित करती हैं - डॉ. रामदरश मिश्र की गजलें - नरेश शांडिल्य, साहित्य यात्रा (जुलाई-सितम्बर-2015), पृ.- 24, ले. डॉ वेदमित्र शुक्ल
6. वही
7. वही
8. डॉ. रामदरश मिश्र से साक्षात्कार, नई धारा, अप्रैल-मई 2022, पृष्ठ -5
9. खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे - ओम निश्चल, सर्वभाषा प्रकाशन, दिल्ली, भूमिका, पृष्ठ -7
10. बाजार को निकले हैं लोग (गजल संग्रह), डॉ रामदरश मिश्र, पृ.54
11. 51 गजलें (गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र - भूमिका

12. सपना सदा पलता रहा (गजल संग्रह) - डॉ. रामदरश मिश्र- भूमिका से - उद्धृत, डॉ. वेदमित्र शुक्ल, जीवनराग से गुंजायमान रामदरश मिश्र की गजलें, कथादेश, अगस्त 2023, पृ. 39
13. वही
14. सपना सदा पलता रहा (गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र, पृ. -13
15. 'दूर घर नहीं हुआ',(गजल संग्रह) - डॉ. रामदरश मिश्र - पृ.5
16. वही, पृ. 9
17. वही पृ-15
18. वही, पृ. -9
19. वही, पृ.- 10
20. 'खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे', (गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र, भूमिका, पृ.- 13
21. वही
22. वही, पृ.- 08
23. खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे -(गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र, भूमिका, पृ.-8-9
24. ब्लॉग से साभार
25. मूल्यपरक सर्जना की शताब्दीगाथा - किरण झा, उद्धृत, आजकल, अगस्त - 2024, पृष्ठ - 20
26. वही, पृष्ठ -20
27. वही, पृष्ठ -21
28. वही, पृष्ठ -21
29. वही, पृष्ठ -22
30. वही, पृष्ठ -22
31. वही, पृष्ठ -23
32. वही
33. खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे-धीरे, (गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र, भूमिका - ओम निश्चल - सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-17
34. वही, पृष्ठ -23
35. वही, पृष्ठ -25
36. वही, पृष्ठ -26
37. वही, पृष्ठ -34
38. वही, पृष्ठ -111
39. खुले मेरे ख्वाबों के पर धीरे धीरे (गजल संग्रह), डॉ. रामदरश मिश्र, भूमिका- ओम निश्चल, पृष्ठ -16

डॉ. अमर कांत कुमर, मानस (मैथिली साहित्य परिषद के पीछे), न्यू प्रोफेसर कॉलोनी, दिग्घी परिच, दरभंगा-846004 (बिहार), मो. : 9430236078, ईमेल - amarkantkumar1959@gmail.com

✧ ✧ ✧

अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र के जन्मप्रसंग

प्रो. (डॉ.) प्रतिभा राजहंस

अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र अवतारी होते हुए भी लौकिक पात्र हैं। उनका आविर्भाव मानवी के गर्भ से जन्म होता है। वे अलौकिक गुणों से युक्त दाशरथि राम हैं। लोकमानस में प्रतिष्ठित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम सामान्य पुरुष जैसा व्यवहार भी करते हैं। श्रीरामजन्म के पूर्व के प्रसंगों के अंतर्गत पुत्र प्राप्ति हेतु राजा दशरथ और कौशल्या की व्याकुलता - संतति की स्वाभाविक कामना और तीन रानियों के होते हुए भी पुत्रशून्य होना अयोध्यानरेश के लिए विकट प्रश्न था। सोहरगीतों में राजा और रानी की व्याकुलता की प्रबल अभिव्यक्ति हुई है। इससे संबंधित दो तरह के गीत मिलते हैं। एक वे गीत, जिसमें राजा और रानी पुत्र प्राप्ति के लिए समाज में प्रचलित पूजा-पाठ और चिकित्सकीय उपचार करते हैं। दूसरे में, शास्त्रोक्त विधि से पुत्रकामेष्ठि यज्ञ का आयोजन करते हैं। सोहर गीतों में राजा-रानी, दोनों में पुत्र की कामना समान रूप से देखी जाती है। निःसंतान रानी मातृत्व सुख के लिए दासी की खुशामद करती है कि वह अपने बच्चों में- से एक बच्चा रानी को पैंचा दे दे, ताकि उसको खेलाकर वे बच्चे को खेलाने का सुखानुभव प्राप्त कर सकें।

बारह कलाओं से युक्त परात्पर ब्रह्म के सातवें अवतार श्रीरामचंद्र का दाशरथि 'राम' के रूप में प्राकट्य सभी जानते हैं। परंतु, संभवतः सभी यह नहीं जानते होंगे कि उनके प्राकट्य में अंगजनपद का भी योगदान रहा है।

ऱम्घञ्= रामः का अर्थ है सर्वत्र और सर्वदा विराजमान रहने वाली दिव्यात्मा, जो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान हैं। ऐसे परमप्रभु की नरलीला हेतु नरतन धारण करने का माध्यम अंगभूमि बनी थी। राजा दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ करवाने वाले ऋषिश्रेष्ठ शृंगीऋषि अंगजनपद के ही थे। उन्हें अंगजनपद के तत्कालीन राजा रोमपाद, जो राजा दशरथ के मित्र थे, उनकी सहायता से अयोध्या बुलवाया गया था। ज्ञातव्य है कि शृंगीऋषि राजा रोमपाद के जामाता थे और रोमपाद की पालिता पुत्री शांता मूलतः राजा दशरथ और रानी कौशल्या की पुत्री थी। इससे अवध व अंगनरेश की अंतरंगता का भी पता चलता है। इस बात का साक्ष्य न केवल महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायण' में मिलता है, वरन् भवभूति रचित 'उत्तर रामचरितम्' में भी यह प्रसंग वर्णित है। उदाहरणस्वरुप, उत्तर रामचरितम् के प्रथम अंक का 44वाँ श्लोक देखा जा सकता है। यथा -- 'कन्या दशररथो राजा शांतां नाम व्यजीजनत। अपत्य कृत्तिकां राज्ञो रोमपादाय तां ददौ।' रामचन्द्र का दूसरा संबंध प्राचीन अंगजनपद - वर्तमान बिहार प्रांत के एक प्रखंड बक्सर (व्याघ्रसर) में ही पहली बार श्रीरामचंद्र ने महर्षि विश्वामित्र के आश्रम

में ताड़का और सुबाहु जैसे असुरों पर विजय प्राप्त की, जिससे प्रसन्न हो महर्षि ने आशीर्वादस्वरूप उन्हें 'बला' और 'अबला' जैसी अजेय सामरिक शक्तियाँ प्रदान की थीं। यहीं उन्होंने अहिल्या का उद्धार भी किया था। इन सभी कृत्यों से अल्पकाल में ही उनकी यशोगाथा चतुर्दिक प्रसरित हुई थी। तीसरा संबंध -- अंगभूमि से श्रीरामचंद्र का विवाह का भी संबंध है। प्राचीन अंगजनपद, जिसकी पूर्वी सीमा बंगाल तक, पश्चिमी सीमा बक्सर तक, उत्तरी सीमा नेपाल तथा दक्षिणी सीमा कोयलांचल तक थी, उसी के एक नगर जनकपुर में जग्जननी वैदेही सीता से उनका विवाह हुआ था। इस तरह, रामचन्द्र के जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रसंगों में अंगभूमि का संगसाथ बना रहा था।

ऐसे में अंगभूमि की नारियों के कंठ में बसने वाले सुमधुर अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र के जीवन की अनेक मनोहर झाँकियाँ मिलना स्वाभाविक ही हैं। अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र के जीवन प्रसंग भरे हुए हैं।

अंगिका लोकगीतों में श्रीरामचंद्र अवतारी होते हुए भी लौकिक पात्र हैं। उनका आविर्भाव मानवी के गर्भ से जन्म होता है। वे अलौकिक गुणों से युक्त दाशरथि राम हैं। लोकमानस में प्रतिष्ठित मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम सामान्य पुरुष जैसा व्यवहार भी करते हैं। ठीक वैसे ही, जैसे तीनों लोकों के स्वामी होते हुए भी श्रीकृष्ण गोकुल में कन्हैया ही बने रहे। अध्ययन की सुविधा के लिए अंगिका लोकगीतों में आगत श्रीरामजन्मप्रसंगों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यथा--1. जन्मपूर्व के प्रसंग तथा

2. जन्म के बाद के प्रसंग।

श्रीरामजन्म के पूर्व के प्रसंगों के अंतर्गत पुत्र प्राप्ति हेतु राजा दशरथ और कौशल्या की व्याकुलता - संतति की स्वाभाविक कामना और तीन रानियों के होते हुए भी पुत्रशून्य होना अयोध्यानरेश के लिए विकट प्रश्न था। सोहरगीतों में राजा और रानी की व्याकुलता की प्रबल अभिव्यक्ति हुई है। इससे संबंधित दो तरह के गीत मिलते हैं। एक वे गीत, जिसमें राजा और रानी पुत्र प्राप्ति के लिए समाज में प्रचलित पूजा-पाठ और चिकित्सकीय उपचार करते हैं। दूसरे में, शास्त्रोक्त विधि से पुत्रकामेष्ठि यज्ञ का आयोजन करते हैं।

सोहर गीतों में राजा-रानी, दोनों में पुत्र की कामना समान रूप से देखी जाती है। निःसंतान रानी मातृत्व सुख के लिए दासी की खुशामद करती है कि वह अपने बच्चों में- से एक बच्चा रानी को पैंचा दे दे, ताकि उसको खेलाकर वे बच्चे को खेलाने का सुखानुभव प्राप्त कर सकें। इसका उदाहरण प्रस्तुत है -- 'अंगना बोहारैतें तोहें राजाजी के चेरिया न गे। चेरिया एगो होरिला पैंचा देबैतें, कि ओहि ले धैरज धरबै न गे।' लेकिन, दासी उन्हें यह कहकर मना कर देती है कि कोख का बालक कोई नमक -तेल है कि पैंचा दिया जाए? कहती है -- 'नोन पैंचा हे रानी, तेल पैंचा हे। रानी हे बड़ी रे जतन केर होरिलबा, सेहो कैसें पैंचा देबो हे।' यह हृदयद्रावक वार्तालाप सुनकर राजा का मन दुखी हो जाता है। फिर, वे बढ़ई से कठपुतली बनवाकर रानी को बहलाने का प्रयत्न करते हैं। पर, रानी खुश नहीं हो पाती हैं क्योंकि, काठ की पुतली न तो हँसती थी न ही बोलती थी। इससे रुआंसी होकर रानी शिकायत करती हैं -- 'राजा हे, काठ के कठपुतली मुखहुँ न

बोलय नैनमो न ताकय हे ... और तब कलपती हुई संतति प्राप्ति के लिए किये अपने सारे प्रयत्नों व पूजा-पाठ के विषय में राजा को कह सुनाती है। यथा -- 'कासी सेबलाँ कुसेसर सेबलाँ, आरो अदितबाबा हे। राजा सेबलाँ म बाबा बैजनाथ, कि तैयो न आस पूरल हे।' अंत में यह भी कहती है कि संतान के बिना जन्म व्यर्थ हुआ जा रहा है। ऐसे में, अब और शरीर धारण का क्या प्रयोजन? देखा जाए -- 'कथी लाए देव दियावन, भगती अराधल रे। कथी लाए सून संसार, सरीर कोना साधव रे।' अत्यंत मार्मिक सोहर में चिंता से व्याकुल रानी को राजा बहुत समझाते हैं, पर वे नहीं मानती हैं। निरुपाय दोनों पंडित से ग्रह दशा का विचार करवाते हैं।-- 'विपर सगुन के पोथिया उनटाय देहो, संतति कहिया होएत हे'? 'लेकिन, जब ज्योतिषी बतलाते हैं कि किसी भी उपाय से पुत्र की प्राप्ति संभव नहीं है क्योंकि, पुत्र सुख उनके भाग्य में नहीं है।... 'पुरब के चाँद पछिम होएत हे... संतति तोहरा न होएत हे।' प्रतिकूल ग्रहदशाओं की बात जानकर राजा भी दुखी हो जाते हैं -- 'एतना बचनियाँ राजा सुनलन,सुनहू पैलन हे।'

सोहर गीतों में गुरु बसिष्ठ द्वारा बतलाई गई और राजा दशरथ के द्वारा लाई गई व किसी गीत में स्वयं गुरु बसिष्ठ द्वारा लाई गई औषधियों का पान करना भी वर्णित हुआ है। द्रष्टव्य है -- 'बगियहिं घूमै बसिठ मूनि, मनेमन सोचौ हे। राजा बन फरलै अकन फूल रानी क पियाबहो हे.. '। यही नहीं,... 'कहवाँ सें लोढिया, कहाँ सें सिलोटिया न हो। ललना रे, कोनी गाम सें बहिनी मँगावल, औखध पीसी देथिन हे।' और किसी गीत में-- 'कहवाँ रे कन्या कुमारी, औखध पिसाएति हे।' यहीं नहीं, किस दिशा में लोढी सिलोट रखकर औषधि पीसी गई व किस मुख होकर उसका पान किया गया, इसका ब्यौरा भी सिलसिलेबार प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए देखा जाए- 'कौने मुख राखब लोढिया, कौन मुख सिलोट भल हे। ललना रे कौन मुख भरब कटोर, कौने मुख औखध भल पीयति हे।'... 'दखिन मुख राखब लोढिया, पछिम मुख सिलोट भल हे। सुरुज मुख भरब कटोर, पीसी रानी पीयति हे।' इस तरह से औषधि का संधान व दिन तिथि देखकर औषधि उखाड़कर लाना, बहन या कुमारी कन्या के हाथों से पिसवाने और विधि- विधानपूर्वक औषधिपान के कई सुंदर-मनोहर सोहरगीत बहुतायत में पाए जाते हैं।

पुत्र प्राप्ति हेतु शास्त्रसम्मत विधियाँ भी अंगिका लोकगीतों में वर्णित हुई हैं। गुरु बसिष्ठ ऋषि -मुनियों से परामर्श कर यज्ञ का आयोजन करते हैं। यथा -- 'करि असलान राजा दशरथ बदन निरेखल हे।... गुरु बसिठ क बोलाबल औरो मुनि लोग हे।सब मुनि एक मत कैलनि... ललना रे, होम करि भसम बनाओल, पिंड दुई निकालल हे। ललना रे, इहे पिंड रानी क खियाबह, तब वंश बाढत हे।' इस तरह के अनेक गीतों में गुरु के हाथों यज्ञ से प्राप्त पिंड खाने के बाद श्रीराम चारों भाइयों के जन्म की मनोरम कथा वर्णित हुई है।

गर्भाधारण के बाद कौशल्या रानी के स्वप्न में शुभसूचक चीजें देखना तथा पंडित से उसके अर्थ पूछने का भी उल्लेख मिलता है। जैसे -- 'गैया जे देखलाँ बछडुआ संग, बाभन तिलक लेल हे। ललना रे, अमवात देखलाँ भरल फल, पनमाँ सोहाबन हे।' इसका अर्थ पंडित द्वारा बतलाया जाता है-- 'गइया तोर लछमी, बाभन नरायन हे। ललना रे, अमबाँ तोहरोऽ बालक छिकौं, पनमा सोहाबन हे।'

कई सोहरगीतों में रानियों के नवो महीनों के गर्भकाल के लक्षणों के भी विस्तृत व स्वाभाविक चित्र मिलते हैं, यथा -- 'परथम मास जब चढल, देवता मनाबल रे। दोसर मास जब चढल, चित फरियायल रे...सातम मास जब आएल... गरमी मोहे न सोहाबै... आठम मास चढल, छन छन चीर पहेरहुँ, त छन छन ससरै हे। उपर्युक्त गीत में स्वाभाविक लज्जा के साथ ही शारीरिक व मानसिक परिवर्तन का चित्रात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। किस महीने में खाने में अरुचि होती है, किस महीने में अधिक गर्मी लगती है तथा किस महीने में कमर से वस्त्र खिसकने लगते हैं इत्यादि का सटीक वर्णन किया गया है। किसी गीत में रानी की खटाई खाने की इच्छा की भी चर्चा मिलती है। देखा जाए --

'राजा लेने अइहो एकेगो अमोलबा, अमोलबा हम खाएब हे।'

किसी भी शारीरिक वेदना से अधिक कष्टदाई प्रसववेदना का शब्दों द्वारा कितना सही, सटीक व मार्मिक वर्णन अंगिका गीतों में हुआ है, यह भी दर्शनीय है -- ... दरदिया मोर उठल हे।... लाज सरम के बात, कहलो न जाएत हे। सुनलो न जाएत हे। जँघिया सें ऊठल दरदिया, कमरिया मोर फाटल हे। मुहमाँ पियर भेल, दरदिया सें बेआकुल हे।... अंग काँपे गहन जकताँ, डँरबा चिल्हकि मारै हे। ललना रे, मारै पँजरबा में टीस कि राजाजी बोलाए दहो हे। 'असह्य पीड़ा में प्रसविनी रानी राजा को याद करती हैं, जिन पर उन्हें अथाह विश्वास है। शुभ संवाद सुनकर आनंदविह्वल राजा स्वयं घोड़े पर सवार होकर दगरिन को बुला लाते हैं। यथा-- 'एतना बचन जब राजा सुनलन, घोड़ा पीठि भेलन असवार कि दगरिन मनाबल हे।' द्वार पर स्वयं राजा को देखकर दगरिन का मान बढ़ जाता है। वह फूली नहीं समाती है। विशेष अवसर देखकर रानी वाली डोली में बैठकर महल तक जाने की अपनी दिली इच्छा व्यक्त करती है। राजा उसका मान रखते और उसी डोली पर दगरिन को लाते हैं। परंतु, श्रीराम चारों भाइयों के जन्म के बाद उसकी फरमाइशों की झड़ी लग जाती है। देखा जाए -- दगरिन माँगै इनाम हाथी घोड़ा रथ पलकिया न हो।... माँगै अजोधा ऐसन राज...रतन के गहनमाँ, हीरा के मुन्दरिया न हो। हर्षातिरेक की अति है। अत्यंत सुखद व सुंदर अवसर, राजा ने चार अलौकिक पुत्ररत्न प्राप्त किए हैं -- कोसिला के जनमल रामचनदर, कंकई भरत भेल हे। ललना रे, सुमितरा लछमन रिपुसूदन, सब घर सोहामन लागै हे। चहुँ दिस भेल इंजोत, सब सुखसागर हे। स्वयं श्रीराम का जन्म हुआ है। फिर, चहुँ दिस इंजोत भला क्यों न हो? और ऐसे में दगरिन मनचाही माँग क्यों न करे?

अंगिका के चौमासा, छैमासा और बारहमासा में श्रीराम जन्म का महीना, तिथि और वार का विस्तृत वर्णन मिलता है-- 'पहिलऽ महीना सखि चौत सोहाबन राम जनम सुखसार हे।' तत्पश्चात कुलगुरु बसिष्ठ के द्वारा नवजात बालकों का ग्रह- दशा विचार किया जाता है। देखा जाए -- आबह हो गुरुजी, बैसह... बबुआ के लगन बिचारह हो... चौतहि मास छई सुकुल पच्छ नवमी जे तिथि भेल हो। ललना रे, दिन सुदिन रामचन्द्र जनम लेल हो। ललना रे, बारह बरस राम होइतै तो बन क सिधारिते हो।... ललना रे, रामजी जाएत बनबास, कंकई सिर अपजस हो। इतना सुनते ही राजमहल में सब तरफ आनंद छा गया। लेकिन, रामवनगमन जानकर राजा दशरथ दुखी हो गये, जबकि रानियाँ खुश हुई। रानियों का तर्क था कि बालकों के जन्म से उनका बाँझिन नाम छूटा है और बड़े होने पर जो कुछ होगा, उसके लिए अभी से दुखी क्यों हुआ

जाए? छूटल बंझिनियाँ के नाम, रामजी जनम लेल हो। वात्सल्यमयी माँ भविष्य की चिंता को महत्व न देकर वर्तमान के सुख में सब भूल जाना चाहती हैं।

प्रायः सभी सोहर सुखांत हैं। संतान प्राप्ति के लिए किया जाने वाला देवाराधन सफल होता है। सोहर गीतों में राजा-रानी का प्रेम -मिलन, हास-परिहास, प्रेम-शृंगार इत्यादि के बोलते हुए चित्र मिलते हैं।

जन्म के छठे दिन रात में छठीपूजन किया जाता है। छठी की विधियाँ संपन्न करने में बच्चे की पीसी/बुआ की मुख्य भूमिका होती है। इसलिए, पीसी को बहुत आदर के साथ बुलवाया जाता है। पुत्रजन्म से आनंदित हो, वे भाई और भाभी से बहुमूल्य नेग की माँग करती हैं। द्रष्टव्य है --छठम दिन छठियार, साठि अरावली रे।...ननदो बोलाबल रे। आबहु ननदो गुसाउनि, नगर सोहाउनि है...। सोने की पालकी में चढ़कर आई और पटोर पहनाकर ऊँचे पलंग पर बैठाई गई ननद आनंदातिरेक में नेग की पूरी सूची भाई -भाभी के सामने रख देती है। ललना रे, लेबै म जड़ी के कंगनमाँ, ...तबे रे छठी पूजब रे। फिर माँग पूरी हों जाने पर पहिरि ओहरि ननदो बैसलि, दिये लागली असीस हे।... सोने फूल फूलै रामचंदर, बहूरि हम आएब हे।

श्रीराम के जन्मोत्सव पर सब ओर से आनंद बधाबे आते हैं। बधाई देने वाले न केवल पृथ्वी पर के बड़े राजे-महाराजे हैं, बल्कि ऋषि-महर्षि और देवलोक के देवता भी चले आते हैं। उदाहरणार्थ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-- कोसिला के राम जन लेल, कंकई भरत भेल हे। ललना सुमितरा लखन सतरूहन, महल बधइया बाजे हे। केओ मुनि उठलन गाबैत, केओ बजाबैत रे।... राजा दशरथ, मोहर लुटाबैत रे।...गगन में देव सब आएल, फूल बरिसाएल रे। आजु सुमंगल दायक, सब बिधि लायक हे। ललना रे, जनमल रामचनदर, आनंद उर छाएल रे। जब भगवान विष्णु ने स्वयं अवतार लिया हो तो भला ऋषि-महर्षि और देवलोग आनंद बधाबे क्यों न देंगे?

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि श्रीराम के जन्मसंबंधी अंगिका सोहरगीतों में उनके जन्म से पूर्व की चिंता के साथ ही जन्मोपरांत हर्षोल्लास तक के सारे दृश्य पूरी जीवंतता से दृश्यमान हैं।

आशा -निराशा व आनंद-उत्सव की अनेक सुंदर छवियाँ विद्यमान हैं।

प्रो. (डा.) प्रतिभा राजहंस, हिन्दी -विभाग, मारवाड़ी महाविद्यालय, तिलका माँझी, भागलपुर विश्वविद्यालय
मो. : 9939721764

✧ ✧ ✧

तुलसी के शुभंकर

कृष्ण बिहारी पाठक

शुभंकर के मनोभावों का आविर्भाव तिरोभाव नायक के मनोभावों के समानांतर रहता है। सीता स्वयंवर में शिवधनु के श्रीराम के हाथों 'छुअत टूट' में राम के पराक्रम के साथ-साथ उनके शुभंकर शिव की सद्भावना और सौहार्द्र की भी भूमिका रही होगी।अन्य राजाओं के लिए जो शिवधनु अचल पर्वत-सा भारी हो गया था; राम के हाथों का स्पर्श पाकर वह कुसुमवत और भारहीन हो गया है। आगे अरण्यकाण्ड में राम के वनवास के विविध प्रसंग आते हैं। राजसी वैभव को छोड़कर राम वन-वन भटक रहे हैं, कष्टप्रद जीवन जी रहे हैं, किसलिए? धर्म और मर्यादा के लिए। वचन पालन के लिए। विवेकसम्मत कर्मपथ अनुसरण के लिए। अरण्यकाण्ड की शुरुआत तुलसी के शुभंकर शिव के स्तवन के साथ होती है। इस बार शिव का धर्मस्वरूप, विवेकी, मोहरहित तथा वीतरागी स्वरूप वंदित हुआ है कि अरण्यकाण्ड में तुलसी के राम भी तो इन्हीं भाव भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे हैं।

भारतीय संस्कृति में वैवाहिक परंपराओं में से एक परंपरा यह भी प्रचलित है कि विधि विधानों के समय वर-वधू के साथ श्री गणेश जी के प्रतीक रूप में एक बालक को रखा जाता है, जिसे गणेश जी के ही नाम पर बिंदायक (विनायक) कहा जाता है। मान्यता है कि बिंदायक वर और वधू के जीवन में आने वाली बाधाओं के निस्तारण के लिए तथा शुभता, समृद्धि और खुशहाली लाने के लिए मांगलिक प्रतीक है।

इधर पिछले कुछेक दशकों से विश्वभर में विविध पर्व, उत्सवों, खेलों, गतिविधियों, आयोजनों, मेलों आदि में स्थान और समुदाय विशेष की सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं से जोड़ते हुए किसी संबंधित व्यक्ति, वस्तु, पात्र या प्राकृतिक अवयव को उस आयोजन की कुशलता, सफलता, खुशहाली आदि के लिए शुभता के प्रतीक रूप में अपनाने का चलन चला है, यद्यपि भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत में इसकी चिह्न और आधारभूमि प्रारंभ से ही रहे हैं ।

खुशहाली, शांति, सफलता, समृद्धि और शिवकामना का यह प्रतीक शुभंकर कहलाता है। आजकल लोकतंत्र के महापर्व चुनाव में भी शुभंकर का अभिनिवेश होने लगा है। शुभंकर का चलन भले ही अब अधिक प्रचार में आया है परंतु इसका उद्भव और इसके अनुप्रयोग

भारतीय संस्कृति की तह में सहजता से देखे जा सकते हैं।

रामचरितमानस एवं अन्य कृतियों का सृजन भी गोस्वामी तुलसीदास के लिए किसी उत्सव या पर्व से कम नहीं रहा। अपने आराध्य श्री राम पर केंद्रित इस सृजनोत्सव की निर्विघ्न सफलता, चरितार्थता, पूर्णता और सिद्धि के लिए तुलसी ने भी शुभंकर का विधान किया है। रामचरितमानस में विहित रामकथा के हर महत्वपूर्ण पड़ाव पर तुलसी ने अपने प्रिय शुभंकर की शुभ उपस्थिति का अभिनिवेश किया है।

राम का जन्मोत्सव है, विवाहोत्सव है, वन का जीवन है, सीता की खोज है, युद्ध के प्रसंग है या अन्य कोई प्रसंग सभी घटनाओं और स्थानों पर तुलसी के मानस में श्रीराम के शुभचिंतक, सहयोगी की भूमिका में वे उपस्थित हैं। वे आशुतोष हैं, चंद्रमौली, वे रामेश्वरम् हैं। वे शिव हैं, शुभ हैं, शुभंकर हैं। जिनकी स्तुति में यह कहा जाता है 'गौरी निरंतर विभूषित वाम भागम' अर्थात् चिरंतन चरितार्थ दांपत्य और कुटुम्ब प्रबोधन के आदर्श। तुलसी के शुभंकर शिव आदर्श दांपत्य और आदर्श परिवार को परिभाषित करते हैं।

भारतीय संस्कृति में परिवार का संप्रत्यय विशेष रूप से परिभाषित है, और शिव परिवार इसका समर्थ प्रमाण है। श्री राम, कृष्ण सहित लगभग सभी देवों के परिवार हमारी मान्यताओं में प्रचलित हैं किन्तु इन सबके बीच सर्वाधिक मंदिरों, देवालयों में शिव परिवार की ही पूजा क्यों की जाती रही है, यह बात विचार करने योग्य है।

शिव परिवार की स्वभावगत संरचना में विरोधों का सामंजस्य, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और समन्वय का सुरुचिपूर्ण अभिनिवेश है। यह विविधताओं के सम्मान और समरसता की तस्वीर है।

शिव का नंदी, पार्वती का सिंह, कार्तिकेय का मयूर, शिव का सर्प, गणेश का मूषक, अकारण जन्मजात शत्रु होकर भी परिवार की संरचना में आकर अपनी मूल प्रवृत्तियों का पूर्णतः मार्गान्तीकरण कर एक साथ रहते हैं।

शिव परिवार का यह प्रतीकात्मक स्वरूप परिवार का आदर्श हमारे सामने रखता है। यह हमें सिखाता है कि स्वभावगत असमानताएँ और अंतर्विरोधों के बाद भी कैसे हिलमिल कर एक छत के नीचे प्रसन्नता से रहा जा सकता है, न केवल रहा जा सकता है अपितु विश्व वंदनीय भी बना जा सकता है जैसे कि शिव परिवार। खैर, यहाँ इस विषय का विस्तार विषयांतर होगा आइये, शुभंकर पर एकाग्र होते हैं।

रामचरितमानस में प्रत्यक्ष रूप से राम के सहयोगी, शुभचिंतक और संकटमोचक के रूप में हनुमान जी की भूमिका सर्वोपरि है, ऐसे में यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि तुलसी के सृजन संदर्भों विशेषतः रामकथा में शुभंकर शिव को माना जाए अथवा हनुमान को।

यह उचित है कि प्रत्यक्ष और प्रकट रूप में हनुमान ऐसे चरित्र हैं, जो श्रीराम के पग-पग पर साथ निभाने वाले हैं, इस दृष्टि से वे भी शुभंकर कहे जा सकते हैं। तुलसी के सृजन संदर्भों में शुभंकर शिव हैं अथवा हनुमान इस भ्रांति को स्वयं तुलसी ने ही निर्मूल कर दिया है -

'जानि राम सेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान॥' 1

दोहावली के इस दोहे में बहुत स्पष्टता के साथ तुलसी ने यह रहस्योद्घाटन किया है कि हनुमान कोई और नहीं साक्षात् शिव ही हैं। श्रीराम के सान्निध्य में परमानंद जानकर उधर ब्रह्मा जी जांबवान बनकर धरती पर आए तो शिवजी हनुमान बनकर। हनुमान रूप में शिव राम जी के साथ बने रहते हैं।

तुलसी की इस स्वीकारोक्ति के बाद शायद ही किसी तरह के स्पष्टीकरण की आवश्यकता पड़े कि शिव ही तुलसी के शुभंकर हैं। तुलसी के आराध्य राम हैं और जो राम के हितैषी है वे तुलसी के लिए अतिप्रिय है। इसीलिए तुलसी के मानस की प्रस्तावना ही भवानी शंकर के स्तवन से धूमधाम के साथ उठी है -

'भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥"2

तुलसी द्वारा भवानी शंकर को साक्षात् श्रद्धा और विश्वास रूपेण मानना विशिष्ट महत्व रखता है। अगाध श्रद्धा और अटूट विश्वास उन्हीं में जम सकता है, जो सदैव हितसाधना और शुभकामना के भाव के साथ समक्ष आते हैं। तुलसी के श्रद्धा और विश्वास रूप शुभंकर की परिभाषा को ही परिभाषित करते हैं।

राम के प्रति तुलसी की अनन्य भक्ति भावना श्रद्धामूलक है तो शिव के प्रति कृतज्ञतामूलक। तुलसी शिव के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं कि शिव हर संकट में राम के साथ मजबूती से खड़े हैं।

वन में राम लक्ष्मण दोनों भाई सीता की खोज में मारे-मारे फिर रहें हैं। वन के दुर्गम पथ में काँटे, खड्डे, खाई, नदी और पहाड़ हैं पर तुलसी निश्चिंत है, शुभंकर जो साथ हैं। दोनों भाइयों को कंधे पर बिठाकर गंतव्य तक पहुँचाने वाला। सीता और राम के बीच बाधाओं का दुर्लंघ्य समुद्र है, तुलसी के शुभंकर उसे लांघकर सीता का न केवल संधान करते हैं बल्कि लंका दहन कर शत्रु पक्ष को भयभीत और कमजोर कर देते हैं। तुलसी के शुभंकर शत्रु से प्रचंड युद्ध करते हैं।

रामानुज को शक्तिबाण लगा है। रघुकुल पर भारी संकट आन पड़ा है। संकट की घड़ी में तुलसी के शुभंकर संकटमोचन बन गए हैं पहले वे लंका के राजवैद्य को भवन सहित उठाकर लाए हैं, पश्चात् संजीवनी बूटी को पर्वत सहित सूर्योदय से पूर्व लाकर अतुलित पराक्रम और पुरुषार्थ प्रमाणित करते हैं।

रावण रथारूढ़ है और राम पदाति युद्ध कर रहे हैं। तुलसी के शुभंकर राम को अपने स्कंध पर बिठा लेते हैं, यह और बात है सर्वसमर्थ श्रीराम का मनोरथ रावण के रथ से कहीं अधिक समुन्नत और सुदृढ़ है।

शुभंकर के मनोभावों का आविर्भाव तिरोभाव नायक के मनोभावों के समानांतर रहता है। सीता स्वयंवर में शिवधनु के श्रीराम के हाथों 'छुअत टूट' में राम के पराक्रम के साथ-साथ उनके शुभंकर शिव की सद्‌भावना और सौहार्द्र की भी भूमिका रही होगी।अन्य राजाओं के लिए जो शिवधनु अचल पर्वत-सा भारी हो गया था; राम के हाथों का स्पर्श पाकर वह कुसुमवत और भारहीन हो गया है।

धनुष यज्ञ संपूर्ण हुआ। श्री राम की वरयात्रा (बारात) निकल रही है। सौभाग्य का सुअवसर है। शुभंकर शिव इस शुभ घड़ी के साक्षी बनने आए हैं। एक दो नहीं त्रिनेत्रधारी पंचानन अपने पाँच मुखों के कुल पंद्रह नेत्रों के साथ आनंद बटोर रहे हैं -

'जेहिं बर बाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥''3

श्रीराम के इस सुभग सौंदर्य का दर्शन कराने वाले पंद्रह नेत्र आज शिवजी को अतिप्रिय लग रहे हैं। रामचरितमानस एक मानसरोवर का रूपक है, जिसके चार घाट हैं, जिन पर रामकथा चल रही है। पहले घाट पर शिव पार्वती को रामकथा सुना रहे हैं, इस तरह से तुलसी के मानस में शिव राम कथा के प्रधान वाचक या नैरेटर के रूप में प्रतिष्ठित हैं, यह बात ध्यान देने योग्य है।

बालकाण्ड के बाद अयोध्याकाण्ड आता है। यह रामचरितमानस की सभी घटनाओं का केंद्र बिंदु है। बड़े परिवर्तन और निर्णय यहाँ उपस्थित होते हैं। राम के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन पर बड़े प्रभाव यहाँ पड़ने वाले हैं इसीलिए अयोध्याकाण्ड में तुलसी अपने शुभंकर को साथ लेकर आगे बढ़े हैं। अयोध्याकाण्ड का मंगलाचरण कितना पावन है -

'यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम॥4

शिवजी के सरल तरल सौंदर्य का वर्णन कर मानों तुलसी शिवजी को प्रसन्न कर यह प्रार्थना भी कर रहे हैं कि अयोध्याकाण्ड में घटित होने दुष्चक्रों से आराध्य राम की रक्षा करें। राम के साथ ही वे बने रहें। एक और विशेष बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि आगामी कथाक्रम में जैसी

परिस्थितियों का सामना श्रीराम को करना है, उनकी अनुकूलता और साम्य पर आधारित शिवस्तुति के श्लोक तुलसी ने संजोए हैं, आखिर तुलसी के शुभ और शुभंकर साथ-साथ ही तो चलने हैं।

यहाँ पार्वती शुभंकर के साथ बनी हैं, वहाँ जानकी वनवास में साथ आई हैं। यहाँ जटाजूट शिवजी के मस्तक पर गंगाजी विराजित हैं, वहाँ जटाजूट राम ने वन की प्रतिकूलताओं में भी मस्तक की शीतलता धारण कर रखी है। इधर कंठ में हलाहल और वक्ष पर सर्प सहते शिव हैं, उधर वन में कष्ट सहते श्री राम हैं।

आगे अरण्यकाण्ड में राम के वनवास के विविध प्रसंग आते हैं। राजसी वैभव को छोड़कर राम वन-वन भटक रहे हैं, कष्टप्रद जीवन जी रहे हैं, किसलिए? धर्म और मर्यादा के लिए। वचन पालन के लिए। विवेकसम्मत कर्मपथ अनुसरण के लिए। अरण्यकाण्ड की शुरुआत तुलसी के शुभंकर शिव के स्तवन के साथ होती है। इस बार शिव का धर्मस्वरूप, विवेकी, मोहरहित तथा वीतरागी स्वरूप वंदित हुआ है कि अरण्यकाण्ड में तुलसी के राम भी तो इन्हीं भाव भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे हैं।

'मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्री रामभूपप्रियम्।।'5

तुलसी ने जब यह लिखा है कि कलंकनाशक, महाराज श्री रामचन्द्रजी के प्रिय श्री शंकरजी की मैं वंदना करता हूँ तो यह अकारण नहीं हैं। राम का राजपाट छोड़कर वनवास में आना रघुकुल की कीर्ति को अक्षुण्ण रखने वाला और रघुकुल पर छायी कलंक की काली छाया को नष्ट करने वाला सिद्ध हो यह वंदना इस भाव से उपजी है।

तुलसी के सृजन में शुभंकर के रूप में शिव की उपस्थिति की क्रमिकता को देखें, बालकाण्ड प्रस्तावना है वहाँ श्रद्धा विश्वास रूप में शिव का आवाहन है। आगे अयोध्याकाण्ड की उठा-पटक में कंठ में हलाहल और वक्ष पर सर्प सुशोभित शिव मानों राम को विषपान की शक्ति प्रदान करते हैं।

अरण्यकाण्ड में शिव की वैरागी और मोहरहित छवि का ध्यान वन में राम के वीतरागी और निर्मोही जीवन का समर्थन करता है। राम के जीवन प्रसंगों के समानांतर शिव की रूपछवि का ध्यान और स्तुति शुभंकर की परिकल्पना और आयोजना को पुष्ट करते हैं। किष्किन्धाकाण्ड की शुरुआत शिवधाम काशी के सेवन से होती हैं वहीं सर्व कृपालु शिव को भजते रहने का आग्रह भी प्रबल है। सुंदरकांड में राम की स्तुति सीधे-सीधे राम के रूप में न करते हुए शिव के प्रिय के रूप में तुलसी ने की है।

लंकाकांड मानस का निर्णायक पड़ाव है। यहाँ मंगलाचरण में समानांतर रूप से एक श्लोक में श्रीराम की तो दूसरे में शुभंकर शिव की स्तुति तुलसी ने की है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि राम को तुलसी ने कामदेव के शत्रु शिव के प्रिय और पूज्य के रूप में संबोधित किया है। दूसरे श्लोक में मनोयोगपूर्वक शिवस्तुति की है -

'शंखेन्द्वाभमतीवसुंदरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियम्।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कंदर्पहं शंकरम्।।'6

अनंत समुद्र पर सेतु बनाने का उपाय तो मिल गया है पर क्या शुभंकर को मनाए बिना ही सेतु बन जाएगा। नहीं! तुलसी के राम तुलसी के शुभंकर को मनाने के लिए 'करिहउँ इहाँ संभु थापना' कहकर रामेश्वरम् की स्थापना करते हैं और 'सिव समान प्रिय मोहि न दूजा' कहकर अपनी अनन्यता की उद्घोषणा करते हैं। तुलसी स्वयं भले ही 'जाके प्रिय न राम वैदेही' कहकर रामेतर को त्यागने की सलाह देते हैं पर तुलसी के राम शिवद्रोही को त्यागने की बात कहकर तुलसी के शुभंकर की श्रेष्ठता पर मुहर लगा देते हैं।

'सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा।।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी।।'7

इसी प्रसंग में आगे चलकर तुलसी ने श्रीराम के मुख से रामेश्वरम् धाम का माहात्म्य कहलवाया है। उत्तरकाण्ड में तुलसी विरचित रुद्राष्टकम न केवल तुलसी की रचनात्मकता के उत्कृष्ट उदाहरणों में से एक है अपितु शिवजी के अर्चन वंदन स्तवन में लिखित सभी छंदबंदों में भी शीर्षस्थ ठहरता है। रुद्राष्टकम के पठन-पाठन के सर्वहितकारी, सर्व सुखकारी परिणाम गिनाकर तुलसी ने इसे छंद से मंत्र की उच्चस्तरीयता प्रदान की है।

श्रद्धेय और प्रियतम की रूपछवि के वर्णन का आदर्श यहाँ तुलसी की रचनात्मकता में निखरता है। विद्यापति के 'जनम अबधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल' और जायसी के पारस रूप से कहीं अधिक समुन्नत और विस्तीर्ण। रुद्राष्टकम की 'चलत्कुण्डलं भ सुनेत्रं विशालं' पंक्ति में शिव जी के कर्णकुंडल के लिए तुलसी ने गतिशील बिंब उपस्थित किया है। रूप वर्णन में ऐसे वैशिष्ट्य जीवंतता लाते हैं। शिव के कानों में कुण्डल शोभित हैं के स्थान पर कर्णकुंडल हिल रहें हैं का प्रयोग कितना अर्थसमृद्ध बन गया है यह कहने की आवश्यकता नहीं।

गंगा के लिए स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी और चारु गंगा, भाल चंद्रमा के लिए बालेंदु तथा शुभंकर शिव के लिए यथास्थान तल्लीनता के साथ रुद्र, हर, शम्भू, उमानाथ, कलातीत, कल्याण, कल्पांतकारी, मन्मथारी, मोहापहारी, पुरारी, सज्जन आनंद दाता, प्रचंडं, प्रकृष्टं, प्रगल्भं, परेशं सहित कितने ही साभिप्राय संबोधन तुलसी ने जुटाए हैं वे कवि के हस्तलाघव,

काव्य कौशल के साथ-साथ विशुद्ध भावात्मक आत्मीयता के भी परिचायक हैं।

शुभंकर शिव की स्तुति तुलसी ने मानस के अतिरिक्त अन्य ग्रंथों और स्थानों पर भी की है। विनय पत्रिका में जहाँ सभी देवों की वंदना है तो शिवजी की भी। विशेष बात यह है कि तुलसी ने विनय पत्रिका में स्थानों को लेकर केवल दो स्थलों की वंदना की है वे हैं काशी और चित्रकूट। पुण्य सलिला भारतभूमि जहाँ के कण-कण में तीर्थस्थली है वहाँ से केवल दो ही स्थलों के चुनाव के पीछे कोई तो दृष्टि काम करती होगी।

पहला काशी है जो शिव के शुभंकर का प्रिय स्थल है और दूसरा है चित्रकूट जहाँ रामचरित में तुलसी के लोक-मंगल, लोकसंग्रह, समन्वयवाद, दास्य और दासानुदास भक्ति आदि आदर्श प्रतिफलित होते हैं।

संदर्भ -

1. तुलसीदास, गोस्वामी, दोहावली, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 53
2. तुलसीदास, गोस्वामी, सं.2065, रामचरितमानस (बालकाण्ड), गीता प्रेस गोरखपुर
3. पूर्वोक्त
4. तुलसीदास, गोस्वामी, सं.2065, रामचरितमानस (अयोध्या काण्ड), गीता प्रेस गोरखपुर
5. तुलसीदास, गोस्वामी, सं.2065, रामचरितमानस (अरण्यकाण्ड), गीता प्रेस गोरखपुर
6. तुलसीदास, गोस्वामी, सं.2065, रामचरितमानस (लंका काण्ड), गीता प्रेस गोरखपुर
7. पूर्वोक्त

कृष्ण बिहारी पाठक, व्याख्याता हिंदी, तिरुपति नगर, हिंडौन सिटी

जिला -करौली (राजस्थान), पिन कोड- 322230, मो. : 9887202097

✧ ✧ ✧

'साये में धूप' के पचास साल और दुष्यंत कुमार की गजलधर्मिता

डॉ. अविनाश भारती

जिन्हें आम आदमी और किसानों की हिफाजत करनी थी, दुर्दशा को ठीक करनी थी वो आज अपनी अय्याशी पूर्ण जीवन में लिप्त हैं। उन्हें अपनी फिकर है, गरीबों की नहीं। गरीबों के सामने उनका हिमायती बनना और पीछे में उन्हीं का शोषण करना नेताओं के इस चरित्र से दुष्यंत कुमार पूर्णतः वाकिफ जान पड़ते हैं। दुष्यंत कुमार आम लोगों की दुर्दशा के पीछे आम लोगों को ही जिम्मेदार मानते हैं। उन्हें अफसोस है कि लोग अपने अधिकारों से अनजान हैं। भय की वजह से खामोश रहना इनकी नियति बन चुकी है। दुष्यंत कुमार ने स्वीकार किया है कि साहित्य का काम मनोरंजन करना नहीं, अपितु समाज में सार्थक बदलाव लाना है। यह सोच उनकी गजल लेखन की पहली शर्त जान पड़ती है। उनकी गजलों में आम आदमी की पीड़ाओं की मुखर अभिव्यक्ति है।

शोध-सार : दुष्यंत कुमार की कालजयी कृति 'साये में धूप' के प्रकाशन के पचास वर्ष पूरे हो चुके हैं। सन् 1975 में प्रकाशित दुष्यंत का यह इकलौता गजल-संग्रह अपनी नवीनता और दूरदर्शिता की वजह से आज भी पाठकों के बीच खूब लोकप्रिय और प्रासंगिक है। इन पाँच दशकों में वक्त बेशक बूढ़ा हो गया हो किंतु दुष्यंत की गजलें आज भी जवान हैं।

दूसरी ओर दुष्यंत की गजलधर्मिता, उनकी प्रतिबद्धता मौजूदा समय के गजलकारों को प्रेरणा और सही दिशा देने का काम करती है। कहीं-न-कहीं 70 के दशक में इंकलाब की जो मशाल दुष्यंत कुमार ने जलाई थी, आज वही मशाल हिन्दी गजलकारों के हाथों में है। अब हिन्दी गजल तनिक भी अकाव्योचित और असाहित्यिक नहीं रही। अर्थात् अब गजल भी अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक विद्रूपताओं को रेखांकित करती हैं।... और इन सबके पीछे दुष्यंत कुमार का अतुलनीय योगदान है। दुष्यंत की बनाई परिपाटी, उनकी सोच और उनका तौर-तरीका वर्तमान गजल-लेखन परंपरा की पहली शर्त जान पड़ती है।

बीज-शब्द :

दुष्यंत कुमार, हिन्दी गजल, सरोकार, मोहभंग, विसंगति, सरकार, सत्ता नीति, हिन्दुस्तान, साये में धूप, परम्परा, प्रतिबद्धता

मूल आलेख :

विदित हो कि आयातित विधा होने के कारण हिन्दी गजल, उर्दू गजल के कथ्य एवं शिल्प से प्रभावित तो है किन्तु इसने अपने कथ्य-कौशल में निश्चय ही परिष्कार किया है, जो प्रत्यक्ष रूप से समाज की समस्याओं से जुड़ती हैं। गौर करने पर ज्ञात होता है कि हिन्दी गजल में शिल्प के अलावा शेष सब कुछ हिन्दी कविता का ही है। अतः कहा जा सकता कि हिन्दी गजल-लेखन की अपनी पृथक और गौरवशाली परम्परा रही है।

यह अलग बात है कि हिन्दी गजल दुष्यंत से जानी और पहचानी गई लेकिन हिन्दी गजल के पहले शोधकर्ता डॉ. रोहिताश्व अस्थाना की माने तो दुष्यन्त कुमार के पूर्व ही हिन्दी में गजल की एक सुदीर्घ एवं सुसंपन्न परंपरा विद्यमान थी। अमीर खुसरो द्वारा आरंभ की हुई यह विधा कबीर, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रसाद, निराला, शमशेरबहादुर सिंह जैसे समर्थ कवियों के हाथों में पलकर अपना व्यापक अस्तित्व बना चुकी थी। दुष्यन्त को भी शमशेर बहादुर की गजलों से व्यापक प्रेरणा प्राप्त हुई। उन्होंने गजल के माध्यम से नई कविता की अति बौद्धिकता के विरुद्ध आवाज उठाई। इतना ही नहीं, उन्होंने हिन्दी गजल को परंपरागत प्रेम और सौंदर्य की संकीर्ण परिधि से मुक्त करके समसामयिक जीवंत संदर्भों से जोड़ते हुए इस क्षेत्र में नवीन संभावनाओं को जन्म दिया, वास्तव में हिन्दी में नई गजल अथवा हिन्दी गजल का आंदोलन खड़ा करने का श्रेय निर्विवाद रूप से दुष्यन्त कुमार को ही जाता है। उन्होंने हिन्दी गजल को विधिवत् एक नई एवं स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित किया तथा उसे लोकतंत्रात्मक साँचा भी प्रदान किया। दुष्यन्त की गजलें निरंतर 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'प्रतीक', 'कल्पना' आदि जैसी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में छपने के उपरांत पुस्तक के आकार में 'साये में धूप' के नाम से प्रथम बार सन् 1975 में प्रकाशित हुई, जिसमें कुल 52 गजलें संकलित हैं। (1) और यही 52 गजलें 'साये में धूप' के पचास वर्ष पूरे होने के बाद भी आम-अवाम के दिलों-दिमाग पर पक्के रंग की भाँति अंकित हैं।

हिन्दी गजल को एक विधा के तौर पर स्थापित करने में दुष्यंत के अवदान को नहीं कभी नहीं भुलाया जा सकता। 'साये में धूप' के प्रकाशन से लेकर आज तक हिन्दी गजल में दुष्यंत की गजलें अपना रुतबा, आबो-ताब, अपनी सार्थकता और विमर्श बनाए हुए हैं।

निःसंदेह हिन्दी गजल सम्राट दुष्यंत कुमार की गजलों ने काव्य को नयी भावभूमि एवं नवीन तेवर प्रदान किये हैं, जिस कारण गजल दरबारों से निकलकर जनमानस का कंठहार बन गई है।

दुष्यंत कुमार की गजलों में आवाम के दुख की गहरी चिंता है, तो आवाम के टूटे हुए सपनों

की बेचैन आवाजें भी सुनाई देती हैं। दुष्यंत कुमार ने हमेशा ही अपनी गजलों में स्व-पीड़ा की जगह आम जनमानस की पीड़ा को प्राथमिकता दी है। इस कथन की पुष्टि के लिए उनके ये शेर बेहद उपयुक्त जान पड़ते हैं। शेर हैं-

इस दिल की बात कर तो सभी दर्द मत उँडेल,
अब लोग टोकते हैं गजल है कि मर्सिया। (2)

इसी प्रकृति का यह शेर देखें-

वे कर रहे हैं इश्क पे संजीदा गुफ्तगू,
मैं क्या बताऊँ मेरा कहीं और ध्यान है। (3)

जाहिर सी बात है कि दुष्यंत का ध्यान देश की गरीबी, लाचारी और बेबसी की ओर है। कहीं-न-कहीं गजल की परिभाषा दुष्यंत की कसौटी तक आते-आते बदल जाती है। वह अन्य सभी सामाजिक समस्याओं पर बराबर नजर रखती है तथा अन्य सभी विधाओं की भांति गजल भी सामाजिक सरोकारों से जुड़ती हुई प्रतीत होती है। फलस्वरूप दुष्यंत की गजलों को हिन्दी गजल का मुख्य द्वार कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

दुष्यंत कुमार बखूबी आम आदमी की बेबसी और लाचारी से वाकिफ हैं और पूरी संवेदना व मुखरता के साथ उनकी आवाज बुलंद करते हैं, लेकिन दुष्यंत आम जनता की इस दयनीय स्थिति का कारण भी उन्हें ही मानते हैं। लंबे समय तक गुलामी में जीने के कारण आजाद भारत में भी लोगों की मानसिकता में कोई खास बदलाव देखने को नहीं मिलता। इसी कारण से आम अवाम के प्रति अगाध प्रेम और मोह होने के बावजूद भी गजलकार की नाराजगी उनकी गजलों में साफ-साफ मुखरित होती है। इस बाबत कुछ उल्लेखनीय अशआर ध्यातव्य हैं-

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा। (4)
न हो कमीज तो पाँवों से पेट ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए। (5)
तुम्हारे पाँवों के नीचे कोई जमीन नहीं,
कमाल ये है कि फिर भी तुम्हें यकीन नहीं। (6)
ये लोग होमो-हवन में यकीन रखते हैं,
चलो यहाँ से चलें, हाथ जल न जाए कहीं।(7)

विदित होगी कि किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास में बाधा उत्पन्न करने वाले कारकों में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, जड़ता, कर्तव्य-हीनता, सरकार की उदासीनता आदि प्रमुख हैं।

दुष्यंत कुमार इन्हीं जड़ताओं को तोड़ने की बात करते हैं। लंबे समय से सुषुप्तावस्था में पड़े

लोगों को जागरूक करने के साथ-साथ दुष्यंत कुमार अन्य रचनाकारों को भी अपनी रचनाधर्मिता का अहसास कराते हुए नजर आते हैं।

समस्याओं के उन्नमूलन हेतु कई उदाहरण, प्रतिकों और बिम्बों का सहारा लेते हुए गजलकार कहते हैं-

इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।
एक चिनगारी कहीं से ढूँढ़ लाओ दोस्तो,
इस दीये में तेल से भीगी हुई बाती तो है। (8)

लिखित साहित्य को आधार बनाकर आलोचकों ने स्वीकार किया है कि साठोत्तरी कविता मोहभंग की कविता रही है। राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव से पहले लुभावने सपने दिखाकर आम-अवाम से वोट तो ले लेती हैं लेकिन सत्ता में आने के बाद उनके दिखाए सपने कभी साकार नहीं होते। लोगों की इसी नाराजगी और मोहभंग की स्थिति को दुष्यंत कुमार ने भी अपनी गजलों का मुख्य विषय बनाया है। एक शेर ध्यातव्य है-

कैसी मशालें लेके चले तीरगी में आप,
जो रोशनी थी वो भी सलामत नहीं रही। (9)

एक आदर्श समाज और राष्ट्र-निर्माण के प्रति गजलकार अपनी प्रतिबद्धता और समर्पण-भाव जाहिर करते हुए कहता है-

ये दरवाजा खोलो तो खुलता नहीं है,
इसे तोड़ने का जतन कर रहा हूँ।(10)
रक्त वर्षों से नसों में खौलता है,
आप कहते हैं क्षणिक उत्तेजना है।(11)

अपनी प्रतिबद्धता और कोशिशों के साथ-साथ दुष्यंत कुमार आम-अवाम को भी अपनी जिम्मेदारियों का अहसास कराते हुए नजर आते हैं। उन्हें पता है कि सरकार की उदासीनता यूँ ही नहीं खत्म होगी, उसे खत्म करना पड़ेगा। अर्थात अब लोगों को जगना होगा और अनवरत अपने जगे होने का अहसास भी कराते रहना होगा। इस बाबत कुछ चर्चित और लोकप्रिय देखें जा सकते हैं। शेर हैं-

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,
हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।
सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,

मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए। (12)
आज सड़कों पर लिखे हैं सैकड़ों नारे न देख,
घर अँधेरा देख तू, आकाश के तारे न देख।(13)

अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिन्दी गजल की भूमिका' में शिवशंकर मिश्र स्वीकार करते हैं कि- 'भाषा, विचार, काव्य-संस्कार तथा समसामयिकता का जो संतुलन दुष्यंत ने प्राप्त किया, वह संभवतः अभी तक दुहराया नहीं जा सका है।'(14)

हिन्दी में एक बड़े फलक पर दुष्यंत ने पहली बार गजलों से राजनीतिक कविता का काम लिया और वह भी उस्तादों की सफाई और सफलता के साथ। कहना तो यह चाहिए कि निराला और त्रिलोचन में जो किसी हद तक राजनीतिकार्थिक सत्ता की लोलुपता-निरंकुशता और शोषण प्रति वितृष्णा और विरोध बना था, इन बीच के वर्षों में वह भी शांत हो गया था और दुष्यंत की गजलों में हमें वे चीजें सिर्फ लौटकर नहीं मिलतीं, बल्कि बिल्कुल नये सिरे से और नये रूप में मिलती हैं। फर्क यह था कि निराला और त्रिलोचन में जहाँ आवाज मार्क्सवाद के माउथपीस से आ रही थी, दुष्यंत में यह आवाज एक नागरिक की आवाज थी। जाहिर है इसमें क्रांतिकारी आंदोलन के स्वर के बजाय एक नागरिक आंदोलन का स्वर था। इसके बावजूद कि 'साये में धूप' की अधिकांश गजलें इंदिरा गांधी और आपातकाल के विरोध की राजनीतिक पृष्ठभूमि में ही बनी थीं, ये तात्कालिक राजनीति की प्रतिक्रियावादी सीमाओं को लाँघकर एक लोकप्रिय जन-आंदोलन की पक्षधर बन जाती हैं, जिसके साथ ही एक बार और साबित होता है कि कविता राजनीति से अपने कथ्य और अनुभव लेकर भी अपनी अभिव्यक्ति और अपील में असंकुचित और व्यापक होती है। दुष्यंत के ही शब्दों में-

तुम्हीं से प्यार जताएँ, तुम्हीं को खा जाएँ,
अदीब यों तो सियासी हैं, मगर कमीन नहीं। (15)

जिन्हें आम आदमी और किसानों की हिफाजत करनी थी, दुर्दशा को ठीक करनी थी वो आज अपनी अय्याशी पूर्ण जीवन में लिप्त हैं। उन्हें अपनी फिकर है, गरीबों की नहीं। गरीबों के सामने उनका हिमायती बनना और पीछे में उन्हीं का शोषण करना नेताओं के इस चरित्र से दुष्यंत कुमार पूर्णतः वाकिफ जान पड़ते हैं। उनका यह शेर इस बात की पुष्टि करता है। शेर देखें-

आपके कालीन देखेंगे किसी दिन,
इस समय तो पाँव कीचड़ में सने हैं। (16)

यह सही है कि दुष्यंत कुमार आम लोगों की दुर्दशा के पीछे आम लोगों को ही जिम्मेदार मानते हैं। उन्हें अफसोस है कि लोग अपने अधिकारों से अनजान हैं। भय की वजह से खामोश

रहना इनकी नियति बन चुकी है। लेकिन उन्हें इस बात का भी भान है कि व्यवस्था परिवर्तन हेतु इनका भयमुक्त और जागरूक होना अत्यंत आवश्यक है। इस बाबत निराश और हताश मन में ऊर्जा का संचार करता हुआ उनका ये कालजयी शेर देखा जा सकता है-

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो। (17)
पक गई है आदतें, बातों से सर होंगी नहीं,
कोई हंगामा करो, ऐसे गुजर होगी नहीं। (18)

समय-समय पर तानाशाही और निरंकुश सरकार को सही रास्ते पर लाने के लिए सरकार की गलत नीतियों का पुरजोर विरोध होना भी आवश्यक है। सन् 1974 में बिहार में भ्रष्टाचार और कुशासन के खिलाफ छात्रों द्वारा शुरू किया गया एक राजनीतिक आंदोलन जिसका नेतृत्व जयप्रकाश नारायण ने किया था, हम सबके लिए आज भी मिसाल है। जयप्रकाश नारायण की हिम्मत और कर्मठता के प्रति उद्‌गार व्यक्त करते हुए दुष्यंत कुमार कहते हैं-

एक बूढ़ा आदमी है मुल्क में या यों कहो-
इस अँधेरी कोठरी में एक रौशनदान है।

निःसंदेह दुष्यंत कुमार ने मनोरंजन की पर्याय बन चुकी गजल को उसकी परंपरागत परिभाषा और परिधि से बाहर निकाला और नया कलेवर तथा दायरा प्रदान किया। दुष्यंत कुमार ने स्वीकार किया है कि साहित्य का काम मनोरंजन करना नहीं, अपितु समाज में सार्थक बदलाव लाना है। यह सोच उनकी गजल लेखन की पहली शर्त जान पड़ती है। उनकी गजलों में आम आदमी की पीड़ाओं की मुखर अभिव्यक्ति है। इस बात को स्वीकार करते हुए खुद दुष्यंत कुमार कहते हैं-

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग, चुप कैसे रहूँ,
हर गजल अब सल्तनत के नाम एक बयान है। (19)

मौजूदा समय में दुष्यंत कुमार सबसे ज्यादा प्रासंगिक रचनाकारों में से एक हैं, जिसका एक कारण उनका अपने समय के खुरदुरे यथार्थ को हू-ब-हू-हू लिखना है।

सन् 1975-1977 में देश में आपातकाल की स्थिति थी, जिस कारण तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी का विरोध समूचे देश में हो रहा था। श्रीमती गाँधी के इस निर्णय ने आम-अवाम की रोजी-रोटी की समस्या को और विकराल कर दिया था, लेकिन विरोध के बावजूद भी सरकार की तानाशाही से सभी भयभीत थे। दुष्यंत का यह शेर इंदिरा गाँधी के लिए ही था। आप भी देखें-

तू किसी रेल-सी गुजरती है,

मैं किसी पुल-सा थरथराता हूँ। (20)

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि सही मायनों में दुष्यंत कुमार ने गजल को गजल होने का अहसास कराया है। गजल आम आदमी की आवाज, शोषितों का दर्द, निहत्थों का हथियार, भीड़ का नारा, बेरोजगारों की पुकार तथा आम जनता की उम्मीद भी हो सकती है, इसे दुष्यंत ने साबित करके दिखलाया है।

वहीं 'साये में धूप' को पढ़ने के बाद दृढ़ विश्वास होता है कि आम-अवाम के प्रति जब भी सरकार की तानाशाही या उदासीनता बढ़ेगी, तब स्वतः उक्त संग्रह शोषितों का अदम्य हुंकार बनेगा और यही 'साये में धूप' की प्रासंगिकता होगी।

निःसंदेह कालांतर में जब-जब हिन्दी गजल की विकास यात्रा का स्वर्णिम इतिहास लिखा जाएगा, तब-तब व्यक्तिगत तौर पर दुष्यंत कुमार का नाम और उनका योगदान पक्के रंग की भाँति अमिट और प्रकाशवान होगा। अगर कहा जाए कि हिन्दी गजल और दुष्यंत एक ही सिक्के के दो पहलू समान हैं तो यह अतिश्योक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ सूची :

1. हिन्दी गजल उद्भव और विकास, रोहिताश्व अस्थाना, सुनील साहित्य सदन, संस्करण-2017, पृष्ठ- 267, 2. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौसठवाँ संस्करण -2016, पृष्ठ-15, 3. वहीं, पृष्ठ-59, 4. वहीं, पृष्ठ-15, 5. वहीं, पृष्ठ- 13, 6. वहीं, पृष्ठ- 64, 7. वहीं, पृष्ठ- 25, 8. वहीं, पृष्ठ-16, 9. वहीं, पृष्ठ-18, 10. वहीं, पृष्ठ- 20, 11. वहीं, पृष्ठ- 27, 12. वहीं, पृष्ठ- 30, 13. वहीं, पृष्ठ- 31, 14. हिन्दी गजल की भूमिका, शिवशंकर मिश्र, लिटिल बर्ड पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, संस्करण-2024, पृष्ठ-159, 15. साये में धूप, दुष्यंत कुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, चौसठवाँ संस्करण -2016, पृष्ठ- 64, 16. वहीं, पृष्ठ- 43, 17. वहीं, पृष्ठ- 49, 18. वहीं, पृष्ठ- 51, 19. वहीं, पृष्ठ- 57, 20. वहीं, पृष्ठ- 58

डॉ. अविनाश भारती, S/o - श्री दिलीप भारती, ग्राम+पोस्ट : अहियापुर, प्रखण्ड : साहेबगंज
भाया : करनौल, जिला : मुजफ्फरपुर (बिहार), पिनकोड : 843125, मो. : 9931330923

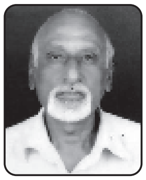

सभ्य (?) समाज को सौंपा गया एक त्याग-पत्र

राजेन्द्र सिंह गहलौत

दरअसल त्यागपत्र दो स्थितियों में देय होता है प्रथम तब जब किसी व्यवस्था से इस हद तक असंतोष हो कि संबंधित व्यक्ति उस व्यवस्था को अपने अनुरूप, अपने लिए हितकर न मान रहा हो, अतः उस व्यवस्था को तिरस्कृत कर उसे त्यागते हुए अपना त्याग पत्र उसे दे दे। इसके विपरीत दूसरी स्थिति वह है जबकि व्यक्ति अपना मनोविश्लेषण करके अपने दायित्वों को भलीभांति न निभा पाने से कुंठाग्रस्त हो गया हो, उसे लग रहा हो कि वह किसी जर्जर रूढ़िग्रस्त व्यवस्था का अंग बन कर उसके खिलाफ स्वर बुलंद करने का साहस नहीं जुटा पा रहा है। और इन सबके चलते वह अपने कर्म को न्यायोचित न मान कर पश्चाताप में अपना त्यागपत्र दे दे। बड़ी विचित्र स्थिति है कि समाज के विद्रूप समझे जाने वाले चेहरे के पीछे मानवता जीवित है और सभ्य समझे जाने वाले उज्ज्वल धवल चेहरे के पीछे मानवता दम तोड रही है।

प्रतिष्ठित साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी, 1905 को कौडियागंज अलीगढ़ में हुआ था। उनका बचपन का नाम आनंदीलाल था। जैनेन्द्र प्रतिष्ठित साहित्यकार प्रेमचंद के युग के उत्तरार्द्ध के महत्त्वपूर्ण साहित्यकार है, इसलिए उन्हें प्रेमचंद का समकालीन माना जा सकता है लेकिन उन्होंने अपने लेखन में प्रेमचंद का अनुकरण नहीं किया। उन्होंने प्रेमचंद के सामाजिक यथार्थवाद से हट कर अपने लेखन से हिन्दी साहित्य को नई दिशा दी, विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन से। जैनेन्द्र की 1929 में पहली लघुकथाओं की पुस्तक प्रकाशित हुई तथा उसके तुरंत बाद उनका पहला उपन्यास ''परख'' प्रकाशित हुआ जो कि हिन्दुस्तान अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया। उसके बाद सन् 1935 में उनका उपन्यास ''सुनीता'' तथा सन् 1937 में उनका उपन्यास ''त्यागपत्र'' प्रकाशित हुए । जबकि उनके कहानी संग्रह ''फांसी'', ''वातायन'', "नीलम देश की राजकन्या", "दो चिड़िया" तथा "पाजेब" प्रकाशित हुये। उन्होंने अपने जीवनकाल में कुल 13 उपन्यास, 10 लघुकथा संग्रह तथा इतनी ही संख्या में दार्शनिक निबंध लिखे। उन्हें सन् 1971 मे भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त सन् 1966 में उनकी

उपन्यासिका "मुक्तिबोध" के लिए उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

उनके सर्वाधिक चर्चित उपन्यास "त्यागपत्र" ने संभवतः साहित्य में पहली बार नारी स्वातंत्र्य की अलख जगाई थी। उपन्यास का कथानक यद्यपि जज प्रमोद के आत्मकथन से प्रारंभ होता है लेकिन मूलतः उपन्यास की नायिका प्रमोद की बुआ मृणाल है तथा उसके साहसपूर्ण जीवन संघर्ष और जिजीविषा की कहानी उपन्यास का कथानक कहता है। सन् 2010 में प्रतिष्ठित साहित्यकार मृदुला गर्ग ने जैनेन्द्र के उपन्यास "त्यागपत्र" की नायिका मृणाल के संदर्भ में कहा था - "हमें मानना पड़ेगा कि वह विलक्षण साहस की महिला है, जो समाज द्वारा अपनाए जाने वाले रीति-रिवाजों को नकारने में सफल होती है। अंततः सबसे गरीब लोगों के साथ अपनी पहचान बनाने के लिए अपने व्यक्तिगत त्याग को उदात्त कर सकती है, उनके साथ रह कर और उनकी सेवा करके कर्त्तव्य की भावना से नहीं बल्कि एक संतुष्टिदायक प्रयास के रुप में।"

उपन्यास का शीर्षक "त्यागपत्र" जज प्रमोद के जजी पद से त्यागपत्र देने को रेखांकित नहीं करता बल्कि उपन्यास की नायिका मृणाल द्वारा सभ्य समाज को त्यागपत्र देकर (त्याग कर) दुर्जन कहे जाने वाले समाज के बीच रहकर अपने स्वतंत्र अस्तित्व को तलाश करने को अभिव्यक्त करता है। दरअसल त्यागपत्र दो स्थितियों में देय होता है प्रथम तब जब किसी व्यवस्था से इस हद तक असंतोष हो कि संबंधित व्यक्ति उस व्यवस्था को अपने अनुरूप, अपने लिए हितकर न मान रहा हो, अतः उस व्यवस्था को तिरस्कृत कर उसे त्यागते हुए अपना त्याग पत्र उसे दे दे। इसके विपरीत दूसरी स्थिति वह है जबकि व्यक्ति अपना मनोविश्लेषण करके अपने दायित्वों को भलीभांति न निभा पाने से कुंठाग्रस्त हो गया हो, उसे लग रहा हो कि वह किसी जर्जर रूढ़िग्रस्त व्यवस्था का अंग बन कर उसके खिलाफ स्वर बुलंद करने का साहस नहीं जुटा पा रहा है। और इन सबके चलते वह अपने कर्म को न्यायोचित न मान कर पश्चाताप में अपना त्यागपत्र दे दे।

प्रस्तुत उपन्यास "त्यागपत्र" में ऐसे दोनों ही त्यागपत्रों का प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण कथानक में पाठकों को इस भांति मिलता हैं कि वह उनसे प्रभावित हुए बिन नहीं रह पाता है। पाठक उपन्यास की नायिका मृणाल की पीड़ा से जहाँ व्यथित हो जाता है, वहीं समाज में स्त्रियों की दयनीय दशा के यथार्थपरक चित्रण से विचारोत्तेजित भी हो उठता है। उपन्यास में नायिका मृणाल की जिजीविषा उसे हर विपरीत स्थिति में समझौता करने को बाध्य करती है, इसके बावजूद सभ्य समाज में हर कहीं वह छली एवं तिरस्कृत की जाती है। अंततोगत्वा वह स्वयं इस सभ्य कहे जाने वाले समाज को तिरस्कृत कर, उसे अपना त्यागपत्र सौंप कर उस बदनाम वर्ग में शरण लेती है, जिसे दुर्जन कहा जाता है, समाज की जूठन कहा जाता है तो इसके लिए दोषी कौन है? यह प्रश्न उपन्यास के रचनाकाल के काफी पूर्व के समय से लेकर वर्तमान तक प्रासांगिक है तथा भविष्य में भी कहीं यथावत न बना रहे इस शंका से भी ग्रस्त हैं।

बड़ी विचित्र स्थिति है कि समाज के विद्रूप समझे जाने वाले चेहरे के पीछे मानवता जीवित है और सभ्य समझे जाने वाले उज्ज्वल धवल चेहरे के पीछे मानवता दम तोड रही है। दृष्टव्य है उपन्यास की नायिका मृणाल का यह कथन- "इन लोगों में जिन्हें दुर्जन कहा जाता है, कई तह पार कर वह तह भी रहती है कि उसको छू सको तो दूध-सी श्वेत सद्‌भावना का सोता फूट निकलता है।" (पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित "त्यागपत्र" उपन्यास का पृष्ठ क्रमांक 67)

सभ्य समाज को दुर्जन समाज के नग्न यथार्थ का दर्पण दिखा कर मृणाल का यह कथन सभ्य समाज के मुँह पर तीखा थप्पड़ लगाता प्रतीत होता है - "यहाँ तहजीब की माँग नहीं है, सहायता की आशा नहीं है। बेहयाई जितनी उघड़ी सामने आये उतनी रसीली बनती हैं। बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए। मनुष्य यहाँ खुल कर सगर्व पशु हो सकता है, जो नहीं हो सकता उसकी मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है। इसलिए सच्चरित्र दिखने वाला यहाँ नहीं टिक सकता। उसे मज्जा तक सच्चा होना चाहिए तभी खैरियत है जो बाहर हो वही भीतर। भीतर पशु

दरअसल उपन्यास में सिर्फ मृणाल ही नायिका हैं जो मानव समाज में युगों से शोषित नारी का प्रतिनिधित्व करती है। जबकि उपन्यास के सभी पुरुष पात्र खलनायक ही साबित होते हैं। प्रमोद (एम दलाल) भी उनमें से एक है जिसका जजी के पद से त्यागपत्र उसका पश्चाताप का पाखंड है जो कि समाज में पुरुष वर्ग के धवल चित्र रखने की लेखकीय वकालत का प्रयास है। जबकि सबसे अधिक पीड़ा प्रमोद की कायरता ही देती है, मृणाल को भी और पाठकों को भी क्योंकि प्रमोद नये जमाने के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसी स्थिति में प्रमोद की उपन्यास में भूमिका यह प्रश्न उठाती है कि क्या नई पीढी के लोग समाज के बंधनों में जकड़े हुये।

हो, तो इस जलवायु में आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी। मनुष्य हो तो भीतर तक मनुष्य होना होगा कलई वाला सदाचार यहाँ खुल कर उघड़ा रहता है।" (पृष्ठ 68)

मृणाल के उपरोक्त कथन को उपन्यास में वर्णित उसकी जीवन गाथा के संदर्भ में देखें, तो वह सभ्य समाज की कलई खोल कर रख देता है। प्रेम में प्रेमी की कायरता, घर में भाई भाभी की रूढ़िगत कट्टरता के चलते उत्पीड़न, विवाह के बाद अधिक उम्र के दुजहा पति द्वारा शोषण, सत्यकथन प्रियता की वजह से पूर्व प्रेम की स्वीकृति कथन के दंड में गृह से निष्कासन, जिंदा रहने की लालसा में अन्य व्यक्ति का दामन थाम लेने पर उस व्यक्ति द्वारा देह प्राप्ति के बाद आकर्षण खो चुकने पर पुनः उसका त्याग और इन सबके बावजूद विभिन्न स्थानों पर नौकरी करते हुए मृणाल का अपने आप को जिंदा रखने का प्रयास और अंत में सभ्य समाज को त्याग पत्र सौंप कर (त्याग कर) दुर्जन समझे जाने वाले समाज में शरण लेना। उन्हीं के बीच जीवन के

अंतिम दिन काट देना और एक बार भी सभ्य समाज के अंतिम आवलंब अपने भाई भाभी के पास जाने का प्रयास नहीं करना यह मृणाल के स्वाभिमानी होने का जहाँ परिचायक है वहीं उसके भाई भाभी द्वारा इस विपन्न स्थिति में भी उसकी खोज खबर न लेना, झूठे मान-सम्मान को बरकरार रखने की कायरता भरी रूढ़िगत सोच में उसे निर्मम समाज में दर-दर भटकने, शोषित होने के लिए छोड़ देना, सभ्य समाज की भीषण दुर्जनता का परिचायक है। जिससे कि दुर्जन कहे जाने वाला वर्ग सभ्य समाज के अपेक्षा अधिक सभ्य एवं मानवीय लगता है।

एम दयाल, चीफ जज उपन्यास के एक पात्र मृणाल के भतीजे प्रमोद प्रतीत होते हैं लेकिन उन्हें किसी भी दृष्टिकोण से उपन्यास का नायक नहीं माना जा सकता। दरअसल उपन्यास में सिर्फ मृणाल ही नायिका हैं, जो मानव समाज में युगों से शोषित नारी का प्रतिनिधित्व करती है। जबकि उपन्यास के सभी पुरुष पात्र खलनायक ही साबित होते हैं। प्रमोद (एम दलाल) भी उनमें से एक है, जिसका जजी के पद से त्यागपत्र उसका पश्चाताप का पाखंड है जो कि समाज में पुरुष वर्ग के धवल चित्र रखने की लेखकीय वकालत का प्रयास है। जबकि सबसे अधिक पीड़ा प्रमोद की कायरता ही देती है, मृणाल को भी और पाठकों को भी क्योंकि प्रमोद नये जमाने के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसी स्थिति में प्रमोद की उपन्यास में भूमिका यह प्रश्न उठाती है कि क्या नई पीढी के लोग समाज के बंधनों में जकड़े हुए इतने कायर है कि दमित, शोषित, पीडित अपनी बुआ की बर्बादी का बस तमाशा देखते रहते हैं। ज्यादा हुआ तो मुँह छुलाने वाली सहानुभूति, मदद की औपचारिकता निभा देते हैं। उसके उद्धार का न कोई ठोस कदम उठाते हैं और ना ही अपने माता-पिता को अपनी बुआ मृणाल को अपना कर अपने साथ रखने हेतु विवश करते हैं। मृणाल के भाई-भाभी, प्रेमी, पति और उसका शोषण करने वाला कोयला व्यापारी ये सब सभ्य समाज कहे जाने वाले जर्जर समाज के अंग है। रूढ़िगत व्यवस्थाजन्य नैतिकता की काजल की कोठरी में रहने वालों से धवलता की क्या उम्मीद लेकिन उपन्यास में युवा वर्ग की कायरता का यह अवसान भरा चित्रण शायद युवा वर्ग के पाठकों द्वारा आसानी से न स्वीकारा जाएगा और ना ही उसका जजी पद से त्यागपत्र ही प्रभावित कर सकेगा। आलोच्य उपन्यास में जो प्रभावित करता है तो वह है सिर्फ मृणाल का सभ्य कहे जाने वाले समाज को तिरस्कृत कर उसे सौंपा गया उसका त्याग पत्र जो कि सभ्य समाज की सभ्यता एवं संवेदनशीलता पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। क्या इस भांति उठाया गया यह प्रश्न सदा अनुत्तरित ही रहेगा ...... ? ? ?

राजेन्द्र सिंह गहलौत, "सुभद्रा कुटी", बस स्टैंड के सामने, बुढ़ार - 484110, जिला शहडोल (म. प्र.)
मो. : 9329562110, ई-मेल : rajendra-dnp5@gmail.com

✧ ✧ ✧

'ठीकरे की मंगनी' में स्त्री

डॉ. अनीश के.एन.

गाँव के एक स्कूल में टीचर की नौकरी स्वीकार करने के साथ उसके जीवन का नया कर्मक्षेत्र खुलता है। नए रास्ते से चलकर जिन्दगी को एक नया अर्थ देने की कशिश और उसे अमल करने की कोशिश में पूरे तीस साल अपने खूने जिगर से उस गाँव को उसने सींचा। "महरुख की जिन्दगी की मंशा का जज्बा महरुख की जिन्दगी के पौधे को फिर से सींचने लगा था"। स्कूल के गरीब एवं पढ़ाई में कमजोर हरिजन बच्चों को अपने घर में मुफ्त ट्यूशन देती है, घर-घर से बच्चों को निकलवाकर स्कूल लाने की मुहिम जारी करती है, बच्चों के लिए उनकी अपनी भाषा में इन्सान बने रहने की बुनियादी बातें कहानी की शक्ल में लिखकर खुद पुस्तिका बनाती है। मौत और जिन्दगी के झूले में रही गरीब औरत के घर में नगर की डॉक्टर विमला को लाना और उसकी जिन्दगी को बचाना गाँववालों की याद में गाँव के इतिहास में पहली बार ही नहीं अनहोनी घटना थी।

हिन्दी कथा साहित्य में महिला उपन्यासकारों की देन हाशिये पर नहीं रहती है, काफी सम्पन्न ही है। महिला कथाकारों की लम्बी श्रृंखला की एक मजबूत कड़ी के रूप में नासिरा शर्मा का नाम पाठकों का ध्यान आकर्षित करता है। 'सात नदियाँ एक समन्दर', 'शालमली', 'जिदा मुहावरे', 'ठीकरे की मंगनी', 'अक्षय वट', 'कुइयाँजान' 'जीरो रोड', 'पारिजात', 'अजनबी जजीरा', 'कागज की नाव', 'अल्फा-बीटा- गामा' आदि उपन्यास और 'संगसार', 'शामी कागज' 'पत्थर गली', 'इब्ने मरियम' जैसे कहानी संग्रह का सृजन करते हुए नासिरा शर्मा कथा साहित्य में अपनी दावेदारी सिद्ध कर देती है। महिला लेखन पर अक्सर उठाई जानेवाली शिकायत यह है कि अधिकतर स्त्री लेखन स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के सीमित दायरे में सिमटकर भावुकता एवं कल्पनाशीलता के रेले में बहती नारी के अतिरंजित रोमांस की अभिव्यक्ति या बेबस नारी के अश्रुबहुल हाहाकार का महिमामंडन मात्र है। इस आक्षेप से महिला लेखन की रिहाई के लिए प्रखर एवं संवेदनशील लेखिकाओं ने जो पहल की उसे नासिरा शर्मा जारी रखना चाहती है।

'ठीकरे की मंगनी' में लेखिका पुरुष वर्चस्व समाज और नारी की आपसी टकराहट से उत्पन्न द्वन्द्व और विरोध के स्वर को

रेखांकित करती है। अधुनातन भारतीय नारी, परंपरागत मूल्यों के ईंट-गारे से गढ़ी दीवारों के भीतर कसकर बंधी हुई नहीं रहती, जकड़ में थोड़ी-सी शिथिलाई आई। बदली हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों एवं शिक्षा-दीक्षा के समुचित प्रसार के फलस्वरूप नारी की जिन्दगी में कुछ बदलाव आए हैं । नारी, चाहे ऊपरी तौर पर तेज रफ्तार में बदली हुई दीख पड़ती हो, मगर इस बदलाव के भीतर ही भीतर एक ठप की स्थिति मौजूद है, जो नारी की आत्मपहचान और मुक्ति संघर्ष की राह में रोड़ा अटकाती है। लेखिका को नारी की इस फजीहत पर मलाल है कि तमाम शैक्षणिक प्रगति और आधुनिकता के दावों के बावजूद भी बदलते समय के साथ जीवन को देखने परखने का नारी का नजरिया सही मायने में नहीं बदला है। परंपरागत जड़ संस्कारों की लक्ष्मण रेखाएँ पार करने का या अपनी राय स्वतन्त्र एवं निर्भीक ढंग से अदा करने का साहस जुटानेवाली, आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नारियों की संख्या इनीगिनी है, यही नहीं, हर अप्रिय स्थिति से समझौता करनेवाली एवं निष्क्रिय मानसिकता के दलदल में फंसी रहनेवाली औरतों की संख्या भी बढ़ती रहती है। जिन्दगी की बुनियादी जरूरतों से वंचित, 'रोज कुआँ खोद, रोज पानी पीनेवाली' औरत की प्रतिक्रियाहीनता या बुजदिलपन हम समझ सकते हैं, वे क्या जानें 'नारी मुक्ति आन्दोलन' का अर्थ?

'ठीकरे की मँगनी' की महरुख मध्यवर्गीय समाज की पढ़ी-लिखी नौकरी पेशा- मुक्तिकांक्षी नारी है, जो रूढ़िगत संस्कारों में फली-फूली अपनी छुइमुई मानसिकता से रिहाई लेकर अपनी जेहनी परत में एक सकारात्मक बदलाव लाती है और कर्मठता में जीवन का अर्थ ढूँढती है। अपनी वजूद के लिए रास्ता खुद तय करने के बाद कभी उसके पैर न रूकते हैं, आगे बढ़ते ही रहते हैं। उसने उस पुरुष को अपने दिल में बसाया, पूरे दस साल के लिए, जिसके साथ उसकी पैदाइश होते ही घरवालों ने मँगनी कर दी थी। वह उस मर्द की असलियत एवं हकीकत से वाकिफ हो गई कि वह दूसरी मिट्टी का बना आदमी है, जो औरत को अपने पाँवों की जूती बनाकर रखना अपना अधिकार समझता है। उसके लिए इश्क जिन्दगी का एक हिस्सा मात्र है जबकि महरुख इश्क को पूरी जिन्दगी मान बैठी थी। उपन्यास के प्राक्कथन में लेखिका का वक्तव्य है - ''हालात की मार से पैदा हुई एक लड़की महरुख की यह कहानी है और दूसरी तरफ यह कहानी रफ्त भाई की भी है। मगर दोनों में जो बुनियादी फर्क है वह नजरिए का है।''

एक मुस्लिम खानदान की सदस्या होने के नाते लेखिका ने खुद इस समाज के रीतिरिवाज, आचार-विचार और रूढ़ियों को नजदीक से देखा-परखा, अनुभव किया है। समाज लड़का और लड़की के पालन-पोषण में भी दो भिन्न पैमाने अपनाता है। लड़की को औरत की तरह विकसित होना सिखलाया जाता है। औरत के गुण लड़की में उठते-बैठते डाले जाते हैं। लड़की की कच्ची उम्र से लेकर समाज उसके चारों ओर चक्रव्यूह रचना शुरू करता है। उसे सिखाता है - 'तेरी नियति है, रोये भी और अपना रोना छिपाए भी।' तेरे हाथ रोटी बेलने के लिए, बर्तन माँजने के लिए, साड़ी, चूड़ी, बिन्दी, मेहन्दी की दुनिया ही उसका आखिरी सत्य है। लड़की को बचपन से

लेकर यह घुट्टी पिलाई जाती है कि धरती जैसी सर्वसहा बनना, सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करते रहना उसका फर्ज है।

जिस पारिवारिक साँचे ने महरुख की जिन्दगी को ढाला उसकी बारीकी में लेखिका की निगाह उतरती है। महरुख को पाँच-छः साल तक खुली हवा में साँस लेने का नसीब मिला। बाद में सारे घरवालों - दादी, चाचा, चाची, अम्मजान - ने उसे एक नाजुक लड़की बनाना शुरू किया। पैर फेंक-फेंक कर चलती हुई महरूख को देखकर छोटे चाचा का यह बोलना कि 'यह महरूख चलती कैसी अम्मा? आप रोकती नहीं क्यों? और भाइयों के साथ महरुख को गुल्ली डंडा खेलते देख तजुर्बे के साथ बड़े चाचा का यह चेतावनी देना कि लड़की को कम-से-कम अदब-आदाब तो सिखा दो-लड़की के प्रति समाज के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के दृष्टान्त हैं। बदनसीब लड़की की हालत पर लेखिका टिप्पणी करती है - ''लड़की नाजुक टहनी जिधर झुकाओं झुक जाएगी।''

हर समाज में लड़की पर लगाई जानेवाली पाबन्दियाँ उम्र के बढ़ने के साथ सख्त बनती रहेंगी। महरुख के साथ भी यही हुआ। शादी के पहले एम.ए. की पढ़ाई के लिए दिल्ली जे.एन.यू. में भेजने के रफ्त की सिफारिश को लेकर जैदी खानदान में हल्ला-गुल्ला मचा और ऐतराज की बौछारें होती रहीं। रूढ़िवादी समाज और परिवारवालों के ऐसे रुख-रवैये के कारण पढ़ने-लिखने के लिए उत्सुक असंख्य लड़कियों की ख्वाहिश अधूरी रह जाती हैं। नारी सशक्तीकरण की चर्चा के सिलसिले में अर्चना वरना ने मुस्लिम समाज के नारी समुदाय को विकास या सशक्तीकरण के सामान्य प्रतिमानीकरण में शामिल करना असम्भव बताते हुए लिखा है - ''नगणय प्रतिमान में शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता के उदाहरण भले ही उपलब्ध हों, निर्णय की स्वतंत्रता के सवाल नहीं उठता।''

उपन्यास के कथ्य का दूसरा मोड़ जे.एन.यू. कैम्पस का है, जहाँ महरूख को जिन्दगी की एक नई दिशा में कदम रखना पड़ता है। यहाँ उसे, पढ़ाई से अलग, दूसरी एक बड़ी जिम्मेदारी उठानी पड़ी, जो रफ्त ने उस पर सौंप दी। रफ्त ने महरुख को एक सिसकती, बेबस नारी के रूप में नहीं, बल्कि मजबूत इरादों की औरत के रूप में देखना चाहा। रफ्त ने उससे यही अपेक्षा रखी कि वह जे.एन.यू. कैंपस के पाश्चात्य व आधुनिकता से ओतप्रोत वातावरण में घुल मिल जाए, उस नए समन्दर में हाथ पैर मारते तैरना सीखे। उसकी अपेक्षाओं के मुताबिक कदम-कदम पर अपने को सुधारने की कोशिश महरुख करती रही, परन्तु आधुनिकता को ओढ़ने में वह पूर्णतः कामयाब न निकली। अनजान मर्द के साथ बिस्तर बाँटने को वह आधुनिकता न मान बैठी। अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के उस विश्वविद्यालय के माहौल में रहकर एक दूसरा सत्य भी उसने समझ लिया कि वहाँ भी औरत को देखनेवाली नजरों का रवैया पुराना ही है। अपने क्लासफेलों रवि की शादी और दिमागी दोस्ती के स्वांग के पीछे एक नंगापन उसने भाँप लिया, जो जानवरों का हिस्सा है। महरुख को इस अनिष्ट घटना की तह में रफ्त की बदतमीजी ही नजर आई क्योंकि रफ्त ने, महरुख के साथ अपनी मंगनी का रिश्ता सबसे छिपाया था और इसलिए ही उसे रवि के हाथों

शर्मिन्दगी उठानी पड़ी। साम्यवाद का ढिंढोरा पीटनेवाले रफ्त की तमाम आदतों से झुंझलाहट होते हुए भी महरुख चुप्पी साधती रही, क्योंकि रफ्त उसका भविष्य था, उस 'मजाजी खुदा' के बारे में घरवालों ने बार-बार यह मन्त्र नाजुक लड़की के कानों में फूँक दिया था - औरत मर्द से दबकर रहे इसी में औरत की खुशी है। कैम्पस के माहौल में रहते वक्त महरुख के मन में जो बेशुमार सवाल उठे, उनमें से एक भी बाहर न आया क्योंकि उस समय उसकी मानसिकता एक औसत भारतीय नारी की थी, जहाँ ऐसी धारणा जड़ें जमा चुकी थीं कि पुरुष चाहे मंगेतर हो या पति, पिता हो या भाई उसकी हर आज्ञा का पालन करना नारी का फर्ज है।

रफ्त के रंग में अपने आपको रंगने में मसरूफ महरुख ने कभी नहीं सोचा था कि उसके ख्वाबों का महल रेत का ढेर बनेगा। 'इन्कलाबी खयालात के मालिक रफ्त का अपना कैरियर सुनहला बनाने की धुन में वजीफा लेकर पी-एच. डी. पढ़ाई के लिए अमेरिका चला जाना और अपने को बाँटकर जीने में कुशल उस 'मर्द' का वालैरी नामक लड़की के साथ 'लिविंग टुगेदर' जैसी जिन्दगी गुजारना मासूम महरुख की जिन्दगी झकझोर डालने के लिए काफी था। उसका आहत मन सिसक उठता है - "शादी की बात सुनकर मैं टूटी-बिखरी थी और उस दीवानगी में मैं मरते-मरते बची थी, मेरी जिन्दगी का खूबसूरत लम्हा सबसे बदसूरत और डरावना होकर मेरे सामने खड़ा हो गया...... मेरे अन्दर की औरत उसी लम्हे मर गई'। रफ्त के बेरहम व्यवहार ने महरुख के सारे जज्बातों को कुचल डाला और अपनी थीसिस को भी अधूरा छोड़कर जे.एन.यू. कैम्पस से उसने अलविदा ली। लेकिन यह उसका पलायन नहीं था, एक नई रोशनी की शुरूआत थी। उसकी सोच एक नई दिशा पकड़ने लगी कि एक झूठे रिश्ते की बाबत अपनी पूरी जिन्दगी सिसकते-सिसकते या बुरी शामत को कोसते बिताना मूर्खता है। यही वह बिन्दु है जहाँ से उसकी जिन्दगी का एक नया अध्याय शुरू होता है।

गाँव के एक स्कूल में टीचर की नौकरी स्वीकार करने के साथ उसके जीवन का नया कर्मक्षेत्र खुलता है। नए रास्ते से चलकर जिन्दगी को एक नया अर्थ देने की कशिश और उसे अमल करने की कोशिश में पूरे तीस साल अपने खूने जिगर से उस गाँव को उसने सींचा। ''महरुख की जिन्दगी की मंशा का जज्बा महरुख की जिन्दगी के पौधे को फिर से सींचने लगा था।'' स्कूल के गरीब एवं पढ़ाई में कमजोर हरिजन बच्चों को अपने घर में मुफ्त ट्यूशन देती है, घर-घर से बच्चों को निकलवाकर स्कूल लाने की मुहिम जारी करती है, बच्चों के लिए उनकी अपनी भाषा में इन्सान बने रहने की बुनियादी बातें कहानी की शक्ल में लिखकर खुद पुस्तिका बनाती है। मौत और जिन्दगी के झूले में रही गरीब औरत के घर में नगर की डॉक्टर विमला को लाना और उसकी जिन्दगी को बचाना गाँववालों की याद में गाँव के इतिहास में पहली बार ही नहीं अनहोनी घटना थी। इस घटना से महरुख गाँववाली औरतों का दिल जीत लेती है। गाँव के जमींदारों की यन्त्रणाओं के आगे बेजुबान खड़ी रही देहाती जनता के मन में चिन्ता की चिनगारी निकालने में महरुख सफल निकलती है। वह गाँववालों को यह तालीम देती है कि जुल्म के आगे चुप्पी साधना

सबसे बड़ा जुल्म है, दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार अपनी जिन्दगी को ढालना और गलत बात को बर्दाश्त करना, सबसे बड़ी कमजोरी है। उस देहाती माहौल में भी महरुख को जालिम एवं मजलूम की शक्ल दिखाई पड़ी। ये शक्ल किसी जमींदार की नहीं, बल्कि उसके अपने सहयोगी अध्यापकों की थी जिनके दिल में महरुख के प्रति ईर्ष्या उठती थी क्योंकि सारा गाँव महरुख को मानता था। खेत में काम करनेवाले मजदूरों से, किसानों और हरिजनों से सड़क के किनारे खड़े होकर महरुख का बातें करना उनके सहयोगी अध्यापकों को तनिक भी अच्छा न लगा, यही नहीं यों बातें करना अध्यापकों की हैसियत के अनुकूल मानता नहीं। और उनसे महरुख का उत्तर है - यही मेरे अपने लोग हैं। गाँववालों के प्रति अध्यापकों के रुख रवैये के माध्यम से लेखिका इस सामाजिक विद्रूपता की ओर तर्जनी उठती रही हैं कि सफेदपोश नौकरी में आसीन तबके, मेहनतकश वर्ग को कौड़ी का आदमी समझते हैं।

गाँव की नौकरी में महरुख का दिल खूब लग रहा था कि फिर और एक बार रफ्त उसकी जिन्दगी में घुस आए और उसने शादी का प्रस्ताव रखा। अपनी करनी की सफाई रफ्त ने यों दी- "अमेरिकन लड़की के साथ जो रिश्ता था, वह कब का खत्म हुआ। वह एक 'वेय् ऑफ लाइफ' था वहाँ का"। रफ्त और महरुख के पुनः मिलन का यह प्रसंग उपन्यास का एक मार्मिक बिन्दु है, जहाँ एक भारतीय नारी की मुखतलिफ तस्वीर लेखिका ने खींची है।

अमेरिकी शादी को 'वेयू ऑफ लाइफ' कहकर डिफेन्ड करनेवाले रफ्त की गुड जैसी वाणी सुनकर पिघलनेवाली मानसिकता से महरुख ने अपने आपको कोसों दूर हाँक लिया था। रफ्त ने सोचा था कि दिल्ली जैसे महानगर के लेक्चरर की चमक और विदेशी डिग्री के साथ इन्टरनेशनल सेमिनार में इंग्लैण्ड होकर लौटा आदमी, एक गाँव की मामूली टीचर के लिए बहुत ज्यादा होगा। लेकिन महरुख के दिल में उस मर्द के लिए जरा भी जगह नहीं थी, जिसने उसके अन्दर की असली 'महरुख' के परखचे उड़ा दिए थे। उसके अन्दर धधकती लावा खुदबखुद फटकर निकलती है - 'मुझे फिर एक खूबसूरत जिन्दगी का भुलावा मत दीजिए..... मेरा सुकून मत छीनिए .... मैं जगह, चीज या मकान नहीं रफ्त भाई, जो वैसी की वैसी रह जाती हूँ....मैं इन्सान थी, कमजोरियों का पुतला'। आगे उसके मुँह से निकला फैसला रफ्त को अवश्य तोड़ता है। 'मैं ठोस जमीन पर ठोस जिन्दगी जीना चाहती हूँ।....मेरी जिन्दगी पर सिर्फ मेरा ही हक है?" महरुख को हासिल करने की जिद्द में रफ्त हार जाते हैं, फिर भी महरुख को पक्की इरादोंवाली ऐसी औरत बनाने का श्रेय अपने ऊपर लेते हैं। उनका यह दावा कि "मैं हूँ उसे बनानेवाला, अगर न ले जाता दिल्ली तो क्या वह आज इतनी समझदार और खुले दिमाग की आदमी बनती'' पुरुष मेधा समाज की उस सोच का ही प्रतिरूप है, जो नारी के अस्तित्व की सार्थकता को पुरुष की मदद के बिना अधूरा ही नहीं असम्भव मान बैठा है।

भारतीय समाज में रूढ़िवादी मान्यताओं से युक्त पारिवारिक ढ़ाँचा नारी को कभी भी बराबरी का दर्जा नहीं देता है। यदि कोई लड़की रूढ़ियों को हटाकर नया कदम उठाना चाहती तो

घरवाले यह सवाल उठाएँगे - ''बेटी लोग क्या कहेंगे? दुनिया क्या सोचेगी?'' आगे बढ़ाए उसके कदमों को पीछा करने की प्रेरणा भी वे देंगे।

जैदी खानदान में किसी भी औरत ने मर्द का हुक्म नहीं तोड़ा था। इसलिए महरुख का रफ्त के प्रस्ताव को ठुकराने का हादसा बहुत शर्मनाक लगा। पूरा खानदान इस विचार में था कि जब लड़का पश्चाताप करके शर्मिंदा होकर लौटा है जो झगड़े को आगे बढ़ाना लड़की के लिए अच्छी बात नहीं। घरवालों की यह प्रतिक्रिया, महरुख के दिल में कई सवाल उभारती है। इन सवालों का जवाब महज महरुख ही नहीं, रूढ़िवादी समाज की यंत्रणाओं की शिकार बननेवाली हर भारतीय नारी ढूँढती है। महरुख का, संभवतः खुद लेखिका का विचार है कि औरतों और मर्दों के बारे में बरसों से चले आ रहे समाज का मूल्य निर्णय निष्पक्ष ढंग से नहीं। हजारों साल से समाज ने तय किया है कि औरत ऐसी है मर्द ऐसा है। यह पहचान दोनों पर थोपी हुई है। मर्द सौ गलत करें उसे माफी, औरत एक करे उसके लिए पिस्तौल। समाज के इस रुखे - रवैये में बदलाव अवश्य आना है, महरुख यही कामना करती है।

अच्छी तरह सोच-समझकर ही महरुख ने शादी के प्रस्ताव को ठुकराया। दोनों की जिन्दगी के लक्ष्य और उद्देश्य भिन्न थे। रफ्तार के बारे में उसका अनुमान बिल्कुल पक्का था, इसका पता, कुछ सालों के बाद तो सही, दिल्ली में रफ्त और उसके बीवी बच्चों से मिलते वक्त, महरुख को लगा। यूनिवर्सिटी लेक्चरर से होकर, प्रोफेसर, वाइस चांसलर, यू.जी.सी. चेयरमैन, एजूकेशन मिनिस्टर आदि पद ओहदों की धुन में तेज दौड़नेवाले एवं अपनी दुनिया में मस्त रहनेवाले रफ्त को, उसकी दौड़ के नशे को समझने में असमर्थ, बेचारी आज्ञापालक पत्नी सुरैया को और घर में पिता की उपस्थिति में डर और घबराहट से माँ की हाड़ में छिपने वाली बच्ची को महरुख ने वहाँ देखा।

दुनिया की मस्ती, पद, ओहदे, परिवार बच्चे इन सबके अलावा भी इस जगत में बहुत है, जिसे हासिल करके इन्सान जी सकता है, महरुख ने गाँव के आगोश में जिन्दगी का बहुत बड़ा हिस्सा गुजारकर इसी सच को सिद्ध किया। पूरे तीस साल उस गाँव की हवा पानी मिट्टी से ताल्लुक बनाकर महरुख ने अपनी पूरी ताकत निचले तबके के असंख्य बच्चों को पढ़ाई पर लगा दी। बहुत सारे बच्चों की आदत बदलने और संभालने में सफल निकली, इन बच्चों में से बहुत अच्छी खासी नौकरियों पर जम गए। यही तो वह चाहती थी। निजी मुनाफे को नजर में रखकर कोई कार्य नहीं किया। इसलिए उसने दिल्ली के एक रिसर्च संस्थान का ऑफर भी ठुकराया। उसे कभी नहीं लगा कि गाँव में रहकर अपने को जंग लगा रही है।

रिटायरमेंट के बाद, खानदान के बूढ़े और मरीज बन रहे बुजुर्गों का सहारा बनने की तमन्ना में महरुख घर लौटती है। लेकिन उपन्यास के अन्तिम मोड़ में उसकी गाँव की ओर वापसी के हम गवाह बनते हैं। खानदान से विदा लेने के पहले उसके दिल पर एक नया जख्म भी लगा, जो उसे सुखद एवं दुःखद भी था। उसकी भाभी जहरा ने अपनी बेटी को जोर से मारा और उसके गाल

लाल कर दिए क्योंकि उसने माँ से कहा- "मैं बड़े होकर महरुख फुफ्फी बनूँगी'' । महरुख के प्रति अपनी बीवी की गुस्तागी पर अपने भाई तनवीर की प्रतिक्रिया भी महरुख के कानों पड़ी - "आगे एक लफ्ज भी मत कहना.... वह खुद सुलग कर हमें रोशनी देती रही.... अगर उनकी बनावट का सांचा मेरे पास होता तो मैं अपनी क्या, सारे खानदान, सारे शहर, सारे मुल्क की लड़कियों को उस साँचे में ढाल देता....। महरुख ने अपनी भतीजी में आनेवाली नस्ल की लड़की की शक्ल देखी, अपने भाई की वाणी में नारी शक्तिकरण के हिमायती पुरुष की सूरत पाई। लेकिन नारी के जानी दुश्मन के रूप में एक दूसरी नारी की आकृति अपनी भाभी जहरा में दीख पड़ी। नारी के प्रति पुरुष मेधा समाज की नकारात्मक सोच के बदलने के साथ-साथ यह भी बहुत जरूरी है कि नारी अपने प्रति सोच और एक नारी की दूसरी नारी के प्रति सोच भी बदलें। घर, गृहस्थी और प्रजनन के परिसीमित दायरे में सिमटकर, पुरुष की हर आज्ञा या शर्त की स्वीकृति को बड़ा आदर्श माननेवाली नारियों की आँखों की किरकिरी बन जाती है महरुख जैसी एक मुक्तिकांक्षी नारी।

अपनी पसन्द की जिन्दगी जीनेवाली महरुख का चित्रण करते हुए लेखिका नारीमुक्ति आन्दोलन का खोखला नारा लगाना नहीं चाहती। महरुख के लिए आजादी का मतलब उसका नाजायज फायदा उठाना नहीं। यदि ऐसा होता तो जे.एन.यू. कैम्पस के मस्त वातावरण में वह अपनी इज्जत आबरू भी लुटा देती है। नारी मुक्ति आन्दोलन नारी को पुरुष की मुक्ति दिलाने के लिए नहीं, बल्कि नारी की खोई हुई शक्ति अर्जित करने के लिए है। महरुख की राय में औरत का औरत के साथ घर बसाकर रहने की पश्चिमी मान्यता से भी समस्या का समाधान न होगा क्योंकि सोच और नजरिए का झगड़ा वहाँ भी उठेगा। वहाँ भी आपसी समझ की जरूरत पड़ेगी।

'ठीकरे की मँगनी' की समीक्षा करते हुए मधुरेश ने महरुख की जिन्दगी पर जो टिप्पणी की है वह पूर्ण रूप से सही नहीं लगती । वे लिखते हैं - 'नासिरा शर्मा की महरुख रफ्त के आचरण से पैदा कटुता की प्रतिक्रिया में अपने पूरे व्यक्तित्व को बिखर जाने देती है। लेकिन अन्ततः उसका हासिल क्या है।' महरुख ने कुछ भी हासिल नहीं किया, यों मानना उसके प्रति बिल्कुल अन्याय करना है। अवश्य उसने अपने सार्थक संसार की तलाश की, उसे वह पाई। अपनी जिन्दगी अपनी शर्तों पर जीने की ललक में महरुख ने जो सफर शुरू किया, उससे थकती हुई या ऊबती हुई अपनी निजी दुनिया की ओर कहीं वापस सिमट जाना नहीं चाहती। रफ्त की बेईमानी ने उसके अन्दर की औरत को इस हद तक मार दिया कि दुल्हन बनने की सारी कोशिश हमेशा के लिए मिट गई। लेकिन, उसकी निजी परेशानियाँ जहाँ खत्म हुई वहाँ से सामाजिक लड़ाई का दौर उसने शुरू किया था। उस गाँव से महरुख ने अवश्य कुछ हासिल किया। रिटायरमेन्ट के बाद गाँव से जुदा होना अपनी रूह से जुदा होने जैसा वह महसूस करती है। छः साल के अन्तराल के बाद पुनः गाँव की धरती पर पैर रखकर अपनी खोई मंजिल पाती हुई महसूस करती है। गाँववालों के स्नेहिल रिश्ते में वह चैन सुकून पाती है। बरसों अनछुई, ऊँघती पड़ी उस गाँव को झिंझोड़ कर जगा देना कम महत्त्व का काम नहीं। महरुख ने यह काम उस गाँव में कर दिखाया। खुद लेखिका

वक्तव्य में इसकी ओर संकेत करती है - ''महरुख जिन्दगी को अपनी नजरिए से देखकर उसको एक पहचान, एक अर्थ देती हुई जनसमुदाय की आवाज में उदय होती है।''

जाहिर है, उपन्यास में नासिरा शर्मा औरत का एक मुख्तलिफ हुलिया पेश करके यही कामना करती है कि औसत भारतीय नारी के मानस में गहरे तक पैठ चुकी रूढ़िवादिता की भावना खत्म हो जाए और स्त्री शक्ति अपनी पीठ की धूल पोंछकर उठ खड़ी हो जाए।

संदर्भ :

1. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 7
2. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 14
3. वागर्थ, अंग 75, पृ. 162
4. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 127
5. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 127
6. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 117
7. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 118
8. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 129
9. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 129
10. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 196
11. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 127
12. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 148
13. समीक्षा - जनवरी-मार्च 98, पृ. 14
14. ठीकरे की मंगनी, नासिरा शर्मा, पृ. 7

डॉ. अनीश के.एन., सह आचार्य, भारतीय भाषा केंद्र, स्कूल ऑफ लैंग्वेज, लिटरेचर एंड कल्चर स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067
मो. : 9446426447, ई-मेल : aneeshkn1@gmail.com

✧ ✧ ✧

उदय प्रकाश : अभिनव शिल्प-संरचना और विलक्षण कथ्य -संदर्भ का अकेला कथाकार

संजय कुमार सिंह

उनकी कहानियों को लेकर भ्रामक विग्रह करने वालों की भी कमी नहीं है, पर इसे हिन्दी आलोचना का पथ-विपथन ही कहा जाएगा। उदय प्रकाश न सिर्फ विचार को लेकर बल्कि जाति, धर्म और भाषा को लेकर भी इतने सचेत कथाकार हैं कि वे अपने एक साक्षात्कार में रचना की भाषा को प्रयोजनमूलक कहते हैं। कहानी का जो ढाँचा होता है, वह ऊपर से छिलके जैसा होता है। रूपक का बाहरी आवरण। आलतू-फालतू आडम्बर। उसके मर्म की तलाश होनी चाहिए। आलोचना अगर वस्तुनिष्ठ और स्थूल हो जाए, तो फिर कहानी की खैर नहीं। मैं नामवर जी के इस कथन से सहमत हूँ कि हमें कहानी से मिलता-जुलता पाठ बनाना चाहिए। अस्वीकृत करने से 'जुही की कली कविता' का महत्व समाप्त नहीं हो जाता। इसलिए जाति वाला सवाल सही है, लेकिन इससे कहानी का प्रभाव घटा नहीं, बढा है।

उदय प्रकाश समकालीन हिन्दी कहानी में सबसे महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। न सिर्फ विषय-चयन की दृष्टि से विश्वसनीय बल्कि कलात्मक ट्रीटमेंट के स्तर पर भी। उनकी कहानियों में विषय से संबंधित सूक्ष्म तथ्य और विवरण कहन के स्तर पर जिस तरह रीड्यूस होकर आते हैं, वे उन्हें अलग से विशिष्ट बनाते हैं। समय-समाज के यथार्थ को जिस कलात्मकता के साथ वह अपनी कहानियों में रखते हैं, वह अक्सर मौजूदा समय की जटिल समस्याओं का एक ऐसा संश्लिष्ट रूपक बनकर उभरता है, जो इतिहास, स्मृति और मिथ के व्यापक वितान के साथ लेखन के औचित्य को तात्कालिक संदर्भों से जोड़ता है। इस संदर्भ में 'वारेन हेस्टिंग्स का साँढ' और 'पालगोमरा का स्कूटर' जैसी कहानियों को समझना अपने समय-समाज में फैल-पसर रहे संकट पर उंगली रखने जैसा है। कहानी को अगर कहानी की तरह पढा जाए, तो आर्थिक उपनिवेशवाद और बाजारवाद के प्रतिरोध के वैचारिक द्वन्द्व को हम इन कहानियों से समझ सकते हैं। अपने कथा-प्रकल्प के अन्दर जिन अर्थों को वे सृजित करते हैं, वह हमें औपनिवेशिक पीड़ा के आत्मदंश और आतंक की स्मृति में ले जाकर सोचने पर विवश करते हैं। अपनी अस्मिता और अपने आप्त-लोक को बचाने की उनकी चिंता ही उनकी रचना-

प्रक्रिया का मूल तनाव है। किस तरह आज हमारे आत्म-कथ्य को तोड़ कर भूमंडलीकृत बाजारवाद के तर्कों को बिठाया जा रहा है। किस तरह उत्तर आधुनिकता और स्वायत्ता आदि उदारवादी विचारों के नेपथ्य में पूँजीवाद पुनः अपने वैश्विक अभियान के जरिए तीसरी दुनिया को नव आर्थिक उपनिवेशवाद के रूपंकर सम्मोहन में फिर से फांस रहा है- वारेन हैस्टिंग्स का कथ्य यही है। भाषा, इतिहास, स्मृति और अस्मिता का पुनर्विखण्डन ही दासता का वह अख्यान है, जिससे औपनिवेशिक सत्ता-संस्कृति किसी राष्ट्र-समाज में अपने आर्थिक हितों को साधती है। एक उपक्रम से उपजी यह विस्मृति हमें अपने इतिहास और अपनी स्मृति से इस तरह काटती है कि हम उनके विचारों के प्रतिरूप बन कर रह जाते हैं। उदय प्रकाश की इस कहानी की मूल अंतस चेतना यही है। इस आर्थिक उपनिवेशवाद की पीठ पर इस्ट इण्डिया कम्पनी का एक नया खौफनाक चेहरा रूप बदल कर छिपा बैठा है। उदय प्रकाश हमें इस कहानी में वारेन के जरिए उनके तमाम सम्मोहक प्रकल्पों से परिचित कराते हैं, जिनमें हमारे विचारों को बदलने की शक्ति है। मैकाले की शिक्षा-नीति को भी यहाँ अलग से अवधान में लिया जा सकता है, जिनके विचारों ने अंग्रेजी सत्ता-संस्कृति के संपोषक प्रतिरूपों के निर्माण के लिए एक ऐसे इदारे को जन्म दिया, जो आज भी उनके विचारों से मेल बना रहे है। ऐसे में उनकी वापसी के मार्ग पहले से हमवार हो जाते हैं। औपनिवेशिक सत्ता संस्कृति के प्रतिरोध से लैस उदय प्रकाश मार्खेज की तरह अपने तरीके के खाँटी देशी कथाकार हैं।

कहना नहीं होगा कि 'पालगोमरा का स्कूटर' भी मोहनदास की तरह एक विलक्षण कहानी है। इसकी तरह-तरह से व्याख्या की गयी है। इस कहानी के बारे आचार्य नामवर जी ने लेक्चरशिप के साक्षात्कार में पूछा था। मैंने उनसे कहा था कि यह भूमंडलीकरण और बाजारवाद के प्रतिरोध की कहानी है। उन्होंने कहा-कैसे? मैंने कहा- पाल गोमरा का प्रेत जी टी रोड पर कहता है कि दिल्ली नहीं बचेगी, मगर गुड़गाँव बच जाएगा।

क्यों? इसलिए कि वह उन विचारों को और तकनीकों को आयात कर रही है, लेकिन गुड़गाँव अपनी जातीय अस्मिता के प्रति सचेत है। कैसे? मैंने कहा,- पहल में आचार्य रामविलास शर्मा का इण्टरव्यू आया है। वे कहते हैं कि टेक्नोलॉजी किसी को गुलाम नहीं बनाती है। तुम एक विचारधारा, एक व्यवस्था के तहत उसे अपनाते हो, इसलिए गुलाम होते हो। यहाँ मार्खेज 'एकान्त के सौ वर्ष' में लातीनी अमेरिकी देशों की अस्मिता विखण्डन के दर्द को भी स्मृत किया जा सकता है। हम खुद पालगोराओं की नियति चुन रहे हैं, इसलिए यह आत्म-विखण्न मारक है। एक साधारण से प्रतीक की त्रासदी के बहाने उदय प्रकाश व्यापक आत्महनन के परिप्रेक्ष्य की ओर संकेत कर रहे हैं, जहाँ मशीनीकृत व्यवस्था में आदमी की दुनिया का ऐसा ही हश्र होगा। मुझे धुमिल का एक प्रसंग याद आ रहा है, जहाँ वे अपने मित्र प्रख्यात कथाकार काशीनाथ सिंह से कहते हैं कि गाँव में जानवरों को चराते उनके भाई जानवरों की भाषा बोलने लगा है। स्वयं प्रकाश की कहानी अविनाश उर्फ मोटू का भी मशीनों के बीच रहते हुए अमानवीकरण की हद तक

अनुकूलन होता है।

जाहिर है कि उदय प्रकाश की कहानियों को जानने-समझने की मेरी अपनी जिज्ञासा रही है। उनकी कहानियों को लेकर भ्रामक विग्रह करने वालों की भी कमी नहीं है, पर इसे हिन्दी आलोचना का पथ-विपथन ही कहा जाएगा। उदय प्रकाश न सिर्फ विचार को लेकर बल्कि जाति, धर्म और भाषा को लेकर भी इतने सचेत कथाकार हैं कि वे अपने एक साक्षात्कार में रचना की भाषा को प्रयोजनमूलक कहते हैं। उन पर मैंने अपने एक शोध-छात्र के साथ काम करने का मन बनाया था। वह शोध-प्रारूप भी स्वीकृत हो गया था, पर बाद में वह छात्र शेयर बाजार की कमाई में अमीर हो गया और मैं प्राचार्य के पद के चक्कर में फंस गया। ...लेकिन आज जब लिख रहा हूँ, तो वो तल्ख आलोचनाएँ मेरे दिमाग में आ रही हैं, जिन्होंने एक रात मुझे एक कुपाठ के प्रतिरोध के लिए विवश कर दिया था। खैर उन बातों को याद करते हुए तरह-तरह के सवाल मेरे जहन में आ रहे हैं, जो कहानी की पाठ-प्रविधि और पाठ-प्रक्रिया से जुड़े हैं। क्या पाठ-प्रक्रिया एक स्वाभाविक प्रक्रिया है? क्या समय-संदर्भ और पाठ-संदर्भ के बदलने से कहानी का 'पाठ' भी बदल जाता है? आलोचना का काम अगर एक प्रविधि के रूप में इसे कहानी की समीक्षा का आधार बनाने का हो तब? पाठ-कुपाठ कायानि सही-गलत पाठ का निर्णय कैसे हो? क्या पाठक को इतनी स्वतंत्रता है कि वे असहमति के स्तर पर कोई दूसरा पाठ बनाए, जो कहानी की मूल प्रतिज्ञा से भिन्न हो? यहाँ मैं पाठक की स्वायतत्ता और पाठ की स्वतंत्र प्रक्रिया पर उंगली नहीं उठाना चाहता हूँ, पर एक प्रविधि के रूप में इस पद्धति के भी कुछ आंतरिक अनुशासन हो सकते हैं क्या? काव्य-शास्त्र में लोक-प्रशिक्षण और साहित्यिक रुचि के विस्तार का भी प्रसंग है आखिर हर चीज की सार्थकता भी तो उसकी लोक सिद्धि ही है। डॉ. नामवर सिंह प्रेमचंद के आसरे से आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता की बात कहते हैं, कहानी स्वयं एक प्रक्रिया है। ऐसी प्रक्रिया जिससे होकर लिखते समय लेखक गुजरता है और पढ़ते समय पाठक। पाठक इस प्रक्रिया को याद करे, तो लिखने की प्रक्रिया के भी कुछ सूत्र हाथ आ सकते हैं, साथ ही कहानी का सबसे ज्यादा रूप पकड़ में आ सकता है। कहानी, नयी कहानी, पेज नं.73। इसी बात को डॉ. सुरेन्द्र चौधरी ने कई स्तरों पर विवेचित किया है। स्तरीय पाठ से लेकर कथानक के स्तर और भावात्मक स्तर के निर्माण तक। कहानी प्रक्रिया और पाठ पेज नं.137। डॉ. नामवर सिंह कहानी की पाठ-प्रक्रिया में कहानी की मानसिक प्रक्रिया और समय संदर्भ की चर्चा करते हैं, जिससे आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता संभव होती है। इस प्रक्रिया में वे सारे दिशा-संकेत प्राप्त होते हैं, इस प्रकार एकदम मूल तो नहीं, लेकिन काफी करीब की एक कहानी प्रतिमा निर्मित्त होती है। कहानी, नयी कहानी, पेज नं.74।

...पर क्या ऐसा हो पाता है? डॉ. नामवर सिंह ने आरंभ में ही व्यंग्य किया है, प्रेमचंद आज होते तो उनका पहला वाक्य शायद यही होता कि मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी लालसा यही है कि वह आलोचक बन जाए। कहानी, नयी कहानी पेज नं.69। सवाल पाठक बनने का है, उससे

भी महत्वपूर्ण आत्मपूर्ण ग्रहणशीलता में कहानी बन जाने का, कहानी बनाने का नहीं। कहानी बनाने यानि आलोचना की धौंस-पट्टी देने से वह आलोचना, आलोचना की प्रतिमा भले बन जाए, कहानी की नहीं हो सकती। इस अंतर्बोध के मर्म को आलोचक को समझना होगा और अध्ययन विश्लेषण की सुविचारित पद्धति का निर्माण करना होगा, नहीं तो वह इसी सवाल में अटक जाएगा कि 'पूस की रात' में उतने सूखे पत्ते कहाँ से आए?

उदय प्रकाश की कहानी 'मोहनदास' पर मुसाफिर बैठा जी की एक टिप्पणी (हंस, दिसम्बर 2005, पेज नं.75) देखिए जो काफी गंभीर, विचारोत्तेजक और तथ्यपरक है। उन्होंने कहानी की बनावट, विषय और कथ्य से लेकर भाषा तक अपनी गहरी सूझ-बूझ की अंतर्दृष्टि के साथ गजब का पोस्टमार्टम किया है, लगभग सिलाई उधेड़ कर रख दी है। मुसाफिर बैठा जी सही हो सकते हैं। इस बात पर कोई विग्रह नहीं, पर मैं कहानी के फटे हुए हिस्से को जोड़ कर पढ़ने का आग्रह करना चाहता हूँ। ऐसा विद्वान लोग मानते हैं कि प्रायः विश्व की अधिकांश श्रेष्ठ कहानियाँ अपने सहज कथ्य में अविश्वसनीय हैं। एक बार राजेन्द्र यादव के मुँह से मैंने यह सुना कि जिन्दगी कहानी से अधिक अविश्वसनीय है। उदाहरण के लिए उन्होंने कहा कि अगर कोई कहानी में लिखे कि बारह वर्षों तक एक स्त्री और पुरुष एक छत के नीचे बिना शारीरिक संबंध के सोते रहे, तो कोई सच नहीं मानेगा। मगर जिन्दगी में ऐसा होता है। कहानी का कुपाठ बनाने से कोई फायदा नहीं। कहानी का जो ढाँचा होता है, वह ऊपर से छिलके जैसा होता है। रूपक का बाहरी आवरण। आलतू-फालतू आडम्बर। उसके मर्म की तलाश होनी चाहिए। आलोचना अगर वस्तुनिष्ठ और स्थूल हो जाए, तो फिर कहानी की खैर नहीं। मैं नामवर जी के इस कथन से सहमत हूँ कि हमें कहानी से मिलता-जुलता पाठ बनाना चाहिए। अस्वीकृत करने से 'जुही की कली कविता' का महत्व समाप्त नहीं हो जाता। इसलिए जाति वाला सवाल सही है, लेकिन इससे कहानी का प्रभाव घटा नहीं, बढा है। एक विडम्बनापूर्ण कंट्रास्ट है, वहाँ अपने समय-समाज का। इसे ट्रीटमेंट का इफेक्ट कहा जाए। कहानी एक सृजनात्मक विधा है। गल्प शब्द गप्प से बना है और कहानी कहन से। पूस की रात, कफन, हीरालाल का भूत, काठ का सपना, मोहनदास में ही नहीं विजयदान देथा की कहानियों में असंगति और अतिरंजना की भरमार है, तो ये कहानियाँ फालतू हैं? सहवास वाला प्रसंग निजी है, उसे मनः स्थितियों के हिसाब से नहीं तय किया सकता। प्रियंवद की 'नदी होती लड़की' पढ़ी जानी चाहिए। मुक्तिबोध का यह पाठ सही है कि हम लोग किसी को इतना महान बना देते हैं कि उसकी कोई मानवीय प्रतिकृति रह ही नहीं जाती। क्या हमें मुक्तिबोध के उन पत्रों की स्मृति है, जहाँ हिन्दी का यह महान कवि नौकरी के लिए रिरियाते नजर आता है? ऐसी कुछ अपनी त्रासदियाँ मोहनदास की भी हैं, पर ये ऊपरी बातें हैं, उसका मर्म नहीं। असली दर्द तो स्वातंर्त्योत्तर भारत में गाँधीवादी मूल्यों की दुर्दशा है। और यही इस कहानी का मर्म भी है। आलोचना की तरह सत्ता जब अकादमिक हो जाती, तो वह भी निर्मम हो जाती है। क्या सचमुच आजादी की हमारी पहचान सत्ताधीशों के हाथों नहीं लुट चुकी है?

क्या यह पाखंडपूर्ण व्यवस्था नहीं? हिंसा अपराध और भ्रष्टाचार से अटी-पटी यह व्यवस्था हत्यारों और अपराधियों की शरणस्थली नहीं तो और क्या है? मोहनदास में इसी यथार्थ की पुनर्रचना हुई है, जहाँ सत्ता द्वारा बनाए व्यूह में एक आदमी के रूप में अपनी टार्चरिंग से वह बेहद परेशान है। इस अर्थ में यह रूपक बहुत प्रभावशाली है, जो मौजूदा समय के दोगलेपन को सृष्ट करता है। मोहनदास राजनीतिक त्रासदी की कहानी है, जहाँ वह दलित और उपेक्षित है। उसकी आत्मसत्ता का अपहरण सवर्ण विश्वानाथ के द्वारा हो जाता है। क्या इस मोहनदास की कहानी में उस मोहनदास की विडम्बना का अवबोध नहीं होता? अछूतोद्धार करने वाला मोहनदास राजनीति में आज अछूत और उपेक्षित नहीं तो क्या है? उसकी पीड़ा तो देखिए कि पुलिस की बर्बरता से टूट कर अपनी आइडिंटिटी भी भूलने को विवश है। किसी भी अदालत में यह

प्रसिद्ध समीक्षक पर्सी ल्यूबॉक दृष्टि-बिन्दु के तनाव को कहानी का असली अवधान मानते हैं। यह दृष्टि, यह चेतना कहानीकार में अपनी समझदारी से आती है। अपने समय-समाज को देखने का यह दृष्टिकोण ही रचना का असली तनाव होता है, जो उसके ढाँचे में होता है। ठीक उसी तरह जैसे एक गाड़ी में चलते हुए लोग एक से नहीं होते। एक-सी कहानियों में भी दृष्टि बिन्दु का तनाव एक-सा नहीं होता। बूढे पर लिखी कहानी का कण्टेण्ट भी एक जैसा नहीं होगा। इस संदर्भ में मुझे हेमिंग्वे की कहानी 'वेटर' की याद आती है, जिस पर मैं अपने एक पाठ में अलग से लिख चुका हूँ। उत्तर आधुनिक कही जाने वाली उदय प्रकाश की कहानियों में दृष्टि बिन्दु का तनाव उत्तर आधुनिकता के प्रतिरोध का है। उत्तर आधुनिक भूमंडलीकृत बाजारवाद के प्रतिरोध का। अमानवीकृत जीवन पद्धति, जो दूसरे राष्ट्र-समाज पर अमरबेल की तरह पसरे, उसका विरोध वक्त की जरूरत होती है। उनके हवाले से ही सूजान सेटिंग के उद्धरण से कहा जाए, तो- 'हर सच्चे लेखक की हर रचना अपने पाठक की स्मृति में एक नए मिथ का निर्माण करती है और रचना की यह वही मिथकीय शक्ति है आलोचना और राजकीय सत्ता से मुठभेड़ करती है।

हलफनामा देने के लिए तैयार है कि वह मोहनदास नहीं है। यह उसी गाँधी का लोकतंत्र है, जिसमें उसके दलित मोहनदास का यह हाल है। उदय प्रकाश ने तो बस एक मिलता-जुलता पाठ बनाया है। मोदी का हिन्दू सवर्ण में अंतरण ठीक है, और गाँधी का दलित में अंतरण गलत? कहानी को कहानी के अनुशासन में पढ़ा जाए, तो उसकी अभिव्यंजक अर्थसत्ता का यथार्थ समझ में आने लगता है। मार्खेज की कहानियों और उपन्यासों में दो सौ वर्षों तक जीने वाले पात्र हैं। तितलियों के आने के और दूध उफनने के अपने संदर्भ है, तो क्या ये कहानियाँ फालतू हैं? उनकी एक कहानी में एक आतिशी शीशा है, जिसके पास आते ही आदमी का रंग बदल जाता है। क्या ऐसा होता है, जीवन में हो सकता है? पर इसके साथ प्रेम का एक जस्टिफिकेशन है। ऐसा ही

कायांतरण 'सृंजय की कहानी' राजमार्ग में अष्टावक्र का होता है, रसप्रिया और ठंडा गोश्त में अपने तरीके से दुर्घटनाएँ होती हैं, जो अविश्वसनीय लगती हैं। काफ्का में अपने तरीके से। आदमी अमानवीय उपेक्षा से त्रस्त होकर भुनगे में तब्दील हो जाता है, फिर उदय प्रकाश पर इतनी आपत्तियाँ किस पूर्वाग्रह के कारण हैं? मार्खेज कहानी में इस आतिशी शीशे का निर्माण इसलिए करते हैं कि उनके पाठक उस यथार्थ को अभिव्यंजक तरीके से समझ सकें। भाषा और कला की अभिरचना के पीछे छिपे अर्थ के अनिश्चत स्पेश के प्रयोजन तक पहुँच सकें। डॉ. नामवर सिंह, कहानी नयी कहानी में (पेज नं.121) लिखते हैं कि ऐसे लोग कहानी के विषय को कहानी का वक्तव्य समझ लेते हैं। वे अपने एक आलेख में कहानी के मर्म के संदर्भ में कहानी के आंतरिक समवाय की चर्चा करते हैं। जाहिर है वह कथानक, घटना, परिस्थिति, पात्र-चरित्र, देश-काल और भाषा का एक कलात्मक संघटन है, अन्वितभाव है। मोहनदास यथार्थ की कल्प सृष्टि है, जो यथार्थ के विभंजन को जबरदस्त रूप-विस्तार देती है।

प्रसिद्ध समीक्षक पर्सी ल्यूबॉक दृष्टि-बिन्दु के तनाव को कहानी का असली अवधान मानते हैं। यह दृष्टि, यह चेतना कहानीकार में अपनी समझदारी से आती है। अपने समय-समाज को देखने का यह दृष्टिकोण ही रचना का असली तनाव होता है, जो उसके ढाँचे में होता है। ठीक उसी तरह जैसे एक गाड़ी में चलते हुए लोग एक से नहीं होते। एक-सी कहानियों में भी दृष्टि बिन्दु का तनाव एक-सा नहीं होता। बूढ़े पर लिखी कहानी का कण्टेण्ट भी एक जैसा नहीं होगा। इस संदर्भ में मुझे हेमिंग्वे की कहानी 'वेटर' की याद आती है, जिस पर मैं अपने एक पाठ में अलग से लिख चुका हूँ। उत्तर आधुनिक कही जाने वाली उदय प्रकाश की कहानियों में दृष्टि बिन्दु का तनाव उत्तर आधुनिकता के प्रतिरोध का है। उत्तर आधुनिक भूमंडलीकृत बाजारवाद के प्रतिरोध का। अमानवीकृत जीवन पद्धति, जो दूसरे राष्ट्र-समाज पर अमरबेल की तरह पसरे, उसका विरोध वक्त की जरूरत होती है। उनके हवाले से ही सूजान सेटिंग के उद्धरण से कहा जाए, तो- 'हर सच्चे लेखक की हर रचना अपने पाठक की स्मृति में एक नए मिथ का निर्माण करती है और रचना की यह वही मिथकीय शक्ति है आलोचना और राजकीय सत्ता से मुठभेड़ करती है।' एक बात और उत्तर आधुनिकतावादी विमर्श के बारे में कहा जाता है कि इससे स्थानीय स्वायतत्ता और विकेन्द्रीकरण की जमीन मजबूत हुई है जबकि प्रख्यात फ्रांसिसी चिंतक जेम्स पेत्रस कहते हैं, तीसरी दुनिया की आकृतियों और विचारों को तोड़ कर उनके पिछड़ेपन के अनुभवों को उभार कर, नए बिम्बों में प्रक्षेपित कर स्वायतत्ता और स्वतंत्रता के बहाने अलगाव पैदा कर, परिवार और समाज के बंधनों को नष्ट कर, बाजार और पूँजी आधारित नव उपनिवेश के लिए माहौल बनाया जा रहा है। इसी मिथ की औपनिवेशिक पुनर्रचना का नाम तो वारेन हैस्टिंग्स का साँढ़ है। कहानी में प्रतिरोध का मर्म भी तो यही है। उदय प्रकाश वारेन का स्वागत नहीं कर रहे हैं और न मोहनदास में मोहनदास के उत्पीड़न का महिमा मंडन बल्कि उत्पीड़न के प्रतिरोध का असाधारण मिथ इन कहानियों में रचा जाता है।

आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता, प्रौद्योगिकी, शहरीकरण और बाजारवाद हमारे समय-समाज का एक मौजूदा यथार्थ है। इसलिए इस अभिसंरचना से लिपटी संवेदनहीनता, क्रूरता, नृशंसता, बेगानापन, अलगाव, विस्थापन से भी हम इनकार नहीं कर सकते। प्रियंका रेड्डी के साथ हुई दुर्घटना भी ताजा दुर्घटना है। यह दुरभिसंधि भी भोगने के लिए हम अभिशप्त हैं। तिरिछ का मिथ अपनी समग्रता में आधुनिकीकरण और नगरीकरण का एक ऐसा जहरीला आतंक है, जो सपने में भी नैरेटर का पीछा करता है। इस कहानी में संत्रस का करुणा में और करुणा का संत्रस में अंतः संचरण भयानक है। इसकी व्याप्ति सर्वत्र है।

यह मानने में कोई असुविधा नहीं है कि उदय प्रकाश अपनी रचना-प्रक्रिया में यथार्थ को तीखे और व्यंजनापूर्ण तरीके से कहने में विश्वास करते हैं। विचार और संवेदना के स्तर पर उनका सृजनात्मक संघर्ष और मानवीय एप्रोच ऐसा है, जिससे किसी को भी रश्क हो सकता है। यही कारण है कि कहन के स्तर पर परम्परागत टेकनीक से अलग आख्यान का विखंडन उनके यहाँ देखा जा सकता है। फॉर्म और कण्टेण्ट का विलक्षण द्वन्द्व उन्हें जादुई यथार्थवाद तक ले जाता है।

'तिरिछ' कहानी में तिरिछ का मिथक जिस शहरीय जीवन की क्रूर संवेदनहीनता और नृशंसता की ओर ध्यान खींचता है, उससे इतर पिता का जिक्र जिस रागात्मक धरातल पर विश्लेषित होता है, कंट्रास्ट का वह द्वन्द्व अद्‌भुत है, जिससे अपने संप्रेषण में कहानी का प्रभाव तीक्ष्ण और घनीभूत हो जाता है। यही कहानी का केंद्रीय धरातल है। यहीं उसका मर्म भी है। आधुनिकता के दबाव के बावजूद पिता के प्रति नैरेटर का उदात्त भाव हमारे आप्त-लोक को विघटित होने से बचाता है। यह केवल नैरेटर के पिता का चरित्र नहीं है बल्कि वृहत्तर समाज और परिवार की एक मात्र रागात्मक धुरी है, जिसके बिना भावी जिन्दगी की कल्पना नहीं की जा सकती। पिता के बारे में जितनी बातें कही गयी हैं, वे आत्मरस से भरपूर हैं। बिल्कुल आत्मिक धरातल पर वे कहानी में पिता के व्यक्तित्व को आकार देते हैं।

'पिता एक खूब मजबूत किला थे।' पेज नं.-24
'संसार के सारे ज्ञान की तिजौरी उनके पास है'। पेज नं.-23।
वे उनके लिए सुरक्षित जीवन थे। उन्हें अपने पिता पर बहुत गर्व था, प्यार था...

आकस्मिक नहीं कि नैरेटर पिता को पारिवारिक संरचना का आधारभूत स्तंभ मानता है। ठीक इन रागात्मक अनुभूतियों और अगाध मानवीय स्मृतियों के बाद कहानी में, जिन संदर्भों, तथ्यों और विचारों का विवरण आता है, वह बहुत खौफनाक है--- जहाँ मिनरवा टॉकीज के पास ट्रैक्टर से उतरने के बाद पिता के प्रतिपक्ष में पूरा शहर ही खड़ा हो जाता है। इतना संवेदनहीन और अजनबी कि कोई उनकी कोई बात ही नहीं समझ नहीं पाता। इनसे पूर्व गाँव में तिरिछ द्वारा काटा जाना। तिरिछ से संबंधित ढेरों अंधविश्वासों के बीच राम औतार जी द्वारा धतूरे के बीज से

उपचार आदि तो कथा-सृष्टि के संजाल हैं, जो आकस्मिक है, पर पिता का पूरे शहर में तिरस्कार कोई आकस्मिक नहीं बल्कि अनिवार्य दुर्घटना है। मूल बात यह कि पिता पर तिरिछ या धतूरे के बीज का असर तो स्वाभाविक था, मगर शहर को क्या हो गया था, जिसने पिता के साथ लगभग अमानवीय और हृदयहीन जैसा व्यवहार किया? क्या अब उससे संबंधों के विखंडित ढाँचे में मानवीय व्यवहार की आशा की ही नहीं जा सकती? यही तो इस कहानी का असली टेरर है। यह वह जगह है, जहाँ लगता है कि कहानी में तिरिछ एक कल्पित मिथ नहीं है। इस जीव का वास्तविक वास सम्पूर्ण रूप से नृशंस शहरीय जीवन में है। बकौल नैरेटर, दस बज कर पाँच-सात मिनट से लेकर शाम सवा छः बजे तक के ब्यौरे दिल दहला देने वाले हैं। स्टेट बैंक में पिता के साथ जैसा हुआ उसे इत्तिफाक भी मान लें, तो पुलिस स्टेशन से इतिवारी मुहल्ले तक किसी को भी उनकी वास्तविकता का अहसास नहीं हुआ?

उदय प्रकाश ने कहानी में पूरे विस्तार के साथ शहर में घटी घटनाओं का ब्यौरा दिया है। अनुमान और कल्पना का जो हिस्सा है, उससे जुड़ कर पिता की त्रासदी पर वृहत्तर प्रकाश पड़ता है। एक गिलास पानी के लिए शहर की चौहद्दी में पागलों की तरह तीस-पैंतीस किलोमीटर तक भटकते हुए पिता मर जाते हैं। कोई भी इत्तिफाक, कोई भी संयोग उन्हें बचा नहीं पाता। यह मानवीयता के धरातल पर केवल पिता की नहीं, उस शहर की कहानी है, जिसे आधुनिकता के संजाल से हमने जीने के लिए मकड़जाले-सा रचा है। कहानी का मूल संदेश यही है।- 'पिता का शव शहर के मुरदाघर में पुलिस ने रखवा दिया था। पोस्टमार्टम में पता चला था कि उनकी हड्डियों में कई जगह फ्रैक्चर थे, दायीं आँख पूरी तरह फूट चुकी थी, कोलरबोन टूटा हुआ था। उनकी मृत्यु मानसिक सदमें और अधिक रक्तचाप से हुई थी। रिपोर्ट के अनुसार उनका अमाशय खाली था। पेट में कुछ नहीं था। मतलब धतूरे का काढ़ा उल्टियों के द्वारा निकल चुका था....तब? पिता के साथ बिना समझे ही शहर ने वैसा व्यवहार किया था, जिनसे शहरी दुनिया की निर्ममता का डर तिरिछ नाम के अदृश्य वीभत्स जंतु के विष के आतंक से ज्यादा बड़ा लगता है। यही कारण है कि गणेशी के साथ पहाड़ी दरारों में जाकर तिरिछ को जलाने के बाद भी नैरेटर शहर में उसके विष के आतंक से कभी मुक्त नहीं हो पाता है। यहाँ मैं इस कहानी के मर्म को और सघनता से महसूस करने के लिए प्रियंका रेड्डी की जघन्य हत्या पर हुई मौत पर लिखी कविता को उद्धृत करना चाहूँगा---

हम कहाँ जाएँ?
सड़क पर भेड़िये/दफ्तर में साँप/बाजार में कुत्ते/बस में, ट्रेन में,
स्कूल-कॉलेज में /बन-बिलाव...हम कहाँ जाएँ?/रौशनी में खतरा
अँधेरे में खतरा/साथ में भी सुरक्षित नहीं/अकेले चलें तो और खतरा/खतरा...खतरा..
खतरा..सर्वत्र खतरा!/सपने में, सोच में, स्मृति में/हर-तरफ बोच-घड़ियाल/हम कहाँ जाएँ?

पार्टी, पिकनिक, रेस्तराँ../अजगर सरकता है अहसास में
हम कहाँ जाएँ?/लम्बी बहस/ऊँची मीनारें/कैंडिल-मार्च,
हम कहाँ जाएँ?/मिर्च-पाउडर, कैंची, सेफ्टीपिन लेकर हम चलें

बाथरूम जाएँ/टिकट लें/कि गाड़ी पर चढ़ें-उतरें/जूडो सीखें /मार्शल आर्ट/हम जहाँ जाएँ ... तुम तहजीब की कतरनों से बनाओ/सहानुभूति के रंग-बिरंगे रुमाल/इक्कीसवीं सदी की उपलब्धियों से/बनाओ सभ्यताओं की ऊँची दीवार/रखो औरतों के सिर पर स्वर्ण-कलश, /कत्थक और कूचीपूडि की अनंत मुद्राएँ पैरों के नीचे कीमती कारपेट पर /मणि-खचित स्त्रियों की हृदयहारी हीरक छवियाँ.../सजाओ फूलों से दिल्ली, कलकता, हैदराबाद को/बनाओ बगल में रजत-द्वार/इण्डिया गेट

और फिर इच्छाओं का एक सुंदर बाजार...
औरतों के लिए हर जगह वही
इन्द्रपुरी, वही शमशाबाद।
हम कहाँ जाएँ?

... तिरिछ रूपी इस विषैले जंतु से बचा जा सकता है क्या? पिता की मौत जिन्हें अविश्वसनीय और अस्वाभाविक लग सकती है कहानी में, क्या उन्हें प्रियंका की कहानी में भी कोई अस्वाभिकता नजर आएगी? डर, घबड़ाहट, और असुरक्षा के बीच जिन संवेदनहीन नृशंस परिस्थितियों में पिता की मृत्यु हुई, क्या उन्हीं परिस्थितियों से मिलती-जुलती परिस्थितियों में प्रियंका रेड्डी की भी हत्या नहीं हुई? कह सकते हैं थोड़ा अंतर है, पर तिरिछ तो वही! कहानी का पाठ-विस्तार मूल कहानी से कम खतरनाक नहीं। रागात्मक संबंधों की दुनिया के विभ्रंश के मलबे से ही तिरिछ का जन्म होता है।

अंत में प्रार्थना यह कि कहानी वस्तुतः स्वप्न और कल्पना की अपरिमित दुनिया का नाम है। मानवीय जीवन के यथार्थ को कुरूप बनाने वाली विघातक विनाशकारी और प्रतिगामी शक्तियों का प्रतिरोध ही किसी समय-समाज में रचना का उद्देश्य होता है। यह उदय प्रकाश ही हैं कि संघर्षशील सपने के हरावल दस्ते का नायक टेपचू उनकी कहानी में मरने के बाद भी जी उठता है। इस अर्थ में वे स्रष्टा हैं, जीवन देने वाले दूसरे प्रजापति! ट्रीटमेंट की दृष्टि से यही उनके जादुई यथार्थवाद का कमाल है।

संजय कुमार सिंह, प्रिंसिपल, के.बी.झा कॉलेज कटिहार-854105
मो. : 9431867283

✧ ✧ ✧

हिमांशु श्रीवास्तव : यथार्थवादी कथाकार

डॉ. जीतेन्द्र वर्मा

गाँव में जमींदार के अत्याचार से तंग आकर मंगरुआ शहर में, उद्योग में मजदूरी करने जाता है परंतु वहाँ पर नगद वेतन मिलने के बावजूद उसकी स्थिति बदतर ही बनी हुई है। शोषण गाँव या शहर अथवा नगद वेतन से नहीं तय होता है। वह व्यवस्था से तय होता है। आधुनिक व्यवस्था में शोषण की प्रक्रिया सूक्ष्म और क्रूर हुई है। शुरू में गाँधी जी राजे - रजवाड़ों, जमींदारों के खिलाफ नहीं बोलते थे। देश भर में वामपंथी आंदोलन के दबाव में कांग्रेस ने इस व्यवस्था के खिलाफ प्रस्ताव पारित किया। सामंतवाद और पूंजीवाद अपने अनुसार सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का निर्माण करते हैं। समाज धर्म - संस्कृति के नाम पर इसका अनुकरण करता है। ऐसी गंभीर बात इस उपन्यास में सामने आती है। मजदूरों - महिलाओं के मन में सामंतवाद और पूंजीवाद ने अपने सांस्कृतिक मूल्यों को अच्छी तरह बैठा दिया है। एक गरीब दूसरे गरीब के खिलाफ खड़ा हो जाता है। महिला, महिला के खिलाफ लड़ती है।

हिमांशु श्रीवास्तव हिंदी के ऐसे कथाकार हैं, जिनकी कथा से आज की नयी पीढ़ी अनजान है। उनका उपन्यास 'लोहे के पंख' और 'नदी फिर बह चली' हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण थाती है। ये दोनों हिंदी के ऐसे उपन्यास हैं, जिनकी अपेक्षित चर्चा अभी तक नहीं हुई है। ये उपन्यास कई दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

उनका जन्म 11 मार्च, 1934 को सारण जिले के दिघवारा के हराजी नामक गाँव में हुआ था। यह क्षेत्र सोनपुर से सटा हुआ है। यहाँ का पशु मेला प्रसिद्ध है। दिघवारा से हाजीपुर, पटना नजदीक है। उन्होंने मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर की उच्च शिक्षा प्राप्त की थी।

इनकी पहली कहानी 'कल्पना' में छपी। बद्री विशाल पित्ती के संपादन में प्रकाशित होनेवाली यह पत्रिका अपने दौर की शीर्ष पत्रिका थी। पाँचवें दशक के प्रारंभ से उनका उपन्यास सामने आना शुरू हुआ। उनके कुल 36 उपन्यास प्रकाशित हुए, जिनमें उल्लेखनीय हैं -

लोहे के पंख, नदी फिर बह चली, भित्तिचित्र की मयूरी, मन के वन में, दो आँखों की झील, कुहासे में जलती धूपबत्ती, रिहर्सल, परागतृष्णा, शोकसभा, प्रियाद्रोही, पुरुष और महापुरुष, पूरा अधूरा पुरुष, पैदल और कुहासा, नई सुबह की धूप, इशारा, न खुदा न सनम। उनके कहानी संग्रह हैं - जेलयात्रा,

हंस चुगे सीप से ज्यों मोती, कथा सुंदरी, मुखबिर होने का इरादा। उन्होंने बच्चों के लिए लगभग 50 उपन्यास और कहानियाँ लिखीं। 'लोहे के पंख' इनका सबसे सफल उपन्यास है। 'यादों के शीशे में' उनका संस्मरण संग्रह है।

शुरुआती दिनों में वे कुशवाहा कांत के रोमानी उपन्यासों से प्रभावित थे। उन्होंने ऐसा लेखन भी किया। उनके रोमानी उपन्यास हैं - मेजर की पत्नी, सिंदूर का जख्म। ये बनारस के चौधरी एंड संस से छपे थे।

हिमांशु श्रीवास्तव के जीविका का आधार लेखन था। इसके लिए उन्होंने रेडियो लेखन भी किया। उन दिनों या आज भी हिंदी के लेखक को अपनी जीविका के लिए लेखन के अलावा कुछ और करना पड़ता है। जो कुछ दूसरा नहीं करते हैं, उन्हें आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है। इसका असर लेखन की गुणवत्ता पर भी पड़ता है। हिमांशु श्रीवास्तव के साथ भी यही हुआ। उनके रोमानी उपन्यास तथा रेडियो के लिए लेखन इसी का परिणाम है।

'लोहे के पंख' उपन्यास में कुछ ऐसी बातें हैं, जो इसे विशिष्ट बनाती है। जैसे - जातिगत दंश की पीड़ा, कलाकार का दुःख, द्वितीय विश्वयुद्ध का चित्रण।

यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। मंगरुआ इसका मुख्य पात्र है। वह अपने होश संभालने के बाद की अपने घर की कहानी कहता है।

यह ग्रामीण जीवन से शुरू होकर शहरी जीवन तक जाता है। उपन्यास में उपन्यास के शुरू में इसका कालखंड 1928 से 1952 - 53 बताया गया है।

दलित पीड़ा को स्वर

इस उपन्यास का नायक मंगरू एक दलित है। इस उपन्यास में जाति का प्रश्न बेबाकी के साथ उठाया गया है। कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो हिंदी साहित्य हिंदू समाज के जातिगत उत्पीड़न से मुँह चुराता आता है। वह आर्थिक गैर - बराबरी के प्रश्न को खूब उठता है पर जातिगत उत्पीड़न पर चुप रहता है।

इस उपन्यास में दलित पीड़ा को स्वर मिला है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र मंगरुआ दलित है। इसमें दलित पीड़ा को स्वर मिला है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि यह उपन्यास जब लिखा गया तब हिंदी साहित्य में दलित साहित्य का कोई स्वर नहीं था। इस उपन्यास का नायक जाति के आधार पर होने वाले भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाता है। हिंदू समाज में जाति के आधार पर हर क्षेत्र में भेदभाव होता है। उसका मन मंदिर में जाने को करता है परंतु जाति के कारण उसका मंदिर में जाने की कड़ी मनाही है। उसके मन बात सुनिए -

'हम लोग हम लोग अछूत थे। वैसे अछूत तो अभी हैं मगर उसे वक्त के हरिजन और आज के हरिजन में बड़ा फर्क हो गया है। पहले तो कुर्मी कहार भी हम लोग से बदन नहीं छुआते थे, अब तो बाबाजी लोग हम लोग का छुआ खाते हैं। उन दिनों हम लोग किसी भी मंदिर में नहीं

समा सकते थे। मंदिर की शोभा का वर्णन सुन सुन कर देखने के लिए मन बड़ा लुसफुसाता था।'1

पेट के लिए हँसना

इस उपन्यास का नायक मंगरू किशोरवय में नाचने का काम करता है। इसके माध्यम से एक कलाकार की वास्तविक जिंदगी सामने आई है। पेट के लिए वह नाचता है। लोग पेट के लिए रोते हैं पर वह हँसता है। यह हँसी दिखावटी है। वास्तविक जीवन में कलाकार का भी वही दुख है जो एक मजदूर का है। किशोरवय का लड़का, लड़की का भेष बनाकर नाचता है। उसका कमर लचकाना, स्त्री की तरह भाव - भंगिमा बनाना लोगों को बड़ा अच्छा लगता है। परंतु उसके शरीर का दर्द भी उसी तरह होता है, जो एक मेहनत - मजदूरी करने वाले मजदूर को होता है - 'पाउटी काटने से मुझे जो तकलीफ होती थी, उसे कोई नहीं समझता था। नाचते समय बराबर पेट पटकते रहने के कारण सुपली (घुट्ठी से नीचे तक का भाग) में इतनी जोरो का दर्द होता कि लगता कि सुपुली काट कर फेंक दूँ। पैर की उंगलियों की गिरह - गिरह में उठती थी। चार-चार घंटे लगातार नाचने के बाद, जब बाराती लोग खा लेते, तब नचनियाँ समाज को खाने के सामान दिए जाते थे।' 2

व्यवस्था परिवर्तन का द्वंद

इस उपन्यास में व्यवस्था परिवर्तन की बात उठायी गयी है आजादी मिलने से कुछ लोगों को व्यवस्था परिवर्तन की उम्मीद जगी थी। व्यवस्था के सूक्ष्म कील-काँटों की पहचान उपन्यासकार को थी। तभी उन्होंने इस उपन्यास में यह दिखलाया है कि आजादी के नजदीक आने से गाँव का जमींदार बच्चा सिंह जल्दी-जल्दी कांग्रेस में शामिल होकर स्वतंत्रता सेनानी बन जाता है और आजादी के बाद वही एम.एल.ए. बनकर सत्ता पर काबिल हो जाता है। मंगरुआ जैसे लोग गाँधी जी की बातों में आकर व्यवस्था परिवर्तन की उम्मीद कर रहे थे। वे फिर ठगे जाते हैं। आजादी के पहले यह बात जनमानस में प्रसारित हुई थी कि आजादी के बाद जमींदारी प्रथा खत्म कर दी जाएगी। इससे गरीबों में उत्साह जगा था परंतु आजादी के बाद जमींदार एम. पी., एम.एल.ए., आई. ए. एस., कोटा परमिट आदि के माध्यम से नए ढंग की जमींदारी लेने में सफल हो गए। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास कर्मभूमि में व्यवस्था परिवर्तन का प्रश्न उठाया था। उसमें एक पात्र प्रश्न उठाया है कि क्या आजादी के बाद आप लोग भी बड़े-बड़े बंगलों में रहेंगे?

यह संक्रमण काल की रचना है। आजादी की लड़ाई चरम पर है। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद अंग्रेजों ने भारत को स्वतंत्र करना स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे सत्ता हस्तांतरण की प्रक्रिया शुरू हुई। फिर आजादी मिली। अंतिम सरकार के लिए चुनाव हुआ। फिर पहला आम चुनाव हुआ। इस काल में परिस्थितियों में तेजी से बदलाव आया।

गाँव में जमींदार के अत्याचार से तंग आकर मंगरुआ शहर में, उद्योग में मजदूरी करने जाता है परंतु वहाँ पर नगद वेतन मिलने के बावजूद उसकी स्थिति बदतर ही बनी हुई है। शोषण

गाँव या शहर अथवा नगद वेतन से नहीं तय होता है। वह व्यवस्था से तय होता है। आधुनिक व्यवस्था में शोषण की प्रक्रिया सूक्ष्म और क्रूर हुई है। शुरू में गाँधी जी राजे - रजवाड़ों, जमींदारों के खिलाफ नहीं बोलते थे। देश भर में वामपंथी आंदोलन के दबाव में कांग्रेस ने इस व्यवस्था के खिलाफ प्रस्ताव पारित किया।

उपन्यास के प्रारंभ में मंगरू के दादा जी मारे जाते हैं। उसके पिता जी कोलकाता में कमाते हैं। उन्हें खबर भेजनी है। पत्र लिखने वाला मंगरू के दादी से पूछता है कि पत्र में क्या लिखना है? इसके उत्तर में उसकी दादी रोने लगती है। पत्र लिखवाने वाला समझ जाता है कि पत्र में क्या लिखवाना है।

इस उपन्यास में द्वितीय विश्व युद्ध का चित्रण है। इस युद्ध से जन जीवन प्रभावित हुआ। महंगाई बढ़ गयी, सुभाष चंद्र बोस की तरफ से होनेवाले बमबारी में बहुत लोग मारे गए, कोलकत्ता छोड़ कर बहुत सारे लोग एकाएक गाँव लौटने लगे, इससे अराजकता फैल गयी। 'बाजार से चावल उठ जा रहा था। गेहूँ गायब हो रहा था। पहले चावल पीसकर लोग रोटी बनाने लगे। फिर चावल पाँच सेर का हुआ, इसके बाद तीन सेर का, फिर डेढ़ सेर का और तब रुपए का तीन पाव। इसी समय सुना कि कलकत्ते के बाजार से चावल गायब हो गया। वहाँ बारह आने बोतल माड़ बिकने लगा था। लोगों में अफवाह फैल रही थी कि हिंदुस्तानियों को तबाह करने के लिए अंग्रेज सरकार महंगे - से - महंगे भाव पर गल्ले खरीद कर समुद्र में फेंक देती है। इन्हीं दिनों झूलन बाबा जी बतला रहे थे कि जापान कोलकाता तक आ गया है। इधर बाबू के यहाँ से चिट्ठी का आना-जाना बंद हो गया था। पूरब की ओर जो लोग रेलगाड़ी आती, लोग उसमें जानवर की तरह करते थे। पावदान और छाते नजर नहीं आती थीं। पावदानों पर लोग टंगे होते और छतों पर बैठे रहते थे। छत से कितने लोग गिरकर मर गए। ये सभी लोग पूरबी देश से भागे चले आ रहे थे। किसी के पास एक दरी होती तो किसी के पास एक लोटा। लोग अपना सब कुछ छोड़कर अपने गाँव पर भागे आ रहे थे। इन भागने वालों में बहुत घायल भी नजर आते थे। किसी के माथे पर पट्टी बंधी होती, तो किसी के पीठ में। किसी का एक हाथ साफ था, तो किसी का एक कान गायब।'3 हिंदी के किसी दूसरे उपन्यास में द्वितीय विश्व युद्ध का ऐसा यथार्थ वर्णन नहीं मिलता है।

इसका नायक मंगरुआ जीवन भर संघर्ष करता है परंतु उसे स्वप्न में भी सुख नसीब नहीं होता है। उसके जीवन में कई ऐसे अवसर आते हैं, जब वह अपने नीति और सिद्धांत से समझौता करके आराम की जिंदगी जी सकता था परंतु मंगरु कभी अपने नीति और सिद्धांत से समझौता नहीं करता। वह अंत तक निराश नहीं होता है। यह एक उपन्यास की महत्वपूर्ण स्थापना है। उपन्यासकार उसके दुखों को दिखाकर निराशा या करुणा उपजाने का प्रयत्न नहीं करता है। वह अंत में कहता है' लेकिन, इसका अर्थ यह नहीं कि मैं वर्तमान या भविष्य से घोर निराशा के सपने देख रहा हूँ। यह दूसरी बात है कि दिन - रात रिक्शा खींचने के कारण दिल जला रहता है और क्रोध के कारण तुमसे कुछ अनाप-शनाप ही बक गया हूँ। लेकिन, हर पार्टी में

अच्छे - बुरे लोग हैं। मजदूरों को आज जो सुविधाएँ मिली हैं, पार्टियों के संगठन और संघर्ष के ही फल हैं वे। तुम्हीं सोचो न, आखिर उद्धार का रास्ता क्या है? कभी-कभी कुछ कामरेड भूल कर बैठते हैं, और पूरी पार्टी बदनाम हो जाती है। राजनीति को वर्तमान जीवन से अलग करके कहाँ रहोगे? अपनी - अपनी खूबियों के लिए हर पार्टी के आदर्श को अपनाना चाहिए, मैं अपनी घुटन में ही अपनी ही घुटन अथवा चिढ़ से सारी पार्टी को तोलना अनुचित समझता हूँ। हृदय के एक कोने में बार-बार यह आवाज आती है कि मजदूरों का सारा समाज उठेगा और उनकी ऐसी स्थिति होगी, जब वह चैन की सांस लेता हुआ यह सोचेगा कि हम भी मनुष्य हैं -- हमारी रक्षा के साधन हमें मिल गए हैं और उसके दिमागी कंधे पर जो लोहे के पंख लगे हैं, वह धीरे-धीरे कट रहे हैं।' 4

सांस्कृतिक मूल्यों की समझ

सामंतवाद और पूंजीवाद अपने अनुसार सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का निर्माण करते हैं। समाज धर्म - संस्कृति के नाम पर इसका अनुकरण करता है। ऐसी गंभीर बात इस उपन्यास में सामने आती है। मजदूरों - महिलाओं के मन में सामंतवाद और पूंजीवाद ने अपने सांस्कृतिक मूल्यों को अच्छी तरह बैठा दिया है। एक गरीब दूसरे गरीब के खिलाफ खड़ा हो जाता है। महिला, महिला के खिलाफ लड़ती है।

ऐसा सामंतवादी और पूंजीवादी जीवन मूल्यों के अनुकरण के कारण होता है।

यही वजह है कि मंगरु के दादा रतन जमींदार के जमीन की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं। वह जमींदार की जमीन की रक्षा के लिए इतना तत्पर है कि भूखे ही भाला लेकर चल देता है और मारा जाता है। उसका कथन है कि 'मेरे रास्ते भी कोई मालिक के खेत में छेव लगा दे, तो यह जिनगी अकारथ है।'5

बदले में उनके परिवार को जमींदार के द्वारा छल के सिवा कुछ नहीं मिलता है। रतन मंगरु और उसके परिवार के खिलाफ कान भरने में और उसकी दुर्गत करवाने में मजदूरों का हाथ दिखाई देता है। रतननगर के फैक्ट्री में मजदूर जब हड़ताल करते हैं तो दूसरे मजदूर नौकरी के लालच में जाकर हड़ताल को असफल बना देते हैं। ऐसा सामूहिक सामूहिकता की भावना की जगह व्यक्तिगत मूल्य के निर्माण के कारण होता है। जीवन मूल्यों का निर्माण लंबी प्रक्रिया से होता है। इसमें साहित्य, संगीत, नृत्य तथा कला के अन्य रूप भूमिका निभाते हैं।

उपन्यास में लेखक अपनी ओर से कुछ कहता नहीं दिख रहा है। वह मंगरु, अन्य पात्र तथा घटना क्रम के माध्यम से ही सारी बात कहता है।

उपन्यास में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्य पद्धति और उद्देश्य का भी वर्णन हुआ है।

लोहे के पंख की तुलना मुल्कराज आनंद के उपन्यास कुली से की जा सकती है। इसमें भी एक मजदूर की संघर्ष भरी कथा है। कुछ लोगों को यह विश्वास था और कुछ लोगों को आज भी है कि औद्योगिककरण से जातिगत ऊँच - नीच की समस्या तथा गरीबी की समस्या का अंत

हो जाएगा। लोहे के पंख में यह दोनों बातें असत्य होते हुए दिखाई देती हैं।

भोजपुरी शब्दों का प्रयोग

इस उपन्यास के शुरुआत में भोजपुरी के टिपिकल शब्दों का प्रयोग हुआ है। यहाँ की संस्कृति इसमें मूर्तिमान हो उठी है। ऐसा हिंदी के दूसरे किसी उपन्यास में नहीं मिलता है। हिंदी शब्दों को बिगाड़ कर भोजपुरी या आंचलिक नहीं बनाया गया है। ये पारिभाषिक शब्द की तरह है। जैसे - काछकर, दारा, टहाटह, गंडा, गांति, कान पाथकर (ध्यान से सुनना), अगताह (समय से पहले), टांसी, छेव, छ छ पांति लोर, छरियाति, आसरे (जाति)।

प्रकाशन के नेपथ्य में

यह उपन्यास 1958 में प्रकाशित हुआ। उस समय हिमांशु श्रीवास्तव की उम्र मात्र 24 वर्ष थी। उन्होंने अपने एक संस्मरण 'तरूनाई के दिन' में लिखा है कि 'इस उपन्यास को प्रकाशित करने के लिए कोई प्रकाशक तैयार नहीं हो रहा था। एक प्रकाशक तैयार भी हुआ तो अप्रत्यक्ष रूप से इनकी शादी के शर्त पर। शादी से इंकार करने पर वह पांडुलिपि ही नहीं लौटा रहा था। इसमें विलंब हुआ। इसकी भूमिका लिखने के लिए हिंदी के एक बड़े लेखक को दिया था। उन्होंने कई दिनों तक इसे अपने पास रखा, परंतु इसकी भूमिका नहीं लिखी और उल्टे हतोत्साहित किया।'6

उनका दूसरा चर्चित उपन्यास 'नदी फिर बह चली' है। यह दलित स्त्री की आत्मकथा है।

'भित्तिचित्र की मयूरी मनोवैज्ञानिक ढंग का उपन्यास है। कथा सूर्य की नयी यात्रा प्रेमचंद के ऊपर है। उपन्यासकार ने कल्पना की है कि अगर आज प्रेमचंद अपने समाज को देखते तो कैसा महसूस करते। 26 मई, 1996 को उनका निधन हो गया।

हिंदी के आलोचक

ऐसा नहीं है उनकी रचनाधर्मिता पर हिंदी के आलोचकों का एकदम ध्यान ही नहीं गया हो। जैनेंद्र कुमार, राजेंद्र यादव, रामविलास शर्मा, त्रिभुवन नारायण सिंह आदि ने उनकी रचनाधर्मिता का सही मूल्यांकन किया परंतु साहित्य के क्षेत्र में जो निरंतरता होनी चाहिए वह नहीं हुआ। इससे नयी पीढ़ी उनके लेखन से अपरिचित रह गयी। राजेंद्र यादव ने उनके बारे में लिखा है कि एक बार यशपालजी ने मुझे लिखा था कि तुम लोग प्रेमचंद के पीछे पागल हो। कभी हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली' उपन्यास पढ़ना। समाज पर उनकी पकड़ प्रेमचंद से कम नहीं है। दो दर्जन से अधिक उपन्यासों के लेखक हिमांशु जी इसी महीने हमसे बिछड़ गए। अंतिम आठ दस साल आर्थिक अभाव और बीमारियों से जूझते रहे। जगदीश चंद्र की तरह चूंकि वे भी दिल्ली की केंद्रीयता से बाहर थे। इसलिए उपेक्षा झेलते या स्थानीय ईर्ष्या - द्वेष के शिकार होते रहे। सच यह भी है कि रेणु का जन्म अचानक नहीं हुआ, उनके पीछे शिवपूजन सहाय,

ब्रजनंदन, राधाकृष्ण, अनूप लाल मंडल, मोहनलाल महतो वियोगी, हिमांशु श्रीवास्तव, हवलदार त्रिपाठी सहृदय या नागार्जुन आदि न जाने कितने कथाकारों की पृष्ठभूमि है। हिमांशु की अंतिम समय तक सक्रिय थे और हंस को उनकी अनेक रचनाएं छापने का गौरव प्राप्त है।'7

इनके उपन्यासों का मूल्यांकन करते हुए रामविलास शर्मा ने लिखा है कि 'इन उपन्यासों ने हिंदी में यथार्थवाद की परंपरा को दृढ़ किया है और सबसे बड़ा काम यह किया है कि हिंदी उपन्यास को जैनेंद्र - अज्ञेय - यशपाल - अश्क के क्रांतिकारी रोमांसवाद के दलदल से बाहर निकाला है। इन उपन्यासों में जनजीवन की ताजगी है, अतृप्त यौन आकांक्षाओं के बदले मेहनत करने वाले स्त्री - पुरुषों के वास्तविक दुख - सुख की कहानी है।'8 अंत में उन्होंने कहा है कि 'कुल मिलाकर जनसाधारण के जीवन और संघर्ष को चित्रित करने वाला यह एक बहुत सफल उपन्यास है।'9

त्रिभुवन सिंह ने इनके पाँच उपन्यासों लोहे के पंख, नदी फिर बह चली, सिकंदर, कथा सूर्य की नयी यात्रा पर और धर्मचेता पर लिखा है।10

इन सब के बावजूद अभी उनका मूल्यांकन होना शेष है।

संदर्भ :

1. लोहे के पंख, ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना 4, पृष्ठ संख्या - 33
2. लोहे के पंख, ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना 4, पृष्ठ संख्या - 76
3. लोहे के पंख, ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना 4, पृष्ठ संख्या - 140
4. लोहे के पंख, ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना 4, पृष्ठ संख्या - 444
5. लोहे के पंख, ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना 4, पृष्ठ संख्या - 23
6. सारिका, मई 1989, पृष्ठ संख्या - 58 - 60
7. संपादकीय, हंस, जुलाई, 1996
8. कथा विवेचना और गद्य शिल्प, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 84
9. कथा विवेचना और गद्य शिल्प, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 86
10. हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 619 - 639

डॉ. जीतेंद्र वर्मा, हिंदी विभाग, दर्शन साह महाविद्यालय कटिहार, पूर्णियाँ
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, दर्शन साह महाविद्यालय, कटिहार (बिहार)
मो. : 9955589885

✧ ✧ ✧

मृत्युंजय (मराठी)

डॉ. दीपा श्रीवास्तव

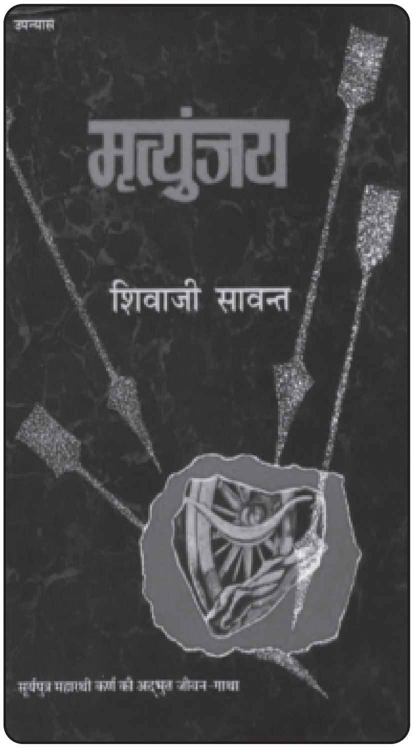

लेखक : शिवाजी राव सावंत
प्रकाशन वर्ष :1967
अनुवाद :ओम शिवराज

भारतीय साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र और सार्वदेशिक सार्वकालिक सर्वश्रेष्ठ मराठी उपन्यास 'मृत्युंजय' के रचनाकार शिवाजी सांवत का जन्म 31 अगस्त, 1940 ई. और मृत्यु 18 सितम्बर, 2002 ई. में हुई। उन्होंने उपन्यास, निबंध और नाटकों की रचना की। बचपन से ही उनकी नाटकों में रुचि थी। बचपन में खेले गए 'महाभारत' नाटक में उन्होंने कृष्ण की भूमिका निभाई, लेकिन उस नाटक में महारथी कर्ण के द्वारा बोले गए कुछ संवादों ने उनके मन पर ऐसा गहरा प्रभाव डाला कि उनका हृदय व्याकुल रहने लगा। उनकी समझ में आ गया कि कर्ण के बारे में लिखे बिना उनका जीवन निरर्थक होगा। इस तरह उन्होंने मृत्युंजय उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास उनके वर्षों के चिंतन मनन का फल था और 27 वर्ष की अवस्था में उनका यह कालजयी उपन्यास 1967 में प्रकाशित हुआ।

इस उपन्यास को अपार लोकप्रियता मिली। इसका अनुवाद हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़, तेलुगू, मलयालम आदि अनेक भाषाओं में हो चुका है। यह उपन्यास महारथी दानवीर कर्ण के विराट व्यक्तित्व पर केंद्रित है। महाभारत के कई मुख्य पात्रों के बीच जहाँ स्वयं श्री कृष्ण भी हैं, कर्ण की दिव्य छवि प्रस्तुत करते हुए श्री सावंत

ने उनके जीवन की सार्थकता और उनकी नियति की मार्मिक तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की है। उपन्यास को महाकाव्य का धरातल देकर उन्होंने इसे विशिष्ट बना दिया।

विषय-वस्तु पर सूक्ष्म पकड़, शैली का सुंदर निखार और भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति अद्वितीय है। इस उपन्यास में कर्ण, कुंती, दुर्योधन, वृषाली (कर्ण की पत्नी), शोण और कृष्ण के मार्मिक आत्मकथ्यों की शृंखला प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने जनसाधारण के मन में कर्ण की जो धूमिल और तिरस्कृत प्रतिमा थी, उसे आदरणीय बना दिया।

मृत्युंजय उपन्यास दानवीर कर्ण के विराट व्यक्तित्व पर केंद्रित है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। लेखक ने कर्ण, कुंती, दुर्योधन, वृषाली, शोण और कृष्ण के आत्मकथ्यों का विस्तार किया है। 700 पृष्ठों वाला यह उपन्यास अनेक अध्यायों में विभाजित है। कर्ण के आत्मकथ्यों का भाग 38 खंडों में बंटा हुआ है। इन खंडों में कर्ण ने अपने जीवन के पूर्वार्ध के वृत्तांत का वर्णन किया है।

अपने जीवन की कहानी बताते हुए कर्ण इस दुविधा में है कि वह अपनी कहानी कहाँ से शुरू करे, लेकिन उसे गंगा माता और चंपा नगरी से बहुत प्यार है। उसे वह अपनी जीवन यात्रा का सबसे शांत स्थल प्रतीत होता है। कर्ण ने अपने बचपन के दिन यहाँ बिताए थे।

कर्ण की माता का नाम 'राधा' और पिता का नाम 'अधिरथ' था। माता-पिता के प्रति उसके हृदय में अपार श्रद्धा थी। अपनी माता को तो वह ममता का समंदर मानता था, वह प्यार से उसे वासु कहकर बुलाती थी। कर्ण के कानों में दो जन्मजात कुंडल थे। उन कुंडलों को राधा माता एकटक निहारा करती और बार-बार उसे गंगा की ओर जाने से मना करती।

कर्ण के पिता अधिरथ हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र के सारथी थे। वह वहाँ से एक बड़ा रथ लेकर चंपा नगरी आते थे। अपने साथ अनेक प्रकार के धनुष भी लाते थे। उनमें से एक धनुष कर्ण को बहुत प्रिय था।

कर्ण और शोण एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। कई बार कर्ण के मन में यह प्रश्न उठता कि शोण के कानों में कुंडल क्यों नहीं है? इस प्रश्न का उत्तर उसे किसी से प्राप्त नहीं होता। तब कर्ण सोचता मैं कौन हूँ? यह कुंडल मुझे ही क्यों मिला? बेचैन होकर वह गंगा नदी में जाकर खड़ा हो जाता। पूर्व दिशा से जब सूर्य धीरे-धीरे दर्शन देते तो उसे असीम शांति मिलती।

एक बार जब अधिरथ चंपा नगरी आए तो उन्होंने बताया कि इस बार वे कर्ण को भी हस्तिनापुर ले जाएंगे ताकि वह युद्ध विद्या की शिक्षा प्राप्त कर सके। फिर शोण और कर्ण चंपा नगरी से हस्तिनापुर चले जाते हैं।

हस्तिनापुर के राजप्रासाद में सबसे पहले उसकी मुलाकात दुर्योधन से होती है। दुर्योधन भी उसके कानों के कुंडल को देखकर प्रभावित होता है। फिर वे लोग महाराज धृतराष्ट्र से मिलने चले जाते हैं। कर्ण की मुलाकात विदुर से भी होती है। सबको कर्ण के कानों का कुंडल अद्‌भुत लगता है। अधिरथ कर्ण को भीष्म पितामह, गांधारी, पांडवों तथा राजमाता कुंती के बारे में बताते हैं। फिर वह उसे लेकर उस स्थल पर जाते हैं, जहाँ द्रोणाचार्य राजकुमारों को युद्ध की शिक्षा देते हैं। वहाँ कर्ण अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर और गुरु द्रोण आदि से मिलता है। कर्ण और शोण का नाम शिक्षा के लिए लिख लिया जाता है, लेकिन गुरु द्रोण स्पष्ट कह देते हैं कि उनकी शिक्षा राजकुमारों के साथ नहीं होगी क्योंकि कर्ण का जन्म राजकुल में न होकर सूत कुल में हुआ है। इस घटना से कर्ण विचलित हो जाता है। मध्यरात्रि के बाद वह शांति पाने हेतु गंगा की शरण में चला जाता है। धीरे-धीरे उगते हुए सूर्य को देखकर उसे शांति मिलती है। वहीं उसकी मुलाकात भीष्म पितामह से होती है। कर्ण को उनका व्यक्तित्व अत्यंत प्रभावित करता है। अगले दिन से कर्ण और शोण युद्धशाला में शस्त्र विद्या सीखने चले जाते हैं। कौरवों और पांडवों में दो ही राजकुमार कर्ण को अच्छे लगते हैं- दुर्योधन और दुशासन। गुरु द्रोण का अर्जुन के प्रति अत्यधिक स्नेह देखकर कर्ण को अच्छा नहीं लगता। वह तन-मन-धन से विद्या ग्रहण करने लगता है। कर्ण स्पष्ट कहता है कि पहले उसे तीन वस्तुओं से प्रेम था- गंगा माता, सूर्य देव और राधा माता द्वारा प्रदान की गई चाँदी की पेटिका। अब उसमें एक और वस्तु सम्मिलित हो गई है- वह वस्तु है धनुष और बाण।

हस्तिनापुर में रहते हुए कर्ण की नियमित दिनचर्या थी - ब्रह्म मुहूर्त में उठकर गंगा किनारे जाना, स्नान करना और जल में खड़े होकर अंजुलि में जल भरकर सूर्य की प्रतीक्षा करना। वह नित्य उस जल से सूर्य देव को अर्घ्य देता था। इसके उपरांत युद्ध शाला जाकर अभ्यास करता था। उस के हृदय में दुर्योधन के प्रति अत्यधिक आकर्षण था। उसका दूसरा मित्र था- गुरु द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा।

धीरे-धीरे 5 वर्ष बीत गए। वह अपने छोटे भाई के साथ अपनी माता से मिलने गया। रास्ते में उसकी भेंट सर्वश्रेष्ठ सारथी सत्यसेन की बहन वृषाली से होती है। 15 दिन बाद वह फिर हस्तिनापुर लौट आता है। वहाँ पहुँचकर उसे पता चलता है कि सभी राजकुमारों की परीक्षा होगी और जो सर्वश्रेष्ठ होगा उसे सारा हस्तिनापुर वीर का सम्मान देगा। अंतत वह दिन भी आ जाता है। एक-एक करके सभी राजकुमार अपना कौशल दिखाते हैं, उस परीक्षा में युवराज अर्जुन विजयी होते हैं और मौके पर कर्ण वहाँ पहुँच जाता है और अपना कौशल दिखाने के लिए अवसर की माँग करता है। महाराज धृतराष्ट्र उसे अपना पुरुषार्थ दिखाने का अवसर देते हैं लेकिन गुरु द्रोणाचार्य यह कहकर मना कर देते हैं कि अर्जुन राजकुमार है और कर्ण साधारण युवक। इस समय दुर्योधन कर्ण को अंग देश का राजा बनाता है और कर्ण के जीवन का एक अध्याय यहाँ समाप्त होता है।

'मृत्युंजय' उपन्यास के आगे का अंश कुंती के आत्मकथ्य पर आधारित है। वह अपने जीवन के बीते हुए 50 वर्षों को याद करते हुए दुखी हैं। इन 50 वर्षों ने हर वक्त उनकी परीक्षा ली है। वह महसूस करती है कि इन क्षणों में मैंने भिन्न-भिन्न कुंतियों का जीवन बिताया है।

सबसे पहले उन्हें उनका बचपन याद आता है। तब उनका नाम 'पृथा' था। लेकिन परिस्थितियाँ उन्हें मथुरा की राजकुमारी से भोजपुर की राजकुमारी कुंती बना देती हैं।

ऐसे ही जीवन व्यतीत होने लगा। एक दिन राज दरबार में ऋषि दुर्वासा का आगमन हुआ, जो पंचतत्व पर विजय प्राप्त करने के लिए एक यज्ञ करने हेतु वहाँ आए थे। कुंती की देखरेख में उनका यज्ञ सफल हुआ। वह कुंती से प्रसन्न हुए और उसे वीरों की जननी बनने का आशीर्वाद दिया। उन्होंने कहा कि जिस जिस शक्ति का स्मरण करके मेरे दिए हुए मंत्र को पढ़ोगी वही शक्ति मानव के रूप में तुम्हारे सामने दास की तरह आकर खड़ी हो जाएगी और तुम्हारे अंदर अपने ही जैसे तेजस्वी पुत्र का निर्माण कर चली जाएगी। इतना कह कर महर्षि दुर्वासा चले गए।

कुछ दिनों के उपरांत कुंती ने मंत्रों की शक्ति देखने के लिए सूर्य का स्मरण किया और वही हुआ जैसा ऋषि ने कहा था। समय आने पर कुंती ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया।

पांडु से विवाह के पश्चात् उन्होंने एक के बाद एक तीन पुत्रों को जन्म दिया। युधिष्ठिर यम देवता, भीम वायु देवता और अर्जुन इंद्र देवता के पुत्र हुए। आगे चलकर माद्री को भी दो पुत्र हुए।

पांडु की मृत्यु के बाद पांचों बालकों की जिम्मेदारी कुंती के ऊपर थी। कुंती के लिए वन में रहना मुश्किल हो गया और वह पुत्रों को लेकर हस्तिनापुर लौट गई। रह-रहकर कुंती को उस पुत्र की याद भी आती थी, जिसे उन्होंने अश्व नदी में छोड़ दिया था। हस्तिनापुर आने पर भीष्म पितामह ने उन्हें राजमाता कहकर सम्मानित किया। यहाँ आकर पता चला कि महारानी गांधारी ने भी 100 पुत्रों और एक पुत्री को जन्म दिया है। जीवन अपनी गति से चलता रहा। राजकुमारों की शिक्षा पूरी होने पर हस्तिनापुर के सर्वश्रेष्ठ वीर का चुनाव हुआ और यह सम्मान अर्जुन को मिला। इस स्पर्धा में कर्ण भी भाग लेने आया। उसके कानों के कुंडल को देखकर कुंती ने उसे पहचान लिया कि यह वही बालक था सूर्यपुत्र जिसे उन्होंने अश्व नदी में फेंक दिया था, लेकिन वह चाह कर भी यह साहस नहीं जुटा पाई कि उसे अपना पुत्र स्वीकार करें।

इस घटनाक्रमों के बाद उपन्यास की कहानी का सूत्र फिर से कर्ण से जुड़ जाता है। कर्ण अब अंग देश का राजा है। दुर्योधन उसको अपना सच्चा मित्र मानता है। पांडवों के प्रति उसकी घृणा भी बढ़ती जा रही है। कुछ दिनों के उपरांत वृषाली से उसका विवाह हो गया। दिन गुजरते जाते हैं। इसी बीच कृष्ण द्वारा कंस को मारे जाने की खबर भी आती है। कुंती कृष्ण की बुआ थी। इसलिए हस्तिनापुर में कृष्ण के अभिनंदन समारोह का आयोजन किया गया था। उसी

समय कर्ण की मुलाकात कृष्ण से हुई। कुछ दिनों उपरांत वृषाली ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम 'सुदामन' रखा गया।

उपन्यास में अगला आत्मकथ्य दुर्योधन का है। उसने अपना परिचय देते हुए स्वयं कहा है कि लोग उसे दुर्गुणों का पुतला समझते हैं। कर्ण के साथ अपने संबंधों के बारे में उसकी मान्यता है कि अंग देश का राजा बनाकर उसने उसे मुट्ठी में कर लिया है। उसने पांडवों के प्रति अपनी घृणा भी व्यक्त की है। उसे गुरु द्रोण द्वारा किए गए घोर उपेक्षा की याद है। उस ने धृतराष्ट्र के मन में यह भावना भर दी है कि पांडव वास्तव में उनके भाई के पुत्र नहीं है। उसने पांडवों को जीवित जलाने की योजना बनाई। यह जिम्मेदारी पुरोचन को सौंपी गई। उसने पुरोचन को कार्य समाप्त होने पर अमात्य बनाने का प्रलोभन दिया था। योजना के अनुसार पांडवों को कुंती के साथ वनवास भेज दिया गया। पांडवों के कुंती समेत मारे जाने की खबर आती है। कुछ समय उपरांत पांचाल में द्रोपदी का स्वयंवर हुआ। वहाँ अनेक देशों के राजा और राजकुमार आए थे लेकिन स्वयंवर में दो महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई। द्रौपदी द्वारा कर्ण का अपमान हुआ और ब्राह्मण वेषधारी अर्जुन से द्रौपदी के विवाह ने इस रहस्य से भी पर्दा उठा दिया कि पांडव और कुंती जीवित हैं।

अगले आत्मकथ्य में वृषाली की भावना व्यक्त की गई है। वृषाली यह बताती है कि महाराज दुर्योधन का विवाह भानुमति से होता है। एक बात और उसे पता चलती है कि भानुमति ने इस शर्त पर विवाह किया है कि कर्ण उसकी प्राणप्रिया सहेली सुप्रिया से विवाह करेंगे। साथ ही द्रोपदी के स्वयंवर में हुए संघर्ष और अर्जुन द्वारा कर्ण और वृषाली के पुत्र सुदामन की हत्या भी हो जाती है। पांडव द्रौपदी के साथ हस्तिनापुर आते हैं और अपने अधिकार की माँग करते हैं। तब धृतराष्ट्र ने खांडव वन देखकर उन्हें वहाँ राज्य बनाने का परामर्श दिया। इसी बीच वृषाली को एक और पुत्र भी होता है और एक दिन खबर आती है कि पांडवों ने खांडव वन में एक नगर बना लिया और उस नगर का नाम 'इंद्रप्रस्थ' रखा गया है।

आगे की कथा फिर कर्ण द्वारा कही गई है। इस अंश में इंद्रप्रस्थ की घटना का वर्णन है, जहाँ पर एक बार फिर द्रौपदी दुर्योधन का अपमान करती है। युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए हस्तिनापुर बुलाया जाता है और जुए में वे सब कुछ हार जाते हैं। द्रौपदी का चीर हरण होता है। पांडवों को 12 वर्ष का वनवास तथा 1 वर्ष के अज्ञातवास की सजा दी जाती है। दुर्योधन, कर्ण और अश्वत्थामा आदि मिलकर उन्हें वहाँ भी चैन से रहने नहीं देते। आगे की कथा में कर्ण के छोटे भाई शोण का आत्मकथ्य है, जो कर्ण के साथ दुर्गविजय पर निकलता है। दुर्ग विजय के पश्चात् वापस आकर कर्ण दुर्योधन और अपने अन्य मित्रों के साथ आनंद उत्सव मनाता है। तत्पश्चात् घोषणा करता है कि आज से कोई भी याचक कर्ण के द्वार से कभी रिक्त हाथ वापस नहीं जाएगा। उसके इस प्रण का फायदा उठाते हुए इंद्र ब्राह्मण का वेश धारण करके कर्ण का कवच और कुंडल दान में माँग लेते हैं। कर्ण समझ जाता है कि यह इंद्र हैं, जिन्होंने अपने पुत्र अर्जुन के विजय की

कामना के लिए यह कृत्य किया है। इंद्र कर्ण से अत्यंत प्रभावित होते हैं और उसे एक अमोघ अस्त्र का उपहार देते हैं।

आगे की कथा फिर कर्ण द्वारा कही गई है। अब कर्ण के मन में ब्रह्मास्त्र पाने की लालसा जागती है और इसे प्राप्त करने के लिए वह परशुराम की शरण में जाता है। कठिन अभ्यास के बाद वह परशुराम से ब्रह्मास्त्र प्राप्त करता है। परशुराम के आश्रम में रहते हुए एक दिन वह आखेट के लिए जाता है। बहुत देर तक उसे कोई शिकार नहीं मिलता है। अचानक उसे आसपास किसी पशु के होने की आहट मिलती है। वह शब्द भेदी बाण चलाता है और गलती से उसके हाथों गो-हत्या हो जाती है। उसका बाण एक गाय के मस्तक में चुभ जाता है। वह एक वृद्ध ब्राह्मण की गाय थी। आहत होकर वह ब्राह्मण उसे श्राप देता है कि तुम्हारे रथ का चक्र भी युद्ध के समय भूमि मे गड़ जाएगा। उसी प्रकार जिस प्रकार गाय के मस्तक में वह बाण गड़ गया है, लाख प्रयत्न करने पर भी वह बाहर नहीं निकलेगा। आगे के घटनाक्रम में परशुराम भी उसे श्राप दे देते हैं कि वह युद्ध के अवसर पर ब्रह्मास्त्र का उपयोग नहीं कर पाएगा, क्योंकि उसने असत्य कहा है कि वह ब्राह्मण पुत्र है। इस प्रकार वह दुखी हृदय से हस्तिनापुर वापस आ जाता है। वहाँ दुर्योधन उसे पांडवों की खोज करने की बात करता है, क्योंकि उन्होंने 12 वर्ष वनवास के पूरे कर लिए थे और 1 वर्ष अज्ञातवास बचा था।

अज्ञातवास पूरा करने के लिए पांडवों ने विराटनगर में आश्रय लिया था। दुर्योधन को इसकी भनक लग जाती है। दुर्योधन विराट नगर पर आक्रमण कर देता है। उस युद्ध में कर्ण के छोटे भाई शोण की मृत्यु हो जाती है। दुर्योधन और उसकी सेना की हार होती है। पांडवों का अज्ञातवास भी खत्म हो जाता है और कौरवों और पांडवों में युद्ध की घोषणा भी हो जाती है। युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व कृष्ण शांति का प्रस्ताव लेकर आते हैं लेकिन दुर्योधन इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है।

कृष्ण कर्ण को उसके जन्म की कथा बताते हैं और तब उसे ज्ञात होता है कि उसकी माता भी कुंती है। कृष्ण उसे पांडवों की तरफ से युद्ध में लड़ने का अनुरोध करते हैं, लेकिन वह मना कर देता है। हस्तिनापुर में युद्ध की तैयारी प्रारंभ हो जाती है। युद्ध का दिन निश्चित कर दिया जाता है और कौरवों की तरफ से सेनापति के चयन की चर्चा प्रारंभ हो जाती है। इसी बीच कुंती कर्ण से मिलने आती है। वह कर्ण को लेने आई थी, लेकिन कर्ण उनके प्रस्ताव को ठुकरा देता है। सेनापति के चयन के क्रम में दुर्योधन ने कर्ण का नाम सुझाया, लेकिन कर्ण ने भीष्म पितामह के नाम का प्रस्ताव दिया और इस प्रकार भीष्म पितामह सेनापति बनाए गए। सेनापति बनते ही उन्होंने अपनी रणनीति दिखानी प्रारंभ कर दी। उन्होंने अर्धरथी बनाकर कर्ण का अपमान किया। कर्ण इस अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सका और उसने घोषणा की कि मैं उनके नेतृत्व में नहीं लड़ूँगा। कर्ण के बिना ही युद्ध आरंभ होता है। इसके बाद लेखक ने युद्ध का वर्णन

किया है, फिर दसवें दिन युद्ध प्रारंभ हुआ। दसवें दिन के युद्ध में पितामह का पतन हुआ। वह मृत्युशैया पर पड़े हुए थे। कर्ण उनसे मिलने जाता है। भीष्म भी उसके जन्म का रहस्य बताते हैं। कर्ण उन्हें बताता है कि यह सत्य मैं पहले सुन चुका हूँ। फिर भीष्म कर्ण से कहते हैं कि तुम्हारी अवहेलना करना मेरा उद्देश्य नहीं था। तुम अर्धरथी नहीं बल्कि महारथियों के महारथी हो, जाओ पांडवों से मिल जाओ। लेकिन कर्ण ने उनके प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया। फिर वह उसे आशीर्वाद देते हैं। इसके पश्चात कर्ण युद्ध में शामिल होता है।

उपन्यास का अंतिम अंश श्री कृष्ण के आत्मकथ्य के रूप में लिखा गया है।

इस अंश में श्री कृष्ण ने महाभारत युद्ध में घटित सभी घटनाओं का सिंहावलोकन करते हुए अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है। उनकी मान्यता है कि युद्ध कभी भी अंतिम सत्य नहीं होता। युद्ध से समस्याओं का हाल भी नहीं निकल पाता। समाज पतन की ओर हो जाता है और सांस्कृतिक बुनियाद भी हिलने लगती है। महाभारत युद्ध के लिए वे स्वयं को जिम्मेदार मानते हैं। वह खुद से प्रश्न करते हैं कि क्यों मैंने इस मृत्यु के महायज्ञ का आरंभ किया। उन्हें हर कदम पर अपनी गलतियाँ दिखाई दे रही थी। अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना, उसका सारथी बनना और शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा भी भंग करना। उनके मन में अनेक उत्तर उठते थे। तब उन्हें समझ में आता है कि उनके समक्ष केवल दो राज सिंहासनों का प्रश्न नहीं था बल्कि संपूर्ण मानव जाति का प्रश्न था।

युद्ध क्षेत्र में कर्ण का पदार्पण द्रोण के नेतृत्व में 11वें दिन हुआ। अर्जुन द्वारा जयद्रथ का वध हुआ। तत्पश्चात् भीम पुत्र घटोत्कच भी मर जाता है। इसी तरह कृष्ण 18 दिन तक के युद्ध के बारे में बताते हैं। इसी क्रम में वृषाली के भाई सत्यसेन की मृत्यु हो जाती है। द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात् कौरवों की सेना का सेनापति कर्ण को बनाया जाता है। दुर्योधन कर्ण को विजय प्राप्त करने को प्रेरित करता है। युद्ध का 17 वां दिन आरंभ होता है। उस दिन घनघोर युद्ध हुआ और अंत में कर्ण और अर्जुन एक-दूसरे के आमने-सामने हुए। अर्जुन ने प्रण किया कि कर्ण का वध किए बिना शिविर में नहीं लौटूँगा। इसी बीच भीम ने भी दुशासन का वध किया। अर्जुन ने भी पूरे पराक्रम से कौरव सेना को पस्त कर दिया।

अर्जुन-कर्ण युद्ध और फिर कर्ण के वध का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन श्री कृष्ण के शब्दों में किया गया है। ब्राह्मण के अभिशाप के कारण उसका रथ दलदल में फंस जाता है और अर्जुन उसका वध कर देते हैं। मरने से पूर्व कर्ण दुर्योधन से अनुरोध करता है कि यह विनाशी युद्ध रोक दो, लेकिन दुर्योधन युद्ध रोकने से इनकार कर देता है और कुछ ही क्षणों में मृत्युंजय महावीर कर्ण का महानिर्वाण हो जाता है। इस प्रकार कौरवों का तीसरा सेनापति भी वीरगति को प्राप्त कर जाता है। कृष्ण कुंती को पांचो पांडवों से छुपा कर कर्ण के अंतिम दर्शन कराते हैं। युद्ध का 18वाँ दिन भी समाप्त हो गया। भीम ने दुर्योधन का वध करके अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। कृष्ण ने

कर्ण के अग्नि संस्कार की तैयारी पहले से कर दी थी। इस घटना का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया गया है। कर्ण के चिता के पास सिर्फ दो लोग थे- श्री कृष्ण और कर्ण का घोड़ा वायुजीत। जैसे ही श्री कृष्ण ने कर्ण के चिता को अग्नि दी, सामने से कर्ण की पत्नी वृषाली आते हुए दिखाई दी। एकदम से वह उसकी चिता में प्रवेश होकर सती हो गई। जैसे ही कृष्ण वापस लौटने लगे सामने से पाँचो पांडव आते हुए दिखे। कृष्ण के मन में यह बात आई कि अब बहुत देर हो चुकी है। इस बिंदु पर आकर उपन्यास समाप्त हो जाता है।

कर्ण के जीवन पर आधारित यह क्लासिक उपन्यास महाभारत के मुख्य पात्रों और तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक संरचना का जीवंत दस्तावेज है। लेखक ने कर्ण के विराट व्यक्तित्व की ओजस्वी, उदार और दिव्य छवि प्रस्तुत की है। पौराणिक कथ्य और सांस्कृतिक चेतना के मध्य संबंधों को पूरी गरिमा के साथ मार्मिक और कलात्मक प्रस्तुति दी है। श्रीकृष्ण सहित महाभारत के मुख्य पात्रों के बीच कर्ण का चरित्र सूर्य की तरह प्रखर है।

भाषा-शैली अद्बितीय है। भाषा अलंकृत है और बिंब तथा उपमाओं का अत्यंत सुंदर तथा औचित्य पूर्ण निरूपण हुआ है। जैसे- कोयल के जन्म का प्रसंग, कुंती के रथ में छठे घोड़े का स्थान रिक्त रहना इत्यादि।

संवाद चुस्त और कथा को गतिशील बनाते हैं।विषय वस्तु पर लेखक की सूक्ष्म पकड़ है। सधी हुई चारित्रिक संकल्पना इस उपन्यास की अनुपम विशेषता है। कर्ण-कुंती की भेंट, इंद्र को कवच-कुंडल का दान और कर्ण की मृत्यु जैसे अनेक हृदय विदारक प्रसंग हैं, जो पाठकों को भाव विह्वल कर देते हैं।

समाज अगर एक धारणा बना लेता है, तो फिर उस छवि से व्यक्ति जीवन भर नहीं निकल पाता। यही कर्ण के जीवन की त्रासदी है। कुंती के जीवन के अनेक अनछुए प्रसंग भी काफी मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। जैसे- पृथा से कुंती बनने का प्रसंग। ज्येष्ठ कौन्तेय के जीवन पर आधारित यह उपन्यास नियति, निराशा और खिन्नता में जिजीविषा तलाशने की अद्‌भुत गाथा है।

डॉक्टर दीपा श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पटना वीमेंस कॉलेज, पटना
मो. : 9523470279, Email : deepa.hindi@patnawomenscollege.in

✧ ✧ ✧

मेरे हिस्से का आसमान

संदीप तोमर

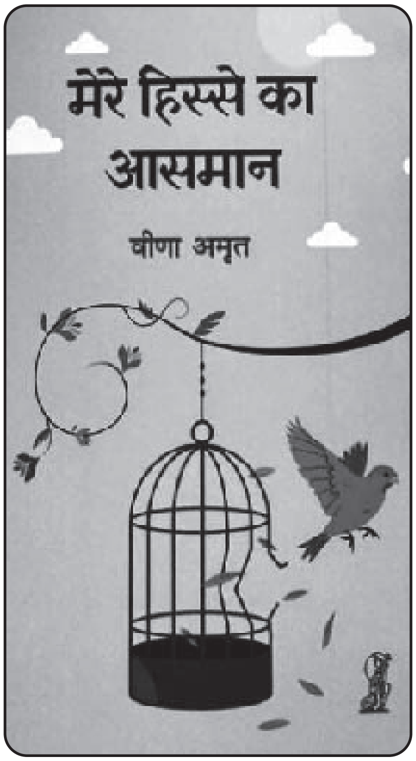

पुस्तक - 'मेरे हिस्से का आसमान'
विधा- काव्य
रचनाकार - वीणा अमृत
प्रकाशन वर्ष - 2025
प्रकाशक- वाणी प्रकाशन, दिल्ली

कविता जब अपने समय से आँख मिलाती है, तब वह केवल सौंदर्य का उपकरण नहीं रहती। वह प्रश्न बन जाती है, हस्तक्षेप बन जाती है और कई बार प्रतिरोध भी। वीणा अमृत का कविता-संग्रह 'मेरे हिस्से का आसमान' इसी अर्थ में एक सजग स्त्री-स्वर की दस्तावेजी यात्रा है, जो निजी अनुभव से चलकर सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक धरातल तक पहुँचती है। यह संग्रह किसी एक भाव या एक विषय में सीमित नहीं, बल्कि स्त्री-अस्तित्व, प्रेम, पीड़ा, प्रकृति, हिंसा, स्मृति और आत्मबोध के अनेक स्तरों को समेटे हुए है।

इस संग्रह की केन्द्रीय धुरी 'आसमान' है - लेकिन वह रोमानी कल्पना का खुला विस्तार नहीं, बल्कि अधिकार की माँग है। 'मेरे हिस्से का आसमान' शीर्षक कविता में कवयित्री प्रेम के भीतर भी अपनी स्वतंत्रता की शर्त रखती है -

''पास रहना पर तनिक दूर
बचा देना मेरा 'मैं'।''

यह पंक्ति केवल प्रेम-संबंधों की नहीं, बल्कि स्त्री की समूची सामाजिक स्थिति पर टिप्पणी है, जहाँ निकटता अक्सर स्वामित्व में बदल दी जाती है। यहाँ प्रेम समर्पण है, विलय नहीं।

वीणा अमृत की कविताओं की एक बड़ी शक्ति उनका स्पष्ट और निर्भीक कथ्य है। 'लड़की', 'न्याय', 'राख', 'यातना', 'ओ

पुरुष!' जैसी कविताएँ किसी प्रतीकात्मक धुँध में नहीं जाती हैं, वे सीधी बात कहती हैं- लगभग घोषणात्मक स्वर में। 'न्याय' कविता विशेष रूप से ध्यान खींचती है, जहाँ बलात्कार के बाद की सामाजिक और मीडिया-निर्मित हिंसा को कवयित्री बिना किसी अलंकरण के उजागर करती हैं। यहाँ कविता करुणा नहीं, बेचैनी पैदा करती है- और यही उसका उद्देश्य भी है।

वीणा अमृत का कविता-संग्रह 'मेरे हिस्से का आसमान' एक ऐसा दस्तावेज है, जहाँ प्रेम, पीड़ा, प्रकृति, स्मृति और प्रतिरोध एक-दूसरे से अलग नहीं, बल्कि एक ही संवेदनात्मक प्रवाह के अंग हैं। यह संग्रह भावुक आत्मकथ्य नहीं, बल्कि आत्मबोध की वह प्रक्रिया है, जिसमें कवयित्री अपने समय और समाज से निरंतर संवाद करती चलती है।

संग्रह की कविता 'मुक्ति' इस यात्रा का संकेत दे देती है-

"अपने अस्तित्व का फैलाव नहीं
सिकुड़न चाहती हूँ
निस्सीम आकाश-सा विस्तार लिए
चाहती हूँ शून्य हो जाना"

यहाँ मुक्ति किसी विजय-घोषणा की तरह नहीं आती, बल्कि थकान, बोध और आत्मस्वीकृति के साथ उपस्थित होती है। 'फैलाव' के स्थान पर 'सिकुड़न' की कामना, आधुनिक स्त्री की उस स्थिति को रेखांकित करती है जहाँ अधिक होना ही हमेशा समाधान नहीं होता।

संग्रह की 'मेरे हिस्से का आसमान' शीर्षक कविता प्रेम की परिभाषा को पुनः लिखती है-

"प्रेम करना मुझसे
वैसे ही
जैसे
छप्पर को सँभालते दूर-दूर के खम्भे
छोड़ देना थोड़ा-सा आसमान मेरे हिस्से का"

यहाँ प्रेम निकटता के साथ दूरी की शर्त पर टिका है। यह कविता स्त्री की स्वतंत्र सत्ता की माँग है, जहाँ 'मैं' को बचा रहना है। यह आग्रह प्रेम-विरोधी नहीं, बल्कि प्रेम को मानवीय और नैतिक बनाए रखने की शर्त है।

संग्रह का एक सशक्त पक्ष स्त्री के विरुद्ध हिंसा और सामाजिक पाखंड पर कवयित्री की स्पष्ट दृष्टि है। 'लड़की' कविता में यह स्वर तीखा और असुविधाजनक हो उठता है -

"लड़की
तू कहीं न बचेगी
न कोख में, न बीज में,"

यह कविता किसी एक घटना पर प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि उस सभ्यता पर प्रश्न है, जहाँ स्त्री का अस्तित्व ही संकट में है। इसी क्रम में 'न्याय' कविता व्यवस्था की निर्ममता को उजागर करती है -

"फिर होगा मानसिक बलात्कार

न्याय शब्दों के जखीरे तुम पर लादे जायेंगे"

यहाँ न्याय एक प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक और यातना बनकर सामने आता है। कविता पाठक को राहत नहीं देती, बल्कि असहज करती है और यही इसकी सफलता है।

प्रकृति इस संग्रह में करुण पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि चेतावनी देती हुई सत्ता है। 'निर्माण' कविता में प्रकृति स्वयं बोलती है -

"मुझे
डुबाने की साजिशें और चालाकियाँ तुम्हारी
ले डूबेंगी तुम्हें ही एक दिन"

यह कविता पर्यावरणीय संकट को नैतिक संकट में बदल देती है, जहाँ मनुष्य का विनाश उसकी ही करतूतों का परिणाम है।

इसके समानान्तर संग्रह में गहरे आत्मसंवादी क्षण भी हैं। 'हिसाब' कविता प्रिय की अनुपस्थिति को जीवन के गणित में बदल देती है -

"सबकुछ मेरा है
पृथ्वी मेरी, आसमान मेरा
बस तुम नहीं इसमें"

यह पंक्ति प्रेम की रिक्तता को बिना किसी आलंकारिक आवरण के सामने रख देती है।

वीणा अमृत की भाषा सहज, भावप्रधान और संप्रेषणीय है। कहीं-कहीं कथन का विस्तार कविता को घोषणात्मक बना देता है, पर अधिकांश स्थानों पर भाव की सच्चाई इस अतिरिक्तता को स्वीकार्य बना लेती है। उनके यहाँ प्रेम भी है -

"मैं तुमसे प्रेम करती हूँ
और तुम मुझे
बावजूद इसके
मैं तुमसे प्रेम करती हूँ"
और आत्मस्वीकृति भी
"तुमसे अलगाव में ही मेरा विस्तार है"

हालाँकि यह संग्रह केवल प्रतिरोध की आवाज नहीं है। इसमें एक गहरा आन्तरिक, आत्मसंवादी स्वर भी मौजूद है। 'मुक्ति', 'पीड़ा', 'हिसाब', 'अकेलापन', 'साँसे' जैसी कविताएँ

अस्तित्वगत प्रश्नों से जूझती हैं। 'हिसाब' कविता किसी प्रिय की अनुपस्थिति का मर्सिया है, जो शोर नहीं करता, भीतर-भीतर रिसता है। वहीं 'मुक्ति' कविता में शून्य होने की चाह, विस्तार से नहीं बल्कि सिकुड़न से मुक्ति पाने की इच्छा-कवयित्री की दार्शनिक संवेदना को रेखांकित करती है।

प्रकृति इस संग्रह में मात्र पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि सक्रिय पात्र की तरह उपस्थित है। 'निर्माण', 'बाढ़', 'विनाश की ओर', 'जमीन' जैसी कविताओं में मनुष्य और प्रकृति का संघर्ष स्पष्ट है। 'निर्माण' में प्रकृति स्वयं बोलती है और यह स्वर चेतावनी का है। यहाँ पर्यावरण-चिन्ता उपदेश नहीं बनती, बल्कि कविता की नैसर्गिक भाषा में ढल जाती है।

भाषा की दृष्टि से वीणा अमृत की कविताओं में बिम्ब कहीं-कहीं बहुत प्रभावशाली हैं- जैसे "छप्पर को सँभालते दूर-दूर के खम्भे" या "नाभि पर खिले ब्रह्मकमल-सा अनायास तुम्हें पा लिया था।" हालाँकि कुछ कविताओं में भाव की तीव्रता के कारण कथन थोड़ा लम्बा या दोहराव-ग्रस्त भी हो जाता है, जहाँ संपादन की गुंजाइश दिखती है। फिर भी यह दोष नहीं, बल्कि एक भावुक रचनाकार की स्वाभाविक अतिरिक्तता कही जा सकती है।

महत्वपूर्ण यह है कि 'मेरे हिस्से का आसमान' किसी कृत्रिम साहित्यिक चतुराई का परिणाम नहीं लगता। यह संग्रह जिया हुआ, भुगता हुआ और ईमानदारी से लिखा हुआ है। स्त्री-अनुभव यहाँ न तो करुणा-उत्पादक वस्तु है, न ही वैचारिक नारा- वह एक जीवित चेतना है, जो प्रेम भी करती है, प्रश्न भी उठाती है और आवश्यकता पड़ने पर प्रतिरोध भी।

कुल मिलाकर, वीणा अमृत का यह कविता-संग्रह समकालीन हिन्दी कविता में एक संवेदनशील, सजग और प्रतिबद्ध स्त्री-स्वर की उपस्थिति दर्ज करता है। यह संग्रह पाठक से केवल सहानुभूति नहीं, सहभागिता चाहता है- और शायद यही इसकी सबसे बड़ी सफलता है।

कुल मिलाकर 'मेरे हिस्से का आसमान' स्त्री की निजी पीड़ा से शुरू होकर सामूहिक विवेक तक पहुँचने वाला संग्रह है। यह कविता को सौंदर्य की वस्तु नहीं, चेतना का माध्यम मानता है। यह संग्रह पाठक से सहमति नहीं, सहभागिता चाहता है- और शायद यही इसका सबसे बड़ा साहित्यिक मूल्य है।

सन्दीप तोमर, (आलोचक, कथाकार), नई दिल्ली- 110059

✧ ✧ ✧

ये कैसा अपराध

सुधा गोयल

महाराज ने एक उड़ती-सी नजर बाहर शस्त्रहीन खड़े अपने सैनिकों पर डाली। अंगरक्षक भी भय से कांप रहे थे। उनके हाथों की थरथराहट बता रही थी कि उनकी भुजाओं का बल ऋषि के क्रोध के सम्मुख साथ छोड़ चुका है। वह एकदम अकेले पड़ गए हैं। उन्हें अफसोस हुआ कि ऐसे तपस्वियों को राज्य संरक्षण देकर इतना शक्तिशाली बनाना स्वयं के लिए घातक हुआ है। वे इन तपस्वियों के आगे लाचार हो गए हैं। कहाँ यह आश्रम तपश्चार्या के साथ-साथ राजपुत्रों के लिए शस्त्र संचालन सीखने, शास्त्र पठन-पाठन के मुख्य केंद्र हैं। नवीनतम आधुनिक शस्त्रों का निर्माण भी यहीं होता है लेकिन यही क्या एक दिन राजा के विरुद्ध शस्त्र उठकर खड़े हो जाएंगे? कितने कृतघ्नी और कपटी है ये, लेकिन इस समय वह क्या करें? क्षमा माँग कर ही इस स्थिति से उबरा जा सकता है। महाराज और भी विनीत हो उठे- 'क्षमा करें ऋषिवर, अज्ञानता बस मेरी पुत्री द्वारा किए गए अपराध के लिए मुझे और मेरी पुत्री को क्षमा करें या ऐसा कोई उपाय बताएँ, जिससे आपका क्रोध शांत हो सके।

राजकुमारी सुकन्या पालकी के चारों ओर टंगे पर्दों को बार-बार उठाकर बाहर देखती। उसका कौतूहल था कि समाप्त होने को नहीं आ रहा था। अपने जन्म से यौवन की सीढ़ी चढ़ने तक उसने महज राजभवन, राजोद्धान, मखमल के गद्दे व राजसी वैभव के अलावा कुछ और नहीं देखा था।

ऊँचे-ऊँचे पहाड़, पहाड़ों की गोद में दुग्ध धवल से झरते झरने, पेड़-पौधें, तरह-तरह के पुष्प, घुमड़ते मेघ, खुला आकाश, धूल भरी सड़कें, पशु-पक्षी, नदी का मनोरम किनारा, कल-कल बहता जल और मुनियों के बड़े-बड़े आश्रम देखकर वह चहक रही है। अहा! ये सब कितना सुखद और आह्लादित है। आँखों ही आँखों में प्राकृतिक सुषमा को बटोरती हुई सुकन्या का मन था कि पालकी से उतर जाए और स्वयं पैदल हरियाली पर चलकर इस प्रकृति का आंनद ले।

लेकिन पिता महाराज शर्याति इसे कभी सहन नहीं करेंगे कि उनकी पुत्री राजकुमारी सुकन्या साधारण सैनिकों और भृत्यों के साथ पैदल चले। महाराज के स्वभाव से वह भली प्रकार परिचित हैं। तभी महज सखियों के साथ ही हंस बोलकर आह्लादित हो रही है। पिता महाराज के साथ तीर्थाटन को आना कितना सुखकर है।

तभी एकाएक महाराज शर्याति की आज्ञा से काफिला रुका। पड़ाव डाला गया। नर्मदा नदी का जल कल-कल करता बह रहा था। नदी के किनारे फलदार और छायादार वृक्ष लगे थे। हरी मखमली दूब दूर-दूर तक फैली थी। घोड़ों, खच्चरों तथा हाथियों के लिए यहाँ पर्याप्त खाद्य सामाग्री प्रकृति ने ही उपलब्ध करा रखी थी। दूर किसी ऋषि का तपोवन भी दृष्टि में आ रहा था। महाराज को यह स्थान सब प्रकार से उचित लगा।

पहले महाराज ने नदी में स्नान किया, पूजा अर्चना की, इसके बाद राजकीय परिवार के अन्य लोगों ने, तत्पश्चात पद क्रमानुसार अन्य लोगों ने स्नान किया। सुकन्या पहली बार नदी में स्नान कर रही थी। कहाँ राजोद्धान का सरोवर, कहाँ नदी का स्नान-दोनों में समानता ही कहाँ है।

महाराज व महारानी जब स्नान ध्यान और भोजन से निवृत्त हो आराम करने के लिए अपनी-अपनी शिविकाओं में चले गए तब राजकुमारी सुकन्या अपनी सखियों के साथ घूमने निकल गई।

वह फल फूल पत्तों को छूकर सूंघकर देखती, तितलियों को पकड़ती चपल हिरनी-सी वहाँ पहुँची जहाँ एक मिट्टी के टीले पर दो शाल्मली के वृक्ष उगे थे। उन वृक्षों से हिरण अपनी पीठ सहला रहे थे तथा मिट्टी के ढूह से लाल-लाल दो प्रकाश बिंदु चमक रहे थे। कोतूहल हुआ सुकन्या को। सखियों के साथ ढूह के निकट आ गई तथा गौर से देखने लगी एक सखी ने टोका-

'राजकुमारी सुकन्या आप इतने ध्यान से क्या देख रही हैं?'
'तुम भी देखो अलका यह कैसे अजीब से दो प्रकाश बिंदु है'।

सखियों ने ध्यान से देखा तभी सुषमा ने कहा- 'राजकुमारी जी यहाँ से चलें। वनों के रहस्य बड़े विकट होते हैं। यह सब की समझ में नहीं आते। क्या पता कोई दुरात्मा ही हो। सुना है वनो में निशाचर रहते हैं'।

'तुम ठीक कह रही हो सुषमा मुझे इन प्रकाश बिंदुओं से भय लग रहा है'- अलका ने कहा।

'इस निर्जन में दूर-दूर तक हमारे अलावा कोई अन्य दिखाई नहीं दे रहा। हम घूमते-घूमते शिविकाओं को काफी पीछे छोड़ आए हैं'- सुषमा ने कहा।

'संभव है महाराज को हमारे इधर आने की सूचना ही ना हो'- मुक्ता ने कहा।

'हमने महाराज से आज्ञा ही कब ली थी। यदि महाराज को मालूम होता तो क्या इस प्रकार अकेले घूम सकते थे। सैनिक, अंग-रक्षक, दास-दासियाँ साथ न होते'।

सभी सखियाँ आपस में एक-दूसरे से बोलती बतियाती सघन वृक्षों की छाया में बैठ गई और राजकुमारी सुकन्या ने जिज्ञासा बस वहीं से एक तिनका उठा प्रकाश बिंदुओं को कुरेद दिया।

उन प्रकाश बिंदुओं का कुरेदा जाना था कि उनसे रक्त प्रवाह होने लगा। राजकुमारी सुकन्या यह देख भयभीत हो सखियों के साथ अपने शिविर में लौट आई।

लौटकर राजकुमारी अपनी शय्या पर लेट गई। आँखें मूंद कर उन प्रकाश बिंदुओं के बारे में सोचने लगी। क्या सचमुच वह कोई रहस्य था या कोई जीव जंतु? लौटे हुए अभी-अभी कुछ पल ही बीते थे कि तूफान आ गया। मेघ गरजने लगे, बिजली कड़कने लगी, तेज हवाओं के साथ अंधड़ चलने लगा, पहाड़ टूट-टूट कर गिरने लगे, शिविकाएँ वायु वेग के कारण हिलने-डूलने लगीं। अचानक आए इस तूफान से भगदड़ मच गई। हाथी-घोड़े जो खुले मैदान में वृक्षों से बंधे थे उन्हीं वृक्षों के गिर जाने से आहत हो गए। जो खुले मैदान में घास चरने के बाद आराम से बैठे जुगाली कर रहे थे, उठकर इधर-उधर भागने लगे। एक चीख पुकार-सी मच गई। दास-दासियाँ एक-दूसरे पर गिरती पड़ती शिविकाओं से बाहर निकल आई। तभी सुकन्या ने देखा कि सारा राजसी पड़ाव सैकड़ों कोपीन धारी साधुओं से घिरा है। उनके हाथों में दंड है। युद्ध में काम आने वाले शस्त्र हैं। वे कठोर सावधान की मुद्रा में खड़े हैं। उनके तन क्रोध से कांप रहे हैं। आँखें लाल अंगारों की तरह है। बढ़े हुए केश, नंगे बदन पुष्ट देह, यह देखकर सुकन्या सहम उठी।

यह सब कौन है और क्या चाहते हैं क्या हम सबको बंदी बनाने आए हैं? लेकिन क्यों? बिना उनकी अनुमति के पिता महाराज ने यहाँ रुक कर कोई अन्याय किया है या यह सब जंगली लुटेरे हैं? सब के असावधान हो आराम करने पर यह आक्रमण कर देना चाहते हैं। अपने सैनिक तो ऐसे अचानक आए तूफान से अपने आप को उबार भी ना पाए होंगे की इन लोगों के बीच घिर गए लगते हैं।

जंगली लुटेरे सोच कर वह भय से कांप उठी। कहाँ पूछे? लड़कियाँ और शाही परिवार की महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार की कल्पना मात्र से उसका शरीर कांप उठा। उसने अपनी शीविका से अंदर झांकने का प्रयास किया। कोई कहीं भी नजर नहीं आया। उधर तूफान का वेग अपनी गति पर था।

उसने आवाज लगाकर परिचारिका को बुलाना चाहा लेकिन इतने शोरगुल और आतंक के कारण उसकी आवाज कंठ से बाहर निकल न सकी। उठने की कोशिश में लगा जैसे उसका शरीर बेजान हो गया है। फिर भी उसने अपने हिम्मत को समेट वस्त्रों में छुपे आपात अस्त्र को टटोलकर देखा। फिर अपने वस्त्र ठीक किये। अकेले ही महाराज की शिविका की ओर जाने का मन बनाया।

लेकिन आगे बढ़ते कदम फिर रुक गए। क्या अकेले इस समय महाराज की तरफ जाना उचित होगा? क्या यह लोग उसे वहाँ जाने देंगे या रास्ते में ही रोक कर उसके साथ? पता नहीं दोस्त है या दुश्मन। बिना विचार किये कोई कदम उठाना उचित नहीं है। क्या पता उसकी उपस्थिति महाराज के लिए कोई अन्य संकट ही न उपस्थित कर दे। क्या महाराज इतने

असावधान होंगे कि उन्हें इन लोगों ने आसानी से बंदी बना लिया होगा। कभी भी उनकी नजर हमारी शिविकाओं की ओर भी पड़ सकती है। प्राकृतिक तूफान को टालना तो महाराज के लिए संभव नहीं है। उसने छुप-छुप कर सावधान रहकर शिविकाओं के ही अंतः मार्ग से पिता महाराज की शिविका की ओर प्रस्थान किया।

उधर महाराज शर्याति अपने रथों पालकियों घोड़ा और हाथियों को नष्ट होते असहाय से देख रहे थे और सोच रहे थे कि यहाँ नदी किनारे ऐसा निरापद स्थान कहाँ होगा जहाँ इस प्राकृतिक आपदा के रहते राहत पाई जा सके। हालांकि सैनिक व अंगरक्षक इस विपत्ति में भी महाराज की शिविका को घेरे सावधान की मुद्रा में खड़े थे। अन्य सैनिक पालकियों रथों तथा पशुओं की सुरक्षा में लगे थे। तभी शिविर के बाहर से गुरु गंभीर वाणी सुनाई दी। कोई महाराज को पुकार कर चेतावनी दे रहा था।

'राजा शर्याति तेरी मूर्खा पुत्री के कारण ही यह तूफान आया है।'

अपनी पुत्री का नाम सुनकर महाराज और महाराज के शिविर में पर्दे के पीछे छुपी खड़ी सुकन्या दोनों एक साथ चौंक उठे। मुख्य द्वार से महाराज के इशारे से पर्दा हटा दिया गया। दोनों की दृष्टि एक साथ बाहर द्वार पर पड़ी। एक कृश बदन हड्डियों का ढाँचा मात्र मिट्टी में पेड़ के पत्तों से लिपटा जर्जर वृद्ध तपस्वी खड़ा है। उसकी आँखों से लहू बह रहा है। वह देखने में बड़ा वीभत्स लग रहा है।

'मेरी पुत्री इस तूफान का कारण कैसे हैं? आप कौन हैं? कृपया अपना परिचय दें। यदि मेरी पुत्री द्वारा आपको जानबूझकर का अकारण सताया गया है तो अवश्य उसे दंडित किया जाएगा। हे महा तपस्वी आपके नेत्रों से रुधिर क्यों बह रहा है?'

'राजन में ऋषि च्यवन हूँ। इस तपोवन में काफी समय से तप कर रहा हूँ। तुम्हारी बेटी ने तपस्या रत मेरी आँखें फोड़ कर मुझे शारीरिक कष्ट ही नहीं दिया बल्कि मेरी तपस्या में विघ्न डाला है।'

'क्षमा कीजिए ऋषिवर, अपना क्रोध शांत कीजिए। पुत्री सुकन्या से अनजाने में ही हुआ होगा। वह आपके नेत्र क्यों फोड़ेगी? वह तो किसी भी जीव को कष्ट में नहीं देख सकती।'

'महाराज यह आपका न्याय नहीं पुत्री स्नेह बोल रहा है। आप क्या न्याय करेंगे न्याय तो हम करेंगे। जरा उठकर अपने शिविका से बाहर झांकिए। आपका समस्त पड़ाव हमारे शिष्यों द्वारा घेरा जा चुका है। ये शिष्य अपने गुरु के अपमान का बदला लेने के लिए तत्पर हैं। आपकी शिविकाओं को चुटकी में मसल देंगे। आपके शाही परिवार की महिलाओं को बंदी बनाकर ले जाएंगे। आपके सैनिक मेरे शिष्यों से घिरकर पहले ही अपने शस्त्र डाल चुके हैं। यहाँ आपका नहीं मेरा शासन चलता है'- च्यवन ऋषि क्रोध में पांव पटकने लगे।

पर्दे के पीछे खड़ी राजकुमारी सुकन्या कांप उठी। क्या सखी अलका और सुषमा ने ठीक कहा था। वनों के रहस्य बड़े विकट होते हैं। वह दो प्रकाश बिंदु इस तपस्या की आँखें कैसे हो सकती हैं? वह तो मिट्टी का एक ढेर मात्र था। उसपर तो वृक्ष भी उगे थे, जिससे हिरण अपनी पीठ सहला रहे थे। उसे स्मरण हो आया कि कुछ लुटेरे ढोंग करके शरीर पर मिट्टी लपेटे पेड़ के पत्ते बांध मिट्टी के ढ़ेर में छिपे पड़े रहते हैं। किसी अकेली स्त्री को पकड़ उसका बलात् अपहरण कर लेते हैं। कहीं उसके खिलाफ भी तो ऐसी कोई साजिश नहीं।

महाराज को भय दिखा कर पूरे पड़ाव को अपने शिष्यों द्वारा घिरवा कर यह दुष्ट व्यक्ति क्या चाहता है। यह व्यक्ति तपस्वी तो बिल्कुल भी नहीं लगा। तपस्वी मुनीजन क्रोध नहीं करते। क्षमा करते हैं। वे शीलवान और धैर्यवान होते हैं। उसका मन हुआ कि दरबान से इस व्यक्ति को धक्के लगवा कर निकलवा दे लेकिन पिता महाराज अपनी पुत्री पर लगाए गए आरोप को सुनकर भी विनीत क्यों है, उनका हाथ अब तक अपने खड़ग् पर क्यों नहीं गया? जिस दुष्ट व्यक्ति ने अपनी गंदी जवान से उनकी बेटी का नाम लिया है, उसका सिर अभी तक जमीन पर क्यों नहीं गिर पड़ा? क्रोधावेश में उसका हाथ अंतः वस्त्रों में छुपी कटार पर गया कि वहीं इस नाचीज का गला काट दे जो उसके पिता महाराज का अपमान कर रहा है।

तभी उसके विवेक ने ललकारा क्या पिता महाराज के न्याय तथा स्नेह पर उसका विश्वास उठ गया है? महाराज के होते हुए उसे दंड देने का अधिकार कहाँ है? पिता महाराज के न्याय क्षेत्र में किसी भी आत्मीय परिजन का प्रवेश निषेध है। किसी प्रकार अपने क्रोध को संयत करते हुए वह आगे की कार्यवाही देखने लगी।

महाराज ने एक उड़ती-सी नजर बाहर शस्त्रहीन खड़े अपने सैनिकों पर डाली। अंगरक्षक भी भय से कांप रहे थे। उनके हाथों की थरथराहट बता रही थी कि उनकी भुजाओं का बल ऋषि के क्रोध के सम्मुख साथ छोड़ चुका है। वह एकदम अकेले पड़ गए हैं। उन्हें अफसोस हुआ कि ऐसे तपस्वियों को राज्य संरक्षण देकर इतना शक्तिशाली बनाना स्वयं के लिए घातक हुआ है। वे इन तपस्वियों के आगे लाचार हो गए हैं। कहाँ यह आश्रम तपश्चार्या के साथ-साथ राजपुत्रों के लिए शास्त्र संचालन सीखने, शास्त्र पठन-पाठन के मुख्य केंद्र हैं। नवीनतम आधुनिक शस्त्रों का निर्माण भी यहीं होता है लेकिन यही क्या एक दिन राजा के विरुद्ध शस्त्र उठकर खड़े हो जाएंगे? कितने कृतघ्नी और कपटी है ये, लेकिन इस समय वह क्या करें? क्षमा माँग कर ही इस स्थिति से उबरा जा सकता है। महाराज और भी विनीत हो उठे- 'क्षमा करें ऋषिवर, अज्ञानता बस मेरी पुत्री द्वारा किए गए अपराध के लिए मुझे और मेरी पुत्री को क्षमा करें या ऐसा कोई उपाय बताएँ जिससे आपका क्रोध शांत हो सके मैं अभी राजवैद्य को बुलाकर आपके उपचार की व्यवस्था करता हूँ'- पाँव पकड़ लिए महाराज ने।

'नहीं महाराज मैं अपनी तपस्या में विघ्न डालने वाले को क्षमा नहीं कर सकता'- क्रोधित हो उठे ऋषि।

आप आज्ञा दें ऋषिवर, मेरी बेटी को कैसा दंड देना चाहते हैं, जिससे आपका क्रोध शांत हो सके। राजकीय परिवार का कोई भी व्यक्ति प्रजा के हित से बड़ा नहीं है। राजाओं ने हमेशा प्रजा हित में अपने स्वार्थ की आहुति दी है। आप आज्ञा करिए।

'दंड स्वरूप मुझे आपकी पुत्री चाहिए वरना आप देख ही रहे हैं'.....।

धमकी भरी आवाज महाराज के कानों में गूंजी। राजकुमारी सुकन्या और महाराज दोनों ने एक साथ ऋषि की बात सुनी। दोनों की मानसिक अवस्था लगभग एक-सी हो गई। लगा-जैसे कानों में गर्म शीशा पिघला कर उड़ेल दिया हो। एक बार को महाराज के चेहरे पर क्रोध के भाव आए। होंठ फड़के लेकिन तत्काल परिस्थिति वश शांत हो गए और बोले-

'ऋषिवर क्या इस दंड के विषय में आपने भली प्रकार सोच लिया है? एक बार पुनः विचार कर देखें'।

'हमें विचार करने के लिए कह रहे हैं महाराज। हम बिना विचारे कुछ भी नहीं करते। राज कन्या की तो बात ही क्या हमारे मात्र एक इशारे पर समस्त राजपरिवार की महिलाएँ उठा ली जाएगी। इस समय आप हमारे बंदी हैं'।

'एक राजा को इस प्रकार विवश करना कैसा तपोबल है आपका? कैसी तपस्या है? धिक्कार है ऐसे साधु वेश को जो बलात् स्त्रियों पर अधिकार करता है। यह तपोवन नहीं रहा राहजनी के अड्डे हैं। मैं इन सबको नष्ट कर दूंगा'- महाराज को भी क्रोध आ गया।

'एक बंदी को इतना क्रोध शोभा नहीं देता महाराज। आप अपने राज्य तक सकुशल पहुँच पाएंगे तभी तो......' और तभी ऋषि के सैकड़ो दंडधारी शिष्यों ने शिविका में प्रवेश कर महाराज को घेर लिया।

अपने पिता महाराज का अपमान और उनकी विवशता पहली बार राजकुमारी सुकन्या ने अनुभव की। उसने समझ लिया कि राज्य की वेदी पर उसके बलिदान का वक्त आ गया है। पिता के सिर को वह झुकने नहीं देगी। उसके कारण यदि राज्य बचता है तो पिता और राज्य के लिए हँसते-हँसते अपना बलिदान कर देगी। दुष्ट तपस्वी होकर भी नारी देह के प्रति ऐसी आसक्ति रखते हैं। पाखंडी और ढोंगी है। जमीन पर थूक दिया। मन ही मन कुछ निश्चय किया और पर्दा हटाकर ऋषि च्यवन के सम्मुख उपस्थित हो गई।

'मैंने आपकी शर्त और दंड दोनों सुन लिए हैं। ऋषिवर मैं प्रस्तुत हूँ। अपराध मैंने किया है तो प्रायश्चित भी मुझे को करना चाहिए, लेकिन मेरी भी एक शर्त है मुझे ग्रहण करने के बाद आप समस्त प्रजा परिजन तथा पिता महाराज को ससम्मान सकुशल अपने इस तपोवन से जाने देंगे'।

ऋषि चौंक कर कुछ पल अपलक राजकुमारी सुकन्या को देखते रहे फिर मुस्कुरा कर बोले- 'महाराज आपसे ज्यादा समझदार आपकी पुत्री है। मुझे आपकी पुत्री की शर्त स्वीकार है'।

एक ही इशारे से समस्त ऋषि शिष्य शिविका से बाहर हो गए। तूफान धीरे-धीरे थमने लगा। सभी ने जैसे राहत की सांस ली लेकिन महाराज विकल हो उठे- 'सुकन्या बेटी तूने यह क्या कह दिया मेरे लिए अपना मोह छोड़ दिया। तू इन सब के बीच कैसे रह पाएगी?'

'पिता महाराज, अभी-अभी आपने कहा कि राजधर्म और प्रजाहित पर राजा के स्वार्थ बलिदान होते रहे हैं। मुझे आपकी बात रखने का एक अवसर मिला है। आशीर्वाद दीजिए कि आपकी बेटी में राजधर्म पर उत्सर्ग होने की भावना कम न हो। राजधर्म के लिए मैं हर जन्म में आपकी पुत्री बनूं।' महाराज ने उसे उठकर छाती से लगा लिया और अधीर हो उठे-

'मुझे तुझ पर गर्व है बेटी। तुझ जैसी बेटी पाकर कौन पिता धन्य ना होगा लेकिन मेरा कलेजा फटा जा रहा है।'

'आप धैर्य धारण करें पिता महाराज, मेरा मोह छोड़ प्रस्थान की तैयारी कीजिए। आपका गंतव्य ही मेरा अभीष्ट है'।

महाराज इशारा समझ गए उन्होंने सैनिकों को पड़ाव उठाने का आदेश दिया तब तक सब कुछ शांत हो चुका था।

पड़ाव उठ गए। सैनिकों के साथ महाराज ने प्रस्थान किया। वह अधीर हो पुत्री की ओर देख रहे थे। माताएँ शोक की प्रतिमाएँ बनी बैठी थीं। कहीं कोई शोर नहीं था। मात्र कदमों की खामोश पदचाप, ऋषियों के साथ एकाकी खड़ी राजकुमारी सुकन्या सुन रही थी। पूरा काफिला पदाघात से उड़ती धूल के गुब्बार में ढक गया। जब तक ध्वनि सुनाई देती रही, पदचाप गूंजती रही, सुकन्या देखती रही मौन शांत अविचल। जैसे ही काफिला आँखों से ओझल हुआ ऋषि च्यवन ने पुकारा- 'तुम्हारी शर्त पूरी हुई राजकुमारी सुकन्या अब हम भी प्रस्थान करें।'

लेकिन यह क्या खून से लथपथ राजकुमारी सुकन्या की देह ही वहाँ पड़ी थी। अपनी कटार छाती में भोंक कर उसने राजधर्म पर अपना उत्सर्ग कर दिया था।

सुधा गोयल, 290-ए, कृष्णा नगर, डॉ. दत्ता लेन, बुलंद शहर - 203001
मो. : 9917869962, ई-मेल : sudhagoyal0404@gmail.com

✧ ✧ ✧

अल्पना मिश्र के उपन्यास में समाज

प्रो. अमिता तिवारी

एक ओर राजनीतिक सामाजिक यथार्थ है तो दूसरी ओर इनारा, पलाश चंदा पिंकी आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से उस नारी समाज की दारुण स्थिति को दर्शाता है, जो उसे जलालत भरी जिंदगी जीने को मजबूर दिखाई देती है। आज हमारे समाचारपत्र, टी.वी. समाचार अनेक ऐसी इनाराओ और पलाश की कहानियाँ सुनाते और दिखाते रहते हैं। यह हमारे समाज का कड़वा सच है, जिसे लेखिका ने यथावत अपने उपन्यास में लिख दिया है। यह लेखिका का साहस है कि ऐसे मुद्दों को अपने उपन्यास में उठाया हैं, जिनके पीछे अनेक कुख्यात अपराधी और गिरोह काम कर रहे हैं। मानवीय तस्करी का धंधा आज हमारे समाज में जोर-जोर से चल रहा है चाहे वह स्त्रियों की तस्करी हो या बच्चों की; हमारे नेता, हमारी सरकार, हमारी पुलिस इसकी मूक दर्शक बनी निस्सहाय दिखाई देती हैं। इन सब असहज स्थितियों के प्रति लेखिका प्रश्न करती है और बड़ी बेबाकी से उनकी बात कहते हुए उनकी पोल भी खोलती है।

अल्पना मिश्र हिंदी साहित्य की अत्यंत चर्चित लेखिका हैं। उनका पारिवारिक परिवेश साहित्यिक था। नौ वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी पहली कविता लिखी थी, जो उनके अनुभव पर आधारित थी। वे एक ऐसी लेखिका हैं, जिनका साहित्य बहुआयामी है। उन्होंने समाज के सभी वर्गों; चाहे वह हमारे समाज का निरीह वर्ग हो, दलित वर्ग हो या सत्ता धारी वर्ग हो सब पर खुल कर लिखा है। वे अपने साहित्य में सामाजिक परिवर्तन और विकास की बात करती हैं। अल्पना जी का लेखन जमीन से जुड़ा हुआ लेखन हैं। वे अपने साहित्य में मानवीय संवेदनाओं की बात करती हैं। स्त्री विमर्श के संदर्भ में भी उनकी एक नई दृष्टि हैं। उन्होंने स्त्री को एक वस्तु के रूप में न देखकर एक मानवीय सत्ता के रूप में देखा है। उनका स्त्री विमर्श उस स्त्री विमर्श के खर्चे में फिट नहीं होता जो केवल देह से मुक्ति की बात करता है। स्वच्छंदता के नाम उच्छृंखलता की बात करता है। उनका स्त्री विमर्श बनी बनाई परिपाटी पर नहीं चलता बल्कि स्त्री की गहरी चेतना मानवीय संवेदना को लेकर चलता है।

अल्पना मिश्र का 'अस्थिफूल' उपन्यास झारखंड की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। यह वह कड़वा सच है, जिससे हम परिचित नहीं है। आज हमारा समाज अत्यंत अमानवीय होता जा रहा, दया, करुणा, प्रेम जैसे मूल्य हमारे जीवन से निकलते जा रहे हैं।

आज का मनुष्य मशीन की तरह भावना शून्य होने साथ ही क्रूर और निर्मम भी होता जा रहा है। अल्पना मिश्र ने अपने साहित्य में इसी निर्मम समाज और मनुष्य की वास्तविक तस्वीर खींची है।

कालजयी रचना वही होती हैं, जो अपने अंदर अपने समय के इतिहास और सच को समेटे रहती है। किसी भी देश का साहित्य वहाँ जनता की स्थिति, संस्कृति और मनोवृत्ति को प्रकट करता है। श्रेष्ठ साहित्यकार वही होता है, जो अपने समय के दलित, पीड़ित, शोषित, वंचितों की आवाज अपने साहित्य में बुलंद करता है। अल्पना मिश्र के उपन्यास "अस्थिफूल" में उन्होंने अपने समय के पीड़ितों, शोषितों और वंचित परिवारों की कहानी कही है। इसमें समाज का वह क्रूर सच है, जो मानवीयता का अचल तार-तार कर देता है। 'अस्थिफूल 'उपन्यास की मुख्य कथा झारखंड के आदिवासियों की है। परन्तु इसके साथ ही भारतीय समाज की स्त्रियों के प्रति जो घृणित मानसिकता है, उसे भी इस उपन्यास में व्यक्त किया गया है।

वास्तव में इस उपन्यास के कथानक का कैनवास अत्यंत व्यापक है। एक ओर इसमें झारखंड के आदिवासियों के प्राकृतिक संसाधनों, उनके प्राकृतिक जीवन का वर्णन है। लाचार आदिवासी अपने जल-जंगल-जमीन को बचाने के लिए कैसे संघर्ष करते हैं, कैसे अपनी जान की कुर्बानी देने के बाद भी अपनी धरती की रक्षा नहीं कर पाते, वहाँ के दोगले चरित्र वाले नेता कैसे उन्हें धोखा देते हैं, यह भी उपन्यास में दिखाया गया है। अगर आजादी के पचहत्तर साल बाद झारखंड की जनता इतनी बदहाली और लाचारी का जीवन जी रही तो उसका कारण वहाँ के राजनेता और उनसे जुड़े समाज के ठेकेदार है, जो विकास के नाम पर जनता का शोषण करते हैं। लेखिका कहती है - "झारखंड को बने डेढ़ दशक से ज्यादा हो गया - इस दौरान कई सरकारे आई और गई लेकिन झारखंड की जनता वही की वही ठहरी हुई है - जंगल के पेड़ के किसी ठूंठ की तरह। अलग राज्य के नाम पर झारखंड सत्ता का नया केंद्र जरूर बन गया लेकिन इसका मकसद क्या? क्या यह अपने मकसद को हासिल करने की तरफ बढ़ पाया? अगर नहीं तो इसका एकमात्र कारण लगता है कि अब इसका मकसद जनता का विकास नहीं बल्कि राजनेता, अधिकारियों और ठेकेदारों के गठजोड़ को मजबूत कर यहाँ की लूट को आसान करना है "। [1]

यह हमारे समाज की कितनी बड़ी बिडम्बना है कि आज के इस दौर में जहाँ संकीर्णता के सारे संबंध टूट गए है; वही समाज का एक वर्ग ऐसा भी है, जहाँ स्त्रियों को गाजर मूली की तरह बेचा और खरीदा जाता है। बिडम्बना यह है कि इन स्त्रियों को बेचने वाला भी पुरुष है और खरीदने वाला भी पुरुष, शोषण करने वाला भी पुरुष है और जहालत की दलदल में धकेलने वाला भी पुरुष है। लड़की को बेचने से न तो माँ उसे बचा पाती हैं और न ही सास के रूप में स्त्री उस दूसरी स्त्री के प्रति हो रही हैवानियत को रोक पाती है। झारखंड से खरीदकर लाई जाने वाली लड़कियों को कही कामवाली, कही घरवाली के रूप में रखा जाता है; पर उनकी हैसियत और उनका स्थान एक बंधुआ मजदूर की तरह ही रहता है, उन्हें केवल मारपीट, दुत्कार ही मिलती है, कहीं-कहीं तो भरपेट खाना भी नहीं मिलता। ये स्त्रियाँ पुरुषों के मन बहलाने का साधन और बच्चे पैदा करने की मशीन बनकर रह जाती हैं। हमारा समाज आज भी कितना क्रूर और

अमानवीय है कि यदि उसे पता चलता है कि स्त्री की कोख में लड़की है तो उसे गर्भ में ही मार दिया जाता है। कितनी बड़ी बिडम्बना है कि यह सब किसी दूर दराज के गाँव या इलाके में नहीं हो रहा बल्कि यह सब भारत की राजधानी दिल्ली और उसके आसपास के इलाकों में हो रहा है। यह उपन्यास केवल एक उपन्यास नहीं है बल्कि अपने समय का प्रामाणिक दस्तावेज है।

यह उपन्यास केवल एक उपन्यास नहीं है बल्कि अपने समय का प्रामाणिक दस्तावेज है। इस उपन्यास की रचना प्रक्रिया के बारे में अल्पना जी ने एक साक्षात्कार में बताया कि जब वे हरियाणा के एक कॉलेज में भाषण देने के लिए गई थीं तो वहाँ पर उपस्थित कुछ लड़कियों ने उनसे मिलकर अपने जीवन की भयावह तस्वीर उन्हें दिखाई और अल्पना जी ने इस उपन्यास के माध्यम से पूरे समाज को यह तस्वीर हमें दिखाई।

आज हमारा समाज जितना आधुनिक, सभ्य और शिक्षित हुआ है उतना ही बर्बर भी हो गया है। पढ़े-लिखे पति-पत्नी काम करवाने के लिए ब्यूरो से जिन लड़कियों को लाते हैं, उनके साथ वे कितना अमानवीय और बर्बर व्यवहार करते हैं, यह इस उपन्यास मे बखूबी देखा जा सकता है। लड़कियों के साथ जिस बर्बर व्यवहार की बात उपन्यास में की गई है; वह कोई कोरी कल्पना नहीं बल्कि हमारे समाज का प्रामाणिक सच है।

उपन्यास की पात्र संतोष इनारा से अपना दुख व्यक्त करते हुए कहती हैं - सोचो कि क्यों नहीं हो पाता हरियाणा में महिलाओं के खिलाफ कोई आंदोलन। जब-जब कोई जघन्य कांड होता है, तब बहुत शोर मचता है- आदमी लोग उसमें भी अपना ही लाभ देखते हैं - राजनीति करते हैं, औरतों के हिस्से कुछ न आ पाता। पिछले दिनों हिसार में कैसे भयानक कांड हुए - किस बेरहमी से बलात्कार हुए - फिर बाद में क्या हुआ? दो बहनों को बलात्कार के बाद मार कर, पेड़ पर लटका दिया था, दिल्ली तक हल्ला मचा, लगा था कि इस बार दबंगों की खैर नहीं - पाँच साल की बच्ची को रेप के बाद किस बेदर्दी से मारा, एक से एक भयानक कहानियाँ हैं, याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं मगर फिर एक और कांड - फिर एक और - हम तो हरियाणा को देख पाते हैं मगर पूरा देश ही ऐसे कांड से पटा पड़ा है। न जाने कौन-सी संस्कृति है इस देश की जो औरतों को इतना रौंदती है - औरतों की हत्यारिन संस्कृति! कैसे हम इस पर गर्व करें ।[2]

अल्पना मिश्र ने अपने इस उपन्यास में स्त्रियों के मन की पीड़ा उनके जीवन संघर्ष और उनकी दयनीय स्थितियों का चित्रण किया है। इनारा, पलाश आदि ऐसी स्त्रियाँ हैं, जो उस समाज का प्रतिनिधित्व करती है, जो जलालत भरी जिंदगी को जी रही हैं। जिंदगी जी क्या रही है; उस भयावह प्रताड़ना को सह रही है। इनारा अपने मन का दुख इन शब्दों में व्यक्त करती है - "हॉरी संतोष, जंगल में जानवरों से डर लगता है, शहर में आदमियों से। यहाँ आदमी औरत को मानुष नहीं समझते। जब तक औरत अपनी जमीन पर है अपने जंगल के साथ है तब तक मानुष है, तब तक लड़ने की ताकत है उसमें, लेकिन वही औरत शहर में आकर सिर्फ जिस्म बनकर रह जाती है। औरत जंगल में अपनी लड़ाई लड़ने के लिए खड़ी हो जाती है, हम तीर धनुष उठा लेते है भाला और गाँव चला लेते है, लेकिन शहर? शहर हमारी कब्रगाह है - इतनी मजबूत हैं यहाँ की

कैद कि इसमें से निकलना मुश्किल। कैसे निकले? जूझते-जूझते ही खत्म हो जाते हैं।"[3]

वास्तव में आज हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति उस बकरे की तरह है, जिसकी गर्दन धीरे-धीरे रेत कर काटी जाती है- "इनारा हमारा हाल किए जा रहे बकरे जैसा है, जिसकी गर्दन धीरे-धीरे रेती जाती है जो अपने ही खून में नहाया पड़ा होता है और मौत के बाद भी जिसकी धड़कन चल रही होती है। सहम कहाँ गए बहिन अपनी जमीन से उखाड़ पाखंड कर।" [4]

यह उपन्यास केवल स्त्रियों की खरीदफरोख्त तक ही सीमित नहीं है बल्कि आज की दोगली राजनीति, दोगले राजनेताओं के चरित्र को भी बेनकाब करता है। आदिवासी दलित, वंचित, शोषित लोगों की बात करके उन्हें ऊपर उठाने के बहाने राजनेता अपना ही उल्लू सीधा करते हैं। लोगों को बहकाने दंगे करवाना घोटाला करना। लाचार आदिवासी अपने जल जंगल जमीन आज के नेताओं का मुख्य काम है। चुनाव जनता से काम करने, विकास करने के बहाने जीतते हैं और जीतने के बाद उसी जनता का अनेक तरीकों से स्वयं शोषण करते हैं।

एक ओर राजनीतिक सामाजिक यथार्थ है तो दूसरी ओर इनारा, पलाश, चंदा, पिंकी आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से उस नारी समाज की दारुण स्थिति को दर्शाता है, जो उसे जलालत भरी जिंदगी जीने को मजबूर दिखाई देती है। आज हमारे समाचारपत्र, टी.वी., समाचार अनेक ऐसी इनाराओ और पलाश की कहानियाँ सुनाते और दिखाते रहते हैं। यह हमारे समाज का कड़वा सच है, जिसे लेखिका ने यथावत अपने उपन्यास में लिख दिया है। यह लेखिका का साहस है कि उन्होंने ऐसे मुद्दों को अपने उपन्यास में उठाया है, जिनके पीछे अनेक कुख्यात अपराधी और गिरोह काम कर रहे हैं। मानवीय तस्करी का धंधा आज हमारे समाज में जोर-जोर से चल रहा है चाहे वह स्त्रियों की तस्करी हो या बच्चों की; हमारे नेता, हमारी सरकार, हमारी पुलिस इसकी मूक दर्शक बनी निस्सहाय दिखाई देती हैं। इन सब असहज स्थितियों के प्रति लेखिका प्रश्न करती है और बड़ी बेबाकी से उनकी बात कहते हुए उनकी पोल भी खोलती है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है वास्तव में आज के समाज की इन स्थितियों को (मानवीय तस्करी, स्त्रियों और बच्चों की खरीद फरोख्त, कामवाली का शोषण) देखना हो, तो 'अस्थि फूल' उपन्यास इसका एक सार्थक दस्तावेज है। लेखिका के वर्णन की धार इतनी तेज है कि वह हमारे हृदय को झकझोरते हुए हमारी सोई हुई चेतना को चीर कर जगा देती है और उस दर्द और पीड़ा का अहसास कराती है, जो हमारा समाज भोग रहा है। इसके साथ ही वे हमारी सोई हुई चेतना को झकझोर कर उस शोषण और पीड़ा से उन्हें मुक्त कराने के लिए हमें प्रेरित भी करती हैं।

गरीबी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है। तुलसीराम ने भी रामचरितमानस में सब दुखों में सबसे बड़ा दुख गरीबी को माना है। रामचरितमानस के उत्तरकांड में कहते है -

नहि दरिद्र सम दुख कोउ दूना

इसी गरीबी के कारण झारखंड के लोग कुछ पैसों के लिए अपने अन्य बच्चों की परवरिश के लिए अपनी बेटियों को बेच देते हैं। सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि अपने ही देश के दूसरे राज्यों के लोग उन लड़कियों को गाय भैंस की तरह खरीद कर लाते हैं और उनके साथ पशुवत् आचरण करते हैं। उन लड़कियों को घर के सभी दायित्वों का निर्वाह करना होता है, जो घर की बहू करती है उसे एक नहीं कई पुरुषों की पत्नी बनकर रहना पडता है पर उस घर में न तो उसे बहू का अधिकार मिलता है और न ही पत्नी का प्यार। वह घर का काम करने वाली नौकरानी और बच्चे पैदा करने वाली मशीन बनकर रह जाती है।

इस उपन्यास में लेखिका ने आदिवासी समाज की आर्थिक विपन्नता, गरीबी और भूख से मरते निरीह लोगों का चित्रण किया है। इनारा याद करती है कैसे उसके पिता पैसों के अभाव में उसकी माँ की लाश पीठ पर लाद कर ले जाते हैं "माँ की यादों में घिरे घिरे उसने साफ देखा कि यहाँ यानि कुंडू काका के घर में जो चीज सबसे खास थी, वह थी दो वक्त की रोटी। उसके गाँव में क्या था? अकाल, भूख, गरीबी! गर्मियों में महुआ के बचे लट्ठे खाकर दोपहर को पूरे कपड़े और रात में मॉड पीकर, घुटने पेट में मोड़ कर सो रहना। न पहनने को पूरे कपड़े हो पाते न जाड़े में सबको ऊनी कम्बल पूरा हो पाता - जंगल में घूमते तो लकड़ी और घास पत्ते और टहनियों से ज्यादा खाने की चीजे खोजते - बेर या चिमगोइयाँ, कालीनबैगनी छोटी मोती जैसी रसभरी जंगली बेर - घास फूस के बीच उगी"[5]

इस उपन्यास में लेखिका ने आदिवासी समाज के लोकजीवन के साथ ही आज के सामाजिक, राजनीतिक जीवन का भी उद्घाटन किया है। लेखिका का लक्ष्य अन्याय, असमानता, अत्याचार और तानाशाही व्यवस्था का विरोध, स्त्रियों, आदिवासियों और बालिकाओं के प्रति हो रहे अन्याय को समाप्त कर उन्हें उनके अधिकारों को दिलवाना है।

इस उपन्यास में लेखिका ने आज के क्रूर भयावह और बर्बर यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। आज हमारा कितना क्रूर निरंकुश और खूँखार हो गया है, यह इस उपन्यास का प्रत्येक शब्द बयां करता है। कई बार तो ऐसा लगता है कि कोई भी व्यक्ति इतना जानवर कैसे बन सकता है पर यह सच है कि आज हमारा समाज स्त्रियों के प्रति ऐसा ही बर्बर है चाहे वह किसी भी उम्र की लड़की हो या बूढ़ी स्त्री हो खूँखार व्यक्ति उसके साथ बलात्कार करने, उसका शोषण करने से नहीं चूकता।

अल्पना जी का यह उपन्यास आज के दौर में हो रहे सभी घटनाओं को अपने में समेटे हुए है। आज हमारे देश का एक वर्ग ऐसा है, जो स्त्रियों को केवल वस्तु मात्र समझता है और यदि कोई स्त्री उनके बनाए गए पिंजरे से बाहर निकल कर खुली हवा में साँस लेना चाहती हैं या किसी से प्रेम करती है तो उसे रातोंरात पेड़ की टहनी पर लटका दिया जाता है। उसके नाम मौत का फतवा जारी कर दिया जाता है। दुख की बात यह कि ये फरमान जारी करने वाले, उसे पेड़ से लटकाने वाले उसके अपने ही पिता और भाई होते हैं। खाप पंचायतों का यह कार्य उस "इतिहास की गवाही देता - मनुष्य की क्रूरताओं की गवाही देता - सारी संस्कृति, सभ्यता, कला और धर्म पर नासूर धब्बे की तरह चिपक गया था।"[6]

इस उपन्यास में लेखिका ने बदलते समाज बदलती स्त्री अस्मिता और बदलती जनता को भी दिखाया है। आज स्त्रियों की चेतना बदल रही है। अपने प्रति हो रहे अन्याय का विरोध करना आज की स्त्रियों ने सीख लिया है। ऐसी बदलती स्त्री चेतना का प्रतिनिधित्व उपन्यास की पात्र संतोष करती है। अपनी बचपन की सहेली पूजा की हत्या के बाद वह एक नई संतोष के रूप में उभरती है। अब वह "निर्णय लेती - हिम्मत धरती - लाल आँखों से चिनगारियाँ फेंकती - खाप पंचायत के निर्णय पर प्रश्न चिह्न लगाती - पुलिस में एफ आई आर दर्ज करती - एक बिल्कुल दूसरी संतोष थी। "7 संतोष के आवाहन पर जब हजारों औरतें अपने घरों से निकल कर आंदोलन में शामिल हो जाती है और चौधरी पुलिस वालों को गोली चलाने का आदेश देता है, तो संतोष कहती है - "हम औरतें अग्नि पाखी है चौधरी जी। यहाँ अपनी हीराखंड से जनम लेती हैं। हमें जला कर राख में बदल दिया जाएगा, लेकिन लेकिन हमें राख में बदल कर खत्म मान लेने वालों, जान लो कि राख में हमेशा अधूरे रह गए सपनों की आग छिपी रहती है। दुनिया की कोई राख बिना आग की संभावना के नहीं होती। राख का होना, कभी भी खत्म हो जाना नहीं होता। वह बुझती है, मिटती नहीं।[8]

अल्पना जी ने इस उपन्यास में आज के समाज की बदलती संस्कृति का चित्रण तो किया ही है साथ ही लुप्त होती भारतीय संस्कृति और समाप्त होती हुई भाषाओं के प्रति भी चिंता व्यक्त की है। भाषा किसी भी देश की अस्मिता की पहचान होती हैं। जब हमारी भाषा मरती है तो हमारी संस्कृति पर भी संकट आता है। सुजान मेहता विद्यार्थियों के दल को संबोधित करते हुए कहते हैं - "भाषा का मरना केवल एक भाषा का खत्म होना भर नहीं होता साथियों। एक भाषा मरती है तो एक तहजीब मर जाती हैं - जिंदगी जीने का एक तरीका मर जाता है - सोचने विचारने का एक लहजा मर जाता है - दुनिया में तुम्हारी कहानी सुनाने वाले कलाबाज झूठे - बेमानी हो जाते हैं - झूठे पड़ जाते है - तुम्हारा साहित्य चूर-चूर हो जाता है, तुम्हारा संगीत बिखर कर धरती की छाती में समा जाता है।[9]

इस उपन्यास का शिल्प अनूठा है। लेखिका ने अपने आसपास की घटनाओं को एकत्र कर जो कहानी बुनी है, उसमें रिपोर्टिंग की सर्जनात्मकता दिखाई देती हैं। जंगल, गाँव, शहर के हर कोने की कोई न कोई घटना उपन्यास में है पर सभी घटनाओं में कहीं न कहीं एकसूत्रता है। उपन्यास पढ़ते समय कहीं- कहीं ऐसा लगता है कि पात्रों के स्थान पर लेखिका ही भाषण दे रही है पर ऐसी स्थितियाँ उपन्यास की माँग है वह बात जो लेखिका कहना चाहती है, वह उसी रूप में कही जा सकती थी। इस उपन्यास को किसी एक विमर्श या वाद के खाँचे में फिट नहीं किया जा सकता। यह उपन्यास आज के समाज का उपन्यास है, जो अपने समय के सच और यथार्थ और इतिहास को समग्रता से व्यक्त करता है।

"अक्षि मंच पर सौ सौ बिम्ब" अल्पना मिश्र का अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। यह उपन्यास तमाम भौतिकताओं से ग्रस्त है। इसकी मुख्य पात्र नीली। उपन्यास की कथा नीली के

इर्द-गिर्द ही घूमती है। उसकी चार बहनें है। यह मध्यवर्गीय परिवार की कहानी है, जहाँ पुत्र की लालसा ने चार लड़कियों के जन्म दिया हैं। इस उपन्यास में ऐसे पिता का वर्णन है, जो अपनी सब लड़कियों को लड़कों की तरह ही पढ़ाते लिखाते है; उन्हें समाज से लड़ने की सीख देते हैं। लेखिका ने इस उपन्यास मे भारत के उस समाज का वर्णन किया है, जो बदल रहा है। आज पिता लड़के-लड़कियों में भेदभाव नहीं करते। वे अपनी सभी लड़कियों को पढ़ाते लिखाते है। उन्हें उनके पैरे पर खड़ा करना चाहते हैं। श्यामा की विदाई के समय कहते हैं - "बेटा, अपने को अकेला मत समझना। तुम्हारा घर है ये। मैं इस बात को नहीं मानता कि विवाह के बाद लड़कियों का अपने मायके पर अधिकार नहीं रहता। तुम्हारा पहले जैसा ही अधिकार है और सदा रहेगा। इसलिए जब ठीक न लगे, घर आ जाना। "अब तो दूसरी ओर लड़कियाँ भी अपने माता-पिता के प्रति अपना दायित्व समझ रही है। वे अपने माता-पिता का अंतिम संस्कार में स्वयं बेटों के समानार्थी है जहाँ माता-पिता के अंतिम संस्कार का हक केवल बेटों तक सीमित था। वह अब बेटियों के हिस्से में आ रहा है और हमारा समाज धीरे-धीरे इसे स्वीकार कर रहा है।

यह उपन्यास ऐसी स्त्री की कहानी जो एक बीमारी से ग्रस्त हैं। नीली स्लीपर्स पैरालिसस की बीमारी से ग्रस्त है और अपनी रंगहीन बीमार आँखों से बाहरी दुनिया की कूटनीतियों, चालाकियों और आडम्बरों से जूझती हुई दिखाई देती है। नीली एक ऐसी लड़की जो सामाजिक परम्पराओं का डटकर विरोध करती इसीलिए वह अपने पिता के अंतिम संस्कार के लिए लड़ाई करती हैं और वह संस्कार करती हैं। नीली पिता के संस्कार के माध्यम से समाज की जड़ताओं को तोड़नेवाले प्रण करती है। पिता का अंतिम संस्कार करने के बाद उसे अपने ही बहनों और परिवार के अन्य सदस्यों का विरोध झेलना पड़ता है उसे विरोध ही नहीं झेलना पड़ता बल्कि स्थान-स्थान पर परिवार के सदस्यों की उपेक्षा भी झेलनी पड़ती हैं, अपमानित होना पड़ता है। अपनी ही बहनें सोचती हैं, वह कितनी जल्दी यहाँ से चली जाए। नीली एक बेटे की तरह अपना दायित्व निभाती हैं। वह अपने पिता के दिए हुए संस्कारों के अनुसार जीती है। नीली के प्रति उसकी बहनों की नफरत, हिकारत के पीछे संपत्ति का विवाद है। बहनें आधुनिक होने का ढोंग तो करती हैं, पर उनकी मानसिकता घोर सामंती है। नीली इसी सामंती जड़ता को तोड़ने का प्रयास करती है।

इस उपन्यास में लव जेहाद के प्रश्न को भी दिखाया गया है। वर्तमान भारत में सबसे बड़ी समस्या सोशल मीडिया और उसके प्रभाव से बच्चों का प्रभावित होना है। आज के माता-पिता के विरोध को ही अपनी प्रगति मानते हैं। कुछ माता-पिता ऐसे भी हैं, जो बच्चों की परेशानियों को समझते भी नहीं है। हमें अपने बच्चों को समझना चाहिए।

नैना की बेटी जब मुस्लिम लड़के से संबंध स्थापित करती है और अन्नपूर्णा उसे उस लड़के से बात करने के लिए मना करती है, तो नाना कहती है "क्यों तुम लोग पीछे पड़े हो मेरे। मैं मॉल नहीं जा सकती न - हरदम मेरे ऊपर निगरानी रखती हो - पापा को क्या जरूरत थी मॉल में आने की क्यों तुम चुपके-चुपके मेरा मोबाइल चेक करती हो भाग जाऊँगी मैं - घर छोड़ दूँगी मर

जाऊँगी-"। अन्नपूर्णा जब उसे कोसने लगती हैं तो नीली कहती है - "क्या कह रही हो अन्नू। तुम्हारे बराबर नहीं है वो। उससे माँ की तरह पेश आओ और क्या हुआ जो नैना किसी दोस्त से मिल ली? मॉल में बुला लिया - क्यों जरा सीमांत पर तूल दे रही हो।"? [11]

यह उपन्यास धर्म के उस घेरे को तोड़ने की बात करता है, जो मनुष्य को दूर करता है और मानवीय संवेदना को समाप्त कर रहा है। माधोपुरा का राजनीतिक परिवेश के माध्यम से भारतीय राजनीति की पोल खोलता है। यह उपन्यास हमारे समाज का यथार्थ है। यह वह यथार्थ, जो अत्यंत भयानक पर सच है। एक स्त्री दुनिया बदलना चाहती है। उसकी आँखों के बिम्ब अपार अर्थात् हर व्यक्ति अपनी आँखों से अपनी दुनिया देखता है। यह उपन्यास मध्य वर्ग की यातनाओं को बड़ी बेदरदी से उधेड़ता है। लेखिका अपनी हर संवेदना व्यक्त करती है। इस उपन्यास में पारिवारिक संबंधों पर बात की गई, जो एक-दूसरे को अनेक प्रकार से यातनाएँ देता है। चाहे वह माँ हो या बहनें हो सब एक-दूसरे को यातनाएँ देती रहती हैं। इस उपन्यास में धार्मिक कट्टरता को तोड़ने की बात भी की है।

ग्रामीण सौंदर्य की अभिव्यक्ति है। लेखिका ने ग्रामीण परिवेश का एक बिम्ब प्रस्तुत किया है, जहाँ अपनी समृद्धि का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें गाँव का वह दृश्य है, जहाँ श्यामा की शादी में गहनों का प्रदर्शन होता है और उसकी रक्षकों लिए गनर लगाएँ जाते हैं - डाल का सामान लगाया गया। महंगी साड़ियाँ थी, सिंदूरदान का खूबसूरत केस था और थे बड़े से पीतल के थाल में गहने - एक थाल मोती से भरा तो सुना था एक थाल यहाँ सोने से भरा था, पुराने जमाने के मोटे भारी-भारी गहने थाल में जगमगा रहे थे। हार, झुमके, नकबेसर से लेकर माँग टीका, बाजूबन्द, कमरबन्द जैसे हजार चमचमाते सितारे थाल में रोशनी बिखेर रहे थे।" [12]

दूसरी ओर वह बिम्ब है, जहाँ पिता की खुद्दारी है। पिता की खुद्दारी उनका प्रगतिशील आधुनिक व्यक्ति का चरित्र है। एक ओर पुरानी धारणाओं में बंधा समाज है तो दूसरी ओर बदलते समाज की आधुनिक मानसिकता का भी वर्णन है। श्यामा की शादी के समय जब उसके ससुराल वाले गहनों की प्रदर्शनी लगाते हैं और नगर उनकी रक्षकों लिए तैनात रहते तों उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता। उनके आदर्शों और सिद्धान्तों पर चोट लगती हैं तो उसका विरोध करते हुए, वे कहते हैं :- "ले जाइए अपना गहना फहना, अपने पास रखिए लेकिन नगर हटाइए। ये शादी है प्रदर्शन नही।" [13]

युवा पीढ़ी के भटकाव को भी दिखाया है। आज का चैटिंग एप के माध्यम से एक-दूसरे से प्रेम का नाटक करते हैं और एक-दूसरे को धोखा देते हैं। चिंटू भैया जब पूछते हैं कि नैना का संपर्क मुसलमान लड़के से कैसे हुआ तब छोटी कहती "कितने पिछडे हैं आप लोग, अरे चैटिंग एप है कई सारे। डाउनलोड करो और जिससे चाहे, जो लड़का लड़की पसन्द आए, उससे बात करो, मन करे बुला लो। चाहो तो अपना नाम पता छुपा सकते हैं, चाहो तो नहीं। फोटो भी होती है। पसन्द आए तो बात कितने भी आगे जा सकती है। जब मर्जी करे, छोड़ दो। आजकल के लड़के-लड़कियों को नया फैशन हैं चैट, मुलाकात की जगहें- उसी में से पायी है शायद।"[14]

आज हमारे समाज में डिजिटल मीडिया के माध्यम से अनेक प्रकार के भ्रम फैल रहे हैं। अनेक लोग एक-दूसरे को धोखा दे रहे हैं। श्यामा की बेटी नैना भी ऐसे ही धोखे का शिकार हो जाती हैं। एक मुसलमान लड़के के प्रेम में पड़ जाती। माता-पिता के मना करने पर भी नहीं मानती। उसकी माँ जब उसे कमरे में बंद करने की बात करती है तो वह कहती है- "कर दो। मैं फाँसी लगा लूँगी-। मर जाऊँगी।"[15]

उपन्यास की भाषा बड़ी सधी हुई है। उपन्यास में अनेक ऐसे वाक्य है जो बड़ी देर तक हमें सालते रहते हैं। जैसे "हिंसा से हिंसा की श्रृंखला बनती है, उसे खत्म नहीं करती "[16]

"प्यार, चाहे कितना लबालब भरा हो, अगर साँस लेने का स्पेस नहीं छोड़ता तो दमघोटू ही साबित होता है। ऐसा दमघोटू प्यार, धन दौलत दे सकता है, पलकों तले निगरानी में रख सकता है, पर जीवन की खुशी नहीं दे सकता।"[17]

"परिस्थितियाँ मनुष्य को गढ़ती है, समझदार बनाती हैं। समझदार होकर मनुष्य परिस्थितियों को गढ़ने लगता है।"[18]

वास्तव में अल्पना मिश्र ने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज के दलित शोषित वंचित समाज की कहानी कही है। हमारे समाज में पुलिस, राजनेता, सत्ता के ठेकेदार कैसे निरीह जनता का शोषण करते। उसे बड़ी गहरी संवेदना के साथ व्यक्त किया है। यही नहीं, बदलते समाज की अपने स्वाभिमान के लिए संघर्ष करती नारी की, सभी की कहानियाँ उनके उपन्यासों में है। आज हमारा राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं सामाजिक और नैतिक दृष्टि से भी कितना पतन हुआ है, इसका चित्रण भी उन्होंने बड़ी जीवन्तता से किया है।

संदर्भ सूची :

1. अस्थि फूल - - अल्पना मिश्र - पृ 281, 2. वही। - पृ206, 3. वही पृ175 , 4. वही 231, 5. वही 122, 6. वही 267, 7. वही 268, 8. वही 270, 9. वही 262, 10. अक्षि मंच पर सौ सौ बिम्ब पृ 51, 11. वही पृ 82, 12. वही पृ 50, 13. वही पृ 50, 14. वही पृ 77, 15. वही 87, 16. वही पृ 132, 17. वही पृ 83, 18. वही पृ 14

प्रोफेसर अमिता तिवारी, जीसस एंड मेरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
घर का पता - F 17/9, सेक्टर-8, रोहिणी, नई दिल्ली -110085
मो. : 9871455224, Email : amitajmc@gmail.com

✧ ✧ ✧

जिंदगी का अनुवाद है आसिफ रोहतासवी की गजलें

डॉ. अमित कुमार मिश्रा

आसिफ रोहतासवी जी की गजलों को पढ़कर एक आश्वस्ति होती है कि उन्होंने समय के यथार्थ को गजल के लिए चुना है। समय जब बुरा है, रक्तरंजित है, तो निश्चित ही गजल में उसका वही रूप उभर कर सामने आएगा। जीवन के संघर्षों को रेखांकित किया गया है, तो जीवन का हर पहलू जिस रूप में है, उसी रूप में गजल में उभर कर सामने आना वाजिब है। एक सुखद अहसास के रूप में यह भी उल्लेखनीय है कि जीवन-यथार्थ की समस्याओं को दिखलाते हुए गजलकार बहुत अधिक निराश नहीं हैं, बल्कि एक आश्वस्ति उनके मन में है। एक अच्छे कल की उम्मीद अभी भी उनके भीतर बाकी है। गजलकार के भीतर एक अच्छे कल की उम्मीद का जीवित होना इस बात का संकेत है कि मानव जीवन जितना भी जटिल हो चुका हो, विषम हो चुका हो लेकिन जीवन के लिए एक नए सवेरे की गुंजाइश दिखाई दे रही है।

हिंदी गजलों ने अपना स्वरूप निश्चित तौर पर उर्दू गजल से ग्रहण किया है लेकिन आज यह उर्दू गजल की छाया मात्र बनकर नहीं रह गई है, इसने अपना स्वयं का वजूद स्थापित कर लिया है। यही कारण है कि आज के समय में हिंदी में अनेक शोधकर्ताओं के द्वारा हिंदी गजल और गजलकारों पर शोध किए जा रहे हैं। हो सकता है किसी जमाने में गजल प्रेमी-प्रेमिका के आमोद-प्रमोद में डूबी गल्प मात्र रही हो लेकिन आधुनिक संदर्भों ने इसे जीवन के यथार्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया। उर्दू गजलें भी जीवन के यथार्थ को प्रतिध्वनित करती हैं। हिंदी गजल तो अन्य साहित्यिक विधाओं से कदम से कदम मिलाकर हर दौर में चलती ही रही है। दुष्यंत कुमार ने जिस खूबसूरती से हिंदी गजल के अस्तित्व को स्थापित किया और गजलों में जीवन की विसंगतियों, राजनीतिक हलचलो, सामाजिक यथार्थ, मसलन संपूर्ण मानव जीवन के प्रतिबिंब को रुपायित किया, वह हिंदी गजल के लिए एक नई लिक बनाने का काम करता है। और निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि दुष्यंत कुमार की परंपरा में अनेक गजलकार समय-समय पर जुड़ते रहें। उसी की एक कड़ी के रूप में मैं आसिफ रोहतासवी को देखता हूँ। वे अपनी गजलों में मानव जीवन के हर पहलू को समेट लेते हैं। आसिफ रोहतासवी भोजपुरी और हिंदी में गजल

लिखते हैं। भोजपुरी में उनकी गजलों का संग्रह 'महक माटी के' (2006 ई.) और 'आसमान बाकी बा' (2008 ई.) प्रकाशित हैं। इन गजल संग्रहों को हिंदी और भोजपुरी जगत में पर्याप्त लोकप्रियता मिली है।

हिंदी में उनकी गजलों का संग्रह 'सफर के दरमियां' 2024 ई. में प्रकाशित हुआ। इससे पहले इस संकलन की अनेक गजलें पत्र-पत्रिकाओं, दैनिक समाचार पत्र आदि में प्रकाशित हुई हैं, जो काफी चर्चित रहीं। 'नया ज्ञानोदय' का बहुचर्चित गजल विशेषांक जब रवींद्र कालिया के संपादन में प्रकाशित हुआ तो उस विशेषांक में भी आसिफ रोहतासवी की गजलें महत्वपूर्ण रूप से प्रकाशित की गईं। प्रसंगवश बतलाता चलूँ कि आसिफ रोहतासवी जी का मूल नाम डॉ. इन्द्र नारायण सिंह है, जो गजल की दुनिया में आसिफ रोहतासवी नाम से चिरपरिचित हैं।

'सफर के दरमियां' संग्रह की गजलों को देखकर यह विश्वास पक्का हो जाता है कि गजलगो ने अपनी जिंदगी के सफर में जो अनुभव किया, उसे ही गजल के रूप में प्रस्तुत करने का काम किया है। गजल लेखन के दौरान वे कल्पनालोक में विचरण करने के स्थान पर यथार्थ की भूमि पर पाँव जमाए रखने में विश्वास रखते हैं। इनकी गजलें जीवन-यथार्थ की जमीन में अपनी जड़े जमाए रहती है। एक गजल में इन्होंने लिखा है,

'गजलें कहते हो आसिफ या
जीवन का अनुवाद किया है' 1

यहाँ उनके संपूर्ण लेखन का परिचय मिल जाता है कि उन्होंने गजल कहने के लिए जीवन के चित्रों को संवेदना के रूप में ग्रहण किया है। मानव जीवन की हर एक संवेदना उनकी गजल की विषयवस्तु बनी है। उनकी गजलों में प्रेम है, उमंग है, जीवन का उत्साह है, प्रकृति का सौंदर्य है, तो मजदूरों के सिसकने की आवाज भी है, कराह भी है। जिंदगी की जद्दोजेहद के लिए लोगों के माथे की शिकन भी है। बिना किसी हिचक के राजनीतिक छलावे का पर्दाफाश है, तो पूंजीवाद की क्रूरता भी है। जीवन का हर एक संदर्भ आपकी गजलों में व्याप्त है। गजलकार स्वयं यह मानकर चलता है कि अगर उसकी शायरी में जीवन की अनुगूँज नहीं हो तो उसका लिखना व्यर्थ है। सिर्फ आमोद-प्रमोद के लिए लिखी गई गजलों को वे सार्थक लेखन नहीं मानते हैं। उनकी अपनी धारणा है कि गजल लिखने का मूल उद्देश्य जीवन के संदर्भों को उभारना है। गजल में मानव के जीवन का कोई पहलू निश्चित रूप से उजागर होना चाहिए यही इसकी सार्थकता है। आपने लिखा है,

'नहीं जिन्दगी हो अगर शायरी में
तो फिर कैसे 'आसिफ' को शायर कहोगे।' 2

मैंने ऊपर आसिफ साहब की गजलों को दुष्यंत कुमार की परंपरा की गजलें कहा, तो इसका यह कारण नहीं है कि मुझे यह कहना अच्छा लगा इसलिए मैंने कह दिया या मेरे मन में आया तो कह दिया। वास्तव में उनकी गजलों में मैंने वही धार देखी, वही बेचैनी देखी, जीवन के प्रति वही प्रतिबद्धता देखी, इसलिए मैंने ऐसा कहा। मेरे इस लेख का मूल उद्देश्य तुलनात्मक अध्ययन नहीं

है अन्यथा मैं अनेक संदर्भों को उद्धृत कर अपनी बातों का प्रमाण प्रस्तुत कर सकता था लेकिन उदाहरण के तौर पर मैं एक-आध पक्ष तो यहाँ रख ही सकता हूँ। दुष्यंत कुमार का प्रसिद्ध शेर है,

'यहां दरख्तों के साए में धूप लगती है
यहाँ से कहीं और चलो उम्र भर के लिए।' 3
अब इसी के साथ आसिफ रोहतासवी का एक शेर देखिए,
'दूर जलते शहर से कहीं ले चलो
दम घुटा जा रहा है, कहीं ले चलो' या
'अब तो बढ़ते हुए काँपते हैं कदम
हम जहाँ से चले थे, वहीं ले चलो।' 4

मानव जीवन के अनेक रूप, जीवन की अनेक दशाएँ आपकी गजलों में उभर कर सामने आयी हैं। मैं एक प्रयास भर कर रहा हूँ कि उसमें से कुछ तस्वीरों को परिचयात्मक रूप में यहाँ उभार सकूँ।

आजादी के बाद से आज तक भारत की राजनीति में सत्ता पर काबिज तंत्रों और प्रशासकों ने जनता पर अत्याचार करना, उसके अधिकारों का हनन करना अपना अधिकार समझा है। क्या ही ख्वाब थे आजादी के दिनों में लोगों की आँखों में, कि जब अपना शासन होगा, अपने लोग होंगे तो जनजीवन खुशहाल हो उठेगा। लेकिन इन सपनों से मोहभंग की स्थिति आजादी के पन्द्रह-बीस वर्षों के बाद ही उत्पन्न हो गयी। शासन के द्वारा पूंजीपतियों का विकास किया गया और आम लोगों को निर्ममता से रौंदा गया, कुचला गया। भले ही शासन-प्रशासन की निगाह आम लोगों की कराह पर न गई हो। उनके कान में करुणा के शब्द नहीं उतरे हों लेकिन साहित्य यहाँ आम जीवन के विश्वास पर खड़ा उतरता रहा है और वह पूरी प्रतिबद्धता के साथ जनजीवन की वास्तविक स्थिति को दिखलाता रहा है। सत्ता की मनमरजी के खिलाफ आसिफ रोहतासवी की गजलें निर्भीक खड़ी दिखती हैं। उन्होंने सत्ता की वास्तविकता को उजागर करने में कोई हिचक महसूस नहीं की।

यह तथ्य किसी से छुपा नहीं है कि बाढ़ और सूखे की स्थिति, जनजीवन को जितना त्रस्त नहीं करती है उससे ज्यादा त्रस्त उसपर की जाने वाली राजनीति करती है। जनजीवन को सुविधा मुहैया कराने के लिए लाखों-करोड़ों का फंड सरकारी कोष से निकलता है और उस फंड का बंदरबांट सरकार और प्रशासन के तंत्र मिलकर आपस में कर लेते हैं,

'बाढ़-सुखे की कहाँ औकात थी
कुल सियासत से तबाही हो गई' 5

पहले भारत में राजशाही तंत्र था जहाँ जनता उपेक्षित थी और शासक एवं उसका परिवार प्रधान हुआ करता था। बीच में विदेशी आततायियों के अत्याचारों को भी जनता को ही अपने सीने पर झेलना पड़ा। आजादी के दिनों में लोकतंत्र का नारा बुलंद हुआ। गणतंत्र की मिठास लोगों

के बीच प्रचारित की गई। खूब जोर-शोर से प्रचार-प्रसार हुआ कि भारत में लोकतंत्र का राज्य स्थापित होगा। लोकतंत्र में जो तंत्र काम कर रहा होगा वह लोक (जनता) के द्वारा निर्मित होगा और लोक के लिए काम करेगा लेकिन यह सब राजनैतिक भुलावा मात्र बनकर रह गया। जनता को मीठे-मीठे वादों में बहलाया गया और राजनीति अपनी कुचक्र की चालें निश्चिंत होकर चलती रही। हर पार्टी में नेताओं के संतान बिना कुछ किए पिता के उत्तराधिकारी हो जाते हैं। कुर्सी के अधिकारी हो जाते हैं। जनता कल भी दो वक्त की रोटी के लिए एड़ियाँ घिसती थी; आज भी घिस रही है,

'नाम और चोला बदल 'आसिफ' महज
लोकतंतर राजशाही हो गई' 6

लोकतंत्र में बस 'लोक' ही जनता का रह गया है, 'तंत्र' तो पुश्तैनी रूप से शासक वर्ग के हाथों में ही रहा। शासक वर्ग को तंत्र अपने बाप-दादा से विरासत में मिलता रहा। विरासत की कुर्सी पर बैठकर शासन करने वाले अपने मद में उन्मत्त हो जनता पर शासन चलाते रहें, कुर्सी की खातिर मारामारी करते रहें। नेता कुर्सी के लिए दंगे करवा सकते हैं, गोलियाँ चलवा सकते हैं, उनको अपनी कुर्सी से मतलब है। पक्ष और विपक्ष की राजनीति इतनी गंदी हो चली है कि दूसरे को नीचा दिखाने के लिए यह किसी हद तक जा सकते हैं। इनके लिए जनता कीड़े-मकोड़े से ज्यादा नहीं, जिसे ये जब चाहे मसल सकते हैं। इनके लिए जनता शतरंज की विसात पर बिछाये हुए मोहरे की तरह है, जिसे ये अपने अनुसार चलाते हैं और अपनी राजनीतिक रोटी सेंकते हैं। चुनावी वर्ष में एक बार, जब चुनाव का समय आता है तब ये जनता के सन्मुख रोते हैं, गिड़गिड़ाते हैं। जनता की सुख-सुविधा के वायदे किए जाते हैं और जीतने पर अपनी कुर्सी पर बैठकर जनता के हक की रोटी तक चुराकर अपनी तिजोरी भर लेते हैं। राजनेता सिर्फ पूंजीपतियों की खुशामद करते हैं। इस दशा को जनता समझती है, महसूस करती है लेकिन जनता के पक्ष में खड़े होकर निर्भीकता से इन चीजों पर लिखना हर किसी के बूते की बात नहीं है। वही लिख पाता है; जिसे शासन से भय नहीं हो, लोभ नहीं हो। डर और लालच से मुक्त होकर ही कोई साहित्यकार अपनी कलम धारदार बना पाता है,

'लोक' हमारा, 'तंत्र' तो तेरे बापै का
कुर्सी खातिर मारा-मारी, जिन्दाबाद !
हम से ही भरपूर तिजोरी तेरी है
अपनी होती रोज उधारी, जिन्दाबाद ! 7

राजनीति सदैव जनता को जीवन की उलझनों में उलझाए रखना चाहती है ताकि लोग राजनेताओं से सीधे मुखातिब होकर सवाल पूछने का अवकाश ही न पा सके। भारत में पिछला कई दशक एक सांप्रदायिक उन्माद में बीता है। सरकारें बदलती रहीं, शासन बदलता रहा लेकिन लोक जीवन में कोई बदलाव लक्षित नहीं हुआ। सांप्रदायिक उन्माद को भड़का कर नफरत की

राजनीति करने वाले लोग, शहर और देश को जलाने वाली आग में अपनी रोटी सेंकते रहें। कई बार हालात ऐसे भी होते हैं जब दंगे-फसाद को शासन-प्रशासन ही भड़काते हैं या बढ़ने देते हैं, जिससे उनका राजनीतिक सरोकार सिद्ध हो सके। शहर में धमाके होते हैं, लोग मारे जाते हैं, मुहल्ला का मुहल्ला वीरान हो जाता है और इन हृदय विदारक दृश्यों पर राजनीति की जाती है। जनता के बहते लहू से राजनीति की गंदगी धोयी जाती रही है। समूची मानव जाति के सीने पर फसाद और उन्माद एक कोढ़ बनकर उभरा है और धीरे-धीरे निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। आसिफ रोहतासवी अपनी एक गजल में लिखते हैं,

'हुए धमाके, लोग चीखते रहे, हुई गलियाँ वीरान
कैसे-कैसे मंजर' दौरे-हाजिर ने दिखलाये हैं।' 8

गजल का यह शेर अपने पूरे दौर के दहशतगर्दों को कटघरे में खड़ा करता है। न सिर्फ अपने दौर की हकीकत को बयां करता है बल्कि इसकी जड़ में छिपे चेहरों पर से पर्दे की ओट हटाने का काम भी करता है।

इन राजनैतिक यथार्थों के साथ गजलकार ने आम जीवन की समस्याओं को भी बखूबी रेखांकित किया है। अपने दौर की हर समस्या को आसिफ रोहतासवी ने अपनी गजलों में ढाला है। अपनी गजलों की सार्थकता ही वे समकालीन संदर्भों को रेखांकित करना मानते हैं।

आम जनता का जीवन मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित है। किसी भी समाज में जनता को रोटी, कपड़ा और मकान मुहैया होते रहे यह बहुत आवश्यक होता है तभी कोई समाज या देश अपने आप को विकासशील या विकसित कह सकता है। बाहर-बाहर तो जन-जीवन बड़ा रंग-बिरंगा दिखता है लेकिन इस सच को ठुकराया नहीं जा सकता है कि आज भी कुल आबादी का एक बड़ा हिस्सा ऐसा है, जिसे जीवन की मूलभूत सुविधाएँ भी मुहैया नहीं हो पाती हैं। ऐसे लोगों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए गजलकार लिखते हैं कि सावन में लोग आनंद प्रमोद में डूब जाते हैं, जीवन उल्लास से भर जाता है लेकिन सावन के उन दिनों में, खुशी के उन लम्हों में उनकी ओर भी देखने की आवश्यकता है, जिनके सिर पर छत नहीं है या जिनके घर मुक्कमल नहीं हैं,

'अबके सावन में आकर
देखो मेरा चूता घर' 9

एक ओर समाज का वह हिस्सा है; जिसके पास सारी सुविधाएँ हैं, वे हर तरह के साधन से संपन्न हैं। दूसरी ओर वह गरीब, किसान-मजदूर वर्ग है जिसे किसी दिन दो वक्त का भोजन भी नसीब हो जाए, तो वह दिन उनके लिए सुनहरा होता है। अधिकांशतः एक वक्त का फांक करके ही लोगों को अपना जीवन बिताना पड़ता है। अपने स्वराज में, अपने शासन और सरकार में पिछड़े होने का दंश झेल रहे लोगों का जो दर्द है, उसे कोई साधन संपन्न व्यक्ति महसूस नहीं करता है। जिन्हें अपने जीवन की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ रही है, वही उस दर्द को महसूस कर रहे हैं। 'जाके

पाँव न फटी बीवाई सो क्या जाने पीर पराई' वाली उक्ति चरितार्थ होती दिखाई देती है। लेकिन हर युग में जनकवि अपने दायित्व-बोध से जुड़ा रहता है। वह जनता की समस्याओं को निरूपित करता है, आमजन की स्थिति का बखान करता है। जनता के जीवन में जो समस्याएँ हैं, उसमें कुछ तो परिस्थिति और राजनीति आदि से उत्पन्न हुई हैं, तो कई समस्याएँ ऐसी हैं, जिनके मूल में लोगों का आपसी द्वेष, ईर्ष्या आदि का भाव समाहित है। भाई-भाई में झगड़ा होता है और उसका लाभ दूसरे लेते हैं। हर गाँव का अधिकांश घर आपसी कलह से पीड़ित है। लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, थाना-कचहरी करते हैं। इसमें लोगों की संपदाएँ बिक जा रही हैं। दूसरी ओर थाना और कचहरी से जुड़े लोग अपना स्वार्थ साध रहे हैं। जब तक लोगों में आपसी प्रेम और भाईचारे का महत्व नहीं बढ़ेगा तब तक यह स्थिति जस-की-तस बनी रहेगी। घर का घर तबाह होता रहेगा, लोग बर्बाद होते रहेंगे। लोगों की चेतना जागृत करने की कोशिश करते हुए गजलगो ने लिखा है,

'सहोदर जा रहे थाने-कचहरी
सिमटती जा रहीं अँगनाइयाँ हैं' 10

आपसी प्रेम और भाईचारा नष्ट हो चुका है। रिश्ते भी व्यापार बनकर रह गए हैं। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी हर रिश्ता छोटी-छोटी बातों पर तकरार का शिकार बन रहा है। रिश्तों की डोर इतनी कमजोर हो गई है कि एक छोटा-सा झटका लगता है और रिश्तें टूट जाते हैं। हर तरफ नफरत और अलगाववाद की आग लगी हुई है। इस आग में पहले तो राष्ट्र झुलसा, समाज झुलसा अब परिवार झुलस रहे हैं। नफरत और अलगाववाद की आग में झुलस कर कई शहर तबाह हुए हैं। कई गाँव-कस्बे तबाह हुए हैं। यहाँ तक कि परिवार भी कलह और द्वेष से घिरा दिखाई देता है। मानव से मानव का रिश्ता तो कमजोर हुआ ही है खून का रिश्ता भी आपसी स्वार्थ की भेंट चढ़कर रह गया है,

'अब वसुदेव-नन्द में स्वारथ-लिप्सा है
रिश्ते हैं व्यापार तुम्हारे गोकुल में
नफरत और अलगाववाद हैं हरे-भरे
सूख गया कचनार तुम्हारे गोकुल में' 11

आपसी ईर्ष्या और द्वेष के भेंट चढ़कर लोगों की सुख शांति-भंग हो चुकी है। आए दिन सांप्रदायिक दंगे और उन्माद भड़कते रहते हैं, जिसमें लोग हतोत्साहित होते हैं। गाँव और शहर दोनों ही जगह जीवन त्रस्त है। कोई ऐसी जगह नहीं बची है जहाँ लोग भय मुक्त होकर परिवार के साथ प्रेम से जीवन बिता सके। हर जगह रिश्तों में खींचातानी है, परिवार में लड़ाई-झगड़ा है तो बाहर भय और आतंक का माहौल है। शासन और सत्ता से भी लोग पीड़ित हैं। सारे माहौल मिलकर जीवन को भय के दायरे में समेट कर रखने का काम कर रहे हैं, जहाँ हर लम्हा जिन्दगी, मौत की गोद में सिसकियाँ लेने को विवश है। 'भय-मुक्त समाज' जैसे शब्द, शब्दकोश

के मीठे शब्द मात्र बनकर रह गये हैं। अखबार हाथ में लेते हुए लोग भयभीत रहते हैं कि पता नहीं आज किस तरह की हृदय विदारक खबरों से सामना होने वाला है,

रैलियाँ, हड़ताल, धरने, रहजनी हत्या, फसाद
मौसमी खबरें लिये फिर आज का अखबार है 12
शहर के हालात को देखकर लोग भयभीत रहते हैं,
डर गया हूँ इस कदर मंजर शहर के देखकर
दिल धड़कता अब नहीं मंजर शहर के देखकर 13

आसिफ रोहतासवी जी की गजलों को पढ़कर एक आश्वस्ति होती है कि उन्होंने समय के यथार्थ को गजल के लिए चुना है। समय जब बुरा है, रक्तरंजित है, तो निश्चित ही गजल में उसका वही रूप उभर कर सामने आएगा। जीवन के संघर्षों को रेखांकित किया गया है, तो जीवन का हर पहलू जिस रूप में है, उसी रूप में गजल में उभर कर सामने आना वाजिब है। एक सुखद अहसास के रूप में यह भी उल्लेखनीय है कि जीवन-यथार्थ की समस्याओं को दिखलाते हुए गजलकार बहुत अधिक निराश नहीं हैं, बल्कि एक आश्वस्ति उनके मन में है। एक अच्छे कल की उम्मीद अभी भी उनके भीतर बाकी है। गजलकार के भीतर एक अच्छे कल की उम्मीद का जीवित होना इस बात का संकेत है कि मानव जीवन जितना भी जटिल हो चुका हो, विषम हो चुका हो लेकिन जीवन के लिए एक नए सवेरे की गुंजाइश दिखाई दे रही है। जीवन में व्याप्त कालिमा को दूर कर जीवन में एक नए सवेरे को लाया जा सकता है :-

'कल की आँधी में जो उड़ गये पेड़ से
घोसलों में परिन्दे वे फिर आएँगे' या,
'आज मुहताज हैं चार दाने को जो
उनके दिन भी कभी तो बहुर आएँगे' 14

आसिफ साहब को अपने अदीब साहित्यकार होने पर फख्र है। वे इस बात पर गर्व महसूस करते हैं कि लोगों की वेदना को समझ सकने की क्षमता प्रकृति ने उनके भीतर विकसित की है। उनका मानना है कि ईमानदार और नेक दिल छोटा व्यक्ति भी समाज के लिए हितकर होता है बनिस्बत उस बड़े व्यक्ति के जो समाज की पीड़ा को महसूस नहीं कर सके, लोगों के दुख-दर्द से पीड़ित नहीं हो सके। जिसे पर पीड़ा की अनुभूति है वही वास्तव में इंसान है, वही सच्चा साहित्यकार है,

है फख्र कि औरों से बहुत खुशनसीब हूँ
ईमानदार, नेकदिल अदना अदीब हूँ। 15

साहित्यकार होने पर गजलकार गर्व तो महसूस करते हैं लेकिन साहित्यकार होने के खतरे से भी नावाकिफ नहीं हैं। यह और बात है कि उन खतरों से वाकिफ होकर भी उसे अपने सिर उठाने को वे तैयार हैं। वे समाज के हित में आवाज उठाने वाले साहित्यकारों को सजा देने वाले

हाथों को दृढ़ता पूर्वक चुनौती देते हैं। वे चुनौती देते हैं, समाज और राजनीति के उन ताकतवर लोगों को जो साहित्यकारों की आवाज अपनी शक्ति से चुप करना चाहते हैं। कि तुम कितने साहित्यकारों को मारोगे? साहित्यकार मर कर भी अपनी रचनाओं में जीता रहता है। लोगों के लिए आवाज उठाता रहता है,

कितनी तस्लीमाओं को तुम फाँसी पर लटकाओगे
हम मरकर भी जी जाते हैं कलमकार दीवाने लोग
स्याही और लहू की बूँदें व्यर्थ कहाँ जा पाती हैं
'आसिफ' उनकी हस्ती क्या, जो आये इन्हें मिटाने लोग 16

मैं जब किसी साहित्यकार को पढ़ता हूँ तो उसकी रचना में छुपे हुए प्रेम को तलाशने की कोशिश अवश्य करता हूँ। एक रचनाकार चाहे समाज के विविध संदर्भों को जिस रूप में देखे-लिखे लेकिन प्रेम से आँख चुराकर नहीं निकल सकता है। प्रेम तो मानव जीवन का आधार है। इसे स्पर्श किए बिना कोई साहित्यकार मेरी समझ से रह ही नहीं सकता। मैं आसिफ रोहतासवी की गजलों में भी प्रेम के नर्मस्पर्श को तलाशने की कोशिश की और खुशी इस बात की है कि मुझे निराशा हाथ नहीं लगी। उन्होंने प्रेम के कई शेर लिखे हैं। रोमानी भाव के भी हैं, सात्विक प्रेम के भी हैं। खैर, प्रेम तो प्रेम होता है उसे किसी वर्ग में बांटने की आवश्यकता नहीं है। प्रेम खुद में कितना नर्म होता है, कितना सुख होता है, यह यादों पर लिखे गए आसिफ साहब की एक शेर को देखकर महसूस किया जा सकता है,

तेरी बाँहों की तरह अब भी लिपट जाती हैं
नर्म यादों को यार, शोख बना रहने दे 17

प्रसंगवश मैं यहाँ फिर एक बार दुष्यंत कुमार को याद करता हूँ कि उन्होंने लिखा, 'तुम किसी रेल सी गुजरती है / मैं किसी पुल सा थरथराता हूँ' वही आसिफ रोहतासवी के शेर को देखिए जिसमें प्रेम की वही संवेदना छिपी हुई है, 'फूल रखते हो तुम हथेली पर/दिल बहुत देर थरथराता है।' दो शायर, दोनों के अपने-अपने अंदाजेबयां लेकिन भावना के स्तर पर दोनों ने प्रेम के जिस थरथराहट, गर्माहट को महसूस किया, उसे दोनों ने अपने-अपने तरीके से व्यक्त किया है। एक जगह प्रेमी सामने से रेल की तरह धड़धड़ाता हुआ गुजरता है और प्रेम का आश्रय पुल की तरह थरथराता रह जाता है। दूसरी तरफ प्रेमी हाथ पर फूल रख जाता है और आश्रय प्रेम के उस छुअन से देर तक सुध-बुध खोए रह जाता है। उसके दिल की थरथराहट उसके भाव को व्यक्त करने को काफी है।

आसिफ रोहतासवी की गजलों में जितने भाव व्यक्त हैं, उन सभी पर बात कर पाना एक छोटे से लेख में कतई संभव नहीं है। मैंने कोशिश की, कुछ चीजों पर बात की। थोड़ा लिखा गया, बहुत कुछ बाकी है। हो सका तो भविष्य में मैं लिखूँ, कोई और लिखे लेकिन इन गजलों में जो तनाव है; वह खुद को पढ़ने के लिए, लिखने के लिए लोगों को निरंतर प्रेरित करता रहेगा। इनकी

गजलों में मानव जीवन की संवेदना, मानवीय फिक्र की अभिव्यक्ति इन्हें लोकजीवन से जोड़ने का कार्य करते हैं। बहुत थोड़े सही लेकिन मैं आपके भोजपुरी गजलों को पढ़ा, हिंदी गजल की यह पूरी पुस्तक पढ़ी और काफी आशान्वित हुआ कि आप समाज में व्याप्त परिस्थितियों को टटोलते रहते हैं। उसकी टोह लेते रहते हैं। फिर अपनी रचना में उसे व्यक्त करते हैं।

आसिफ रोहतासवी की गजलें संवेदनात्मक रूप से जितनी उत्कृष्ट हैं शिल्प की दृष्टि से भी उतनी ही बेजोड़। आप सबसे ज्यादा प्रभावित अपनी भाषा को लेकर करते हैं। हिंदी में गजल लिखते हुए जहाँ आवश्यकता महसूस होती है आप भोजपुरी के अपने स्वनिर्मित टोन को भी प्रयोग में ले आते हैं। और सुखद यह है कि आपका टोन बदलने से लहजा कहीं बिगड़ता नहीं है और अधिक निखर उठता है। यह स्वाद बदलने जैसा प्रतीत होता है। संपूर्ण रूप से मैं आपकी गजलों को पढ़कर बहुत आनंदित हुआ। जिस तरह के साहित्य की आवश्यकता समाज को है, उसे मापदंड पर मैंने आपकी रचनाओं को बखूबी खरा पाया। उसी की एक छोटी सी परिणति इस लेख में उभर कर सामने आयी है।

संदर्भ सूची :

1. आसिफ रोहतासवी - 'सफर के दरमियां', वनांचल प्रकाशन, बोकारो (झारखंड), प्रथम संस्करण : 2024, पृष्ठ - 67, 2. वही, पृष्ठ - 61, 3. साये में धूप - दुष्यंत कुमार, 4. वही, पृष्ठ - 61, 5. वही, पृष्ठ - 16, 6. वही, पृष्ठ - 16, 7. वही, पृष्ठ - 18, 8. वही, पृष्ठ - 57, 9. वही, पृष्ठ -, 10. वही, पृष्ठ - , 11. वही, पृष्ठ - 35, 12. वही, पृष्ठ - 58, 13. वही, पृष्ठ - 59, 14. वही, पृष्ठ - 40, 15. वही, पृष्ठ - 50, 16. वही, पृष्ठ - 46, 17. वही, पृष्ठ - 105

डॉ. अमित कुमार मिश्रा, सहायक प्राध्यापक, मधेपुरा

मो. : 9304302308

✧ ✧ ✧

नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में व्यक्त मुक्ति की चेतना

आनंद दास

नागार्जुन की तरह युद्ध प्रसाद मिश्र भी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे और उनकी साहित्यिक रचनाओं ने नेपाली साहित्य को समृद्ध करने में विशिष्ट भूमिका निभाई है। युद्ध प्रसाद मिश्र अपने दृढ़ संकल्प-विश्वास पर खरा उतरने में यकीं रखते थे, जिसकी वजह से वह एक ईमानदार एवं आत्मविश्वासी व्यक्तित्व के रूप में परिचित थे। मिश्र जी की काव्य-सृजन की प्रवृत्तियों में विविधता सहज ही देखा जा सकता है। वह जिस देश, काल व वातावरण में रहें हैं, उन्हीं परिस्थितियों ने उन्हें विविधता प्रदान की हैं। बचपन का संघर्षमय जीवन, प्रकृति के प्रति लगाव, सामाजिक-सांस्कृतिक जुड़ाव, शिक्षा- दीक्षा, राजनीतिक जुड़ाव, तथा विद्रोही-स्वाभिमानी स्वभाव आदि ने मिश्र जी की रचना-विधाओं में प्रवृत्ति-मूलक विविधता को प्रभावित किया है। उनकी कविताएँ जीवन में देखे गए, जीवन में महसूस किए गए तथा जीवन में लोगों द्वारा सुने गए संदर्भों की प्रतिक्रिया है।

शोध सारांश : नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में सर्वत्र जनता की अनुभूति का सजीव चित्रण हुआ है। वे अपनी कविताओं में भूख, गरीबी, शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, बेकारी, सांप्रदायिकता, महँगाई जैसी सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया है। हिंदी साहित्य में नागार्जुन की संपूर्ण रचनाधर्मिता समतली संघर्ष की पगडंडियों पर चहलकर्मी करते हुए निरंतर यात्रा करती है। वहीं युद्ध प्रसाद मिश्र नेपाली साहित्य के माध्यम से मानव मुक्ति की चेतना जागृत करने में सक्षम होते हैं। नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं के माध्यम से उन चेतनाओं को रेखांकित और विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है, जो मानव मुक्ति का स्त्रोत बनता हो।

कुंजी शब्द : नागार्जुन, युद्ध प्रसाद मिश्र, कविता, मुक्ति चेतना, हिंदी साहित्य, नेपाली साहित्य।

प्रस्तावना : हिंदी साहित्य में कविता को अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम माना गया है, कविता सदियों से मानव-भाव और मानवीय मूल्य की रक्षा करने की विधा है। हिंदी साहित्य में नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताएँ मानवीय मूल्य और मुक्ति की चेतना का एक सफल उदाहरण है।

नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में भारतीय-नेपाली जन-जीवन की विभिन्न छवियाँ अपना रूप लेकर प्रकट हुई हैं। दोनों कवियों ने कविता के विषय-वस्तु के रूप में प्रकृति से लेकर जन साधारण के जीवन को, उनकी विभिन्न समस्याओं को, शोषण-उत्पीड़न की अटूट परंपरा को व जनता के संघर्ष-शक्ति को अत्यंत सशक्त ढंग से इस्तेमाल किया है। नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताएँ अपने समय की हर महत्वपूर्ण घटनाओं पर प्रहार करती हैं। दोनों ही ऐसे हरफनमौला शख्सियत थे, जिन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं और भाषाओं में लेखन के साथ-साथ जनान्दोलन को भी साहित्य का हिस्सा बनाया था। दोनों कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व में काफी समानता थी, यही वजह है कि युद्ध प्रसाद मिश्र को 'नेपाल का नागार्जुन' माना जाता है।

विश्लेषण : साहित्य में नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताएँ भारत और नेपाल की उन समस्याओं पर चोट करती है, जो मानव मुक्ति व मानव सरोकार से जुड़े प्रश्न हैं। इन दोनों कवियों की कविताएँ भारत और नेपाल की साहित्यिक संबंधों को आपस में जोड़ने व मजबूत करने में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। दोनों ही कवि गरीब जनता और बेबस लोगों की बात करने से जरा भी नहीं कतराते हैं। प्रो. अरुण होता लिखते हैं- "नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताओं में व्यक्त मुक्ति की चेतना को रेखांकित करते हुए कहा कि 'सत्ता हर काल में दमनकारी होती है।' दोनों रचनाकारों के परिवर्तनकारी कामनाएँ एक तरफ आम आदमी की दयनीय दशा और दूसरी तरफ सत्ता के दमन चक्र से लड़ाई करती हैं। इनकी कविताओं में प्रतिरोध का स्वर और उम्मीद की किरण दोनों ही लक्षित होते हैं, जिनमें जनतांत्रिक मूल्यों का सर्वाधिक स्थान है।"1 दोनों ही कवि अपनी कविताओं के जरिये साफगोई और जन सरोकार के मुद्दे को बड़ी मुखरता के साथ उठाया है। वैसे केवल अगर नागार्जुन की कविताओं की ओर गौर करें तो उनकी कविताओं का प्रभाव आज भी प्रभावशाली और प्रासंगिक दिखाई देता है। वे हिंदी साहित्य के छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, जनवादी कविता, नवगीत, बीट कविता, अकविता जैसी कई धाराओं के समकालीन होकर गुजरे हैं, लेकिन उनकी कविताएँ जन-जन के व्यापक सरोकारों के चलते अपनी आधारभूत प्रतिबद्धता के धरातल पर अडिग रही है। वे मार्क्सवाद से बेहद प्रभावित थे; पर बौद्ध विचारधारा के भी प्रबल पक्षधर थे। नागार्जुन ने अपनी लेखनी से केवल हिंदी ही नहीं, संस्कृत, बांग्ला व मैथिली भाषा के साहित्य को भी समृद्ध किया है। उनकी खुद की अपनी एक दर्शन शैली रही है, जिसका केन्द्रबिन्दु निश्चित तौर पर मानव और मानवोचित जीवन की उत्कट चाह ही रहा है। उनके काव्य की अंतर्वस्तु का दायरा इतना वृहत था कि वे सामंती व्यवस्था-सोच, जीवन की विसंगतियाँ-अंतर्विरोध, राजनीतिक व्यंग्य, निजी जीवन-प्रसंग, प्रकृति चित्रण जैसे तमाम विषयों अपनी कविताओं में विशेष स्थान देते हैं। उनके रचना संसार का शुभारम्भ मैथिली में 'पत्रहीन नग्न गाछ (काव्य-संग्रह) से हुआ। उनका पहला काव्य-संग्रह, 'युगधारा' (1953), जिसमें उनके युवावस्था की विचारधारा और

काव्य क्षेत्र में नयेपन की पहचान है। इसके बाद उन्होंने कई काव्य संग्रह प्रकाशित किए, जिनमें 'सतरंगे पंखोवाली' (1959), 'प्यासी पथराई आँखें' (1962), 'तालाब की मछलियाँ' (1974), 'तुमने कहा था' (1980) और 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' (1980), 'हजार-हजार बाहोंवाली' (1981), 'पुरानी जूतियों का कोरस' (1983), 'ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या' (1985), 'आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने?' (1986), 'इस गुब्बारे की छाया में' (1990), 'भूल जाओ पुराने सपने' (1994), 'भष्मांकुर' (1983), और 'रत्नगर्भ' (1974) खण्ड काव्य शामिल हैं। इन रचनाओं में नागार्जुन ने सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों, प्रेम, भाईचारा, भ्रष्टाचार, न्याय और आधुनिक जीवन के विविध पहलुओं को बड़ी संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त किया है।

नागार्जुन की अधिकांश कविताएँ ग्रामीण जीवन और उनके यथार्थवादी जिंदगी पर आधारित है। जनता से गहरे लगाव और अपने स्वछन्द स्वभाव के कारण जमीनी हकीकत से जुड़े रहे हैं। नागार्जुन की कविताओं में राजनीतिक हस्तक्षेप दिखाई देता है। वे जहाँ नेहरू और इन्दिरा की जनहितकारी नीतियों की प्रशंसा करने से नहीं कतराते हैं, वहीं उनके गलत कामों के प्रति हमेशा ही सख्त रुख भी इख्तियार करते हुए नजर आते हैं। वे रघुवीर सहाय की तरह महानगरीय बोध तक सीमित रहने वाली कविता नहीं रचते हैं। अकाल की परिस्थिति में लिखी गई कविता 'कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास' से उन्हें बखूबी समझा जा सकता है-

'कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दाने आए घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआं उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।'

बिहार में साठ के दशक के दौरान अकाल की स्थिति बनी हुई थी, जब स्थितियाँ सुधरने लगीं तो यह कविता उनके जहन से निकली। भूख के दर्द को अपनी कविता के माध्यम से शब्दबद्ध करके मुक्ति की चेतना जागृत करने का प्रयास किया है। नागार्जुन की प्रस्तुत कविता में चूल्हा रोता है, चक्की उदास होती है। यहाँ 'दुख' अकेला नहीं रहता है, वह एकता का भाव पैदा करता है, जिसमें कानी कुतिया को भी इंसान के पास सोने की जगह मिलती है। यहाँ घर में अन्न के दाने के आगमन के साथ ही परिवार के लोगों के साथ आस-पास के जीव-जन्तुओं में भी खुशी की लहर दौड़ पड़ती है और उनमें एक उम्मीद की किरण दिखाई देती है। आम लोगों की खुशी को कवि ने बड़ी सहजता के साथ अभिव्यक्त किया है। बाबा सही मायने में गरीब, शोषित, वंचित, किसान व जनसाधारण की बुलंद आवाज थे।

नागार्जुन छायावादोत्तर काल के एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिनकी कविता चौपालों से लेकर विद्वतजन तक, छंद बद्ध से लेकर छंद मुक्त तक, धारदार से लेकर तीखी से लेकर चटपटी तक, तत्सम से लेकर जनपदीय भाषा तक, जीवन्त से लेकर जोश-खरोश तक ऐसी रवानगी है कि मानों दिलो-दिमाग की गहराइयों में सीधे समा जाए। उन्हें जन-मन की गहरी समझ थी। इसी वजह से उनकी प्रतिबद्धता जन-मन और उसके शोषित-उपेक्षित सरोकारों से थी। तभी तो न केवल कवियों-साहित्यकारों ने अपितु स्वयं बाबा नागार्जुन ने डंके की चोट पर स्वयं को 'जनकवि' के रूप में घोषित किया है। 'जनकवि' होने का एहसास कवि इस अंदाज में बताते हैं-

'जनता मुझ से पूछ रही है, क्या बतलाऊँ?
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊं!'
(कविताः भारत भूमि में प्रजातंत्र का बुरा हाल है)

यही 'साफ कहूँगा' की साफगोयी 'जनकवि' की कविता की 'रूह' है। व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो बाबा नागार्जुन का रचना काल कई साहित्यिक धाराओं एवं वादों का विस्तृत फलक को समेटे हुए है।

बाबा ने असाधारण व्यंग्य शैली का इस्तेमाल अपनी कविताओं में किया है, जिसके चलते आज भी उन्हें याद किया जाता है। नामवर सिंह नागार्जुन को कबीर के बाद सबसे बड़ा व्यंग्यकार स्वीकार करते हैं। प्रकृति और गाँव-शहर से जुड़ी कविताओं में भी व्यंग्य का स्वर दिखाई देता है। गाँव और शहर पर लिखी उनकी व्यंग्य कविता का उदाहरण -

'दूध-सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा
निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने
बैठना है पंखे के नीचे, अगले डिब्बे मैं
ये तो बस इसी तरह
लगाएंगे ठहाके, सुरती फाँकेंगे
भरे मुँह बातें करेंगे अपने देस कोस की
सच सच बतलाओ
अखरती तो नहीं इनकी सोहबत?
जी तो नहीं कुढता है?
घिन तो नहीं आती है?'

नागार्जुन ने अपने काव्य में सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्य का भरपूर इस्तेमाल किया है। इसी को इंगित करते हुए सुभाष जी कथन है- 'नागार्जुन जैसा सार्थक और तीक्ष्ण व्यंग्य बहुत कम कवियों में देखने को मिलता है। सामाजिक प्रश्न हो या आर्थिक समस्या, कवि ने यथास्थितियों का आकलन करते हुए बड़े सजग ढंग से विनोद और व्यंग्य के माध्यम से उसे

सुलझाने का प्रयास किया है। आर्थिक स्थिति आज जितनी शोचनीय है उतनी पहले कभी नहीं थी। इसी संदर्भ में देश की आर्थिक स्थिति दिन पर दिन कितनी भयानक होती जा रही है तथा गरीब और गरीब तथा धनिक और धनिक होते जा रहे हैं। इसका अत्यन्त वास्तववादी चित्रण कवि ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'मन करता है' में किया है।'२ उनके काव्य में जहाँ एक तरफ सामाजिक-राजनीतिक व्यंग्य है वहीं दूसरी तरफ प्रेम, वात्सल्य, करुणा और सौंदर्य हैं। नागार्जुन निरे व्यंग्य कवि नहीं है बल्कि वे इससे अधिक कुछ है। ठीक इसी प्रकार आम लोगों की समस्या को केंद्र में लाते हैं और उन्हें जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। 'लक्ष्मी' नामक कविता में महल-झोंपड़ी को आमने-सामने रखकर बेकारी, मजदूरों की छंटनी, ऋणग्रस्तता जैसे सामाजिक समस्याओं का वर्णन किया है -

वामपंथी विचारों को मार्गदर्शक मानकर लिखी गई कविताएँ तत्कालीन सामाजिक परिवेश को उजागर करती है तथा उससे मुक्ति दिलाने का आह्वान करती है। युद्ध प्रसाद मिश्र की वामपंथी सोच-विचार प्रस्तुत कविता में स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। वह अपने आप को सर्वहारा जनता से जोड़कर जनता की आवाज को मजबूती के साथ रखते हैं। वह बताते हैं कि पूंजीवादी शक्तियों ने देश की जनता का खून चूसकर उन्हें खोखला कर दिया है। देश की जनता का खून चूसकर उन्हें लाचार-बेबस बना दिया है। कवि हर हालत में इससे मुक्ति दिलाना चाहते हैं और देश को पूंजीवादी शोषण व्यवस्था से आजादी दिलाना चाहते हैं।

'बेकार है जनबल। हाथों पर चल रही है अँटनी की आरी
ओर है न छोर है। अपव्यय का जोर है।
कब तक चलेगा ऋण कब तक उधारी।
झुकाकर व्यथित माथ। खाली मन खाली हाथ।
पूजे तुम्हें कैसे कोटि नर-नारी।'

ग्रामीण परिवेश की गरीबी-बेबसी एवं लाचारी का नग्नरूप यहाँ पूरी मानवीय संवेदना से चित्रित हुआ है। कवि ने यहाँ गरीब व्यक्ति की अभावग्रस्त जिन्दगी का चित्रण किया है। इसमें जीवन की विसंगतियाँ, विषमताएँ, विद्रुपताएँ बड़ी मार्मिकता से चित्रित हैं।

नागार्जुन की तरह युद्ध प्रसाद मिश्र भी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे और उनकी साहित्यिक रचनाओं ने नेपाली साहित्य को समृद्ध करने में विशिष्ट भूमिका निभाई है। युद्ध प्रसाद मिश्र अपने दृढ़ संकल्प-विश्वास पर खरा उतरने में यकीं रखते थे, जिसकी वजह से वह

एक ईमानदार एवं आत्मविश्वासी व्यक्तित्व के रूप में परिचित थे। मिश्र जी की काव्य-सृजन की प्रवृत्तियों में विविधता सहज ही देखा जा सकता है। वह जिस देश, काल व वातावरण में रहें हैं उन्हीं परिस्थितियों ने उन्हें विविधता प्रदान की हैं। बचपन का संघर्षमय जीवन, प्रकृति के प्रति लगाव, सामाजिक-सांस्कृतिक जुड़ाव, शिक्षा-दीक्षा, राजनीतिक जुड़ाव तथा विद्रोही-स्वाभिमानी स्वभाव आदि ने मिश्र जी की रचना-विधाओं में प्रवृत्ति-मूलक विविधता को प्रभावित किया है। उनकी कविताएँ जीवन में देखे गए, जीवन में महसूस किए गए तथा जीवन में लोगों द्वारा सुने गए संदर्भों की प्रतिक्रिया है। युद्ध प्रसाद मिश्र की काव्य-सृजन प्रवृत्तिगत धाराएँ समय के साथ बदलती गई। वह काव्य-सृजन के शुरुआती फेज में प्रकृति से प्रेरित होकर काव्य को रचे आगे चलकर सामाजिक यथार्थवादी बने और फिर आलोचनात्मक यथार्थवादी धारा की ओर अग्रसर हुए। मिश्र जी नागार्जुन की भांति जन-जन की आवाज को बुलंद करने और जन पक्षता को मजबूत करने के लिए अपनी कलम को तलवार की तरह धारदार बनाया था। 'भोका र नाङ्गा उठ' कविता में युद्ध प्रसाद मिश्र लिखते हैं-

ए कंकाल दरीद्रता बीच डुबेका जाग भाइ अब
ए लाखौं झुपडी भई उठ लडका देशबासी सब
तोडी दुर्ग दिने महाप्रलयको दुधर्ष आँधी उठ
व्यक्तिवाद समूल नष्ट गरने ब्याधी उपाधी उठ।
खोक्रा पेट अनाज भेट नहुने भोका र नांगा उठ
कोदाला उठ बञ्चरा र हँसिया नाम्ला र डोका उठ
साहूका करकापका कठिनता भोग्नेहरू हो उठ
ताकेका जिमिदारले युवतीका लोग्नेहरू हो उठ।
बाँचने साधन अन्नपात लुटिएका ए दिवाला उठ
शोषेका अरुले रगत् र पसिना हड्डी र छाला उठ
हुर्मत छोप्न परेर केवल भिरेक जिर्ण टाला उठ
रित्ता वर्तन जाग जाग चुहने नङ्ला र डाला उठ।
पाशो मस्किन राजनैतिक गई मर्नेहरू हो उठ
आर्थिक संकटले जुनी तल तलै झर्नेहरू हो उठ
गर्नु साग र सिस्नुबाट जिविका पर्नेहरू हो उठ
शत्रुका हितमा शरीर पसिना गर्नेहरू हो उठ।

आर्थिक संकटों में फंसे नेपाल की जनता को मुक्ति दिलाने के लिए अपनी कविता 'भोका र नाङ्गा उठ' के माध्यम से जागृत करने का प्रयत्न करते हैं। वह प्रस्तुत काव्य के माध्यम से यह कहना चाहते हैं कि देश की जनता आर्थिक विपन्नता से जब तक मुक्त नहीं हो जाते तब तक उनका जीवन नरकीय बना रहेगा। वह महिलाओं, मजदूरों, किसानों तथा खून-पसीना एक

करने वाले हरेक श्रमिक वर्ग की आवाज बनते हुए नजर आते हैं। युद्ध प्रसाद मिश्र की कविताएँ पारंपरिक शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाती है; जो लोगों में मुक्ति की चेतना और क्रांतिकारी जोश भरने का कार्य करती है। वह 'हुँ म यौटा सर्वहारा' कविता में कहते हैं-

'क्रुर यी अस्तिकहरूले रक्त चुसिएको छु सारा
पेट भोको पीठ नाङ्गो हूँ म यौटा सर्वहारा।
झोपडीतक छनै पथको ज्यूँदोछु पक्री किनारा
रातभर चम्किरहन्छन् नेत्रमा नौ लाख तारा।
खून पसिना बेच्दा काहीं पाउँछु केही सहारा
वर्ग शत्रु जित्न लिन्छु विश्व जनमतको सहारा।
देशमुक्ति गर्न दिन्छु खुनका अनमोल धारा
पेट भोको पीठ नाङ्गो हूँ म यौटा सर्वहारा।'

वामपंथी विचारों को मार्गदर्शक मानकर लिखी गई कविताएँ तत्कालीन सामाजिक परिवेश को उजागर करती है तथा उससे मुक्ति दिलाने का आह्वान करती है। युद्ध प्रसाद मिश्र की वामपंथी सोच-विचार प्रस्तुत कविता में स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। वह अपने आप को सर्वहारा जनता से जोड़कर जनता की आवाज को मजबूती के साथ रखते हैं। वह बताते हैं कि पूंजीवादी शक्तियों ने देश की जनता का खून चूसकर उन्हें खोखला कर दिया है। देश की जनता का खून चूसकर उन्हें लाचार-बेबस बना दिया है। कवि हर हालत में इससे मुक्ति दिलाना चाहते हैं और देश को पूंजीवादी शोषण व्यवस्था से आजादी दिलाना चाहते हैं। भले ही इसके लिए देश की जनता को जान की बाजी और खून की होली खेलना क्यूँ ना पड़े। देश को शोषणकारी व्यवस्था से आजादी दिलाने की सोच और विचार नागार्जुन की कविताओं में भी देखने को मिलती है। वह भी जनता की आवाज को पुरजोर तरीके से उठाते हैं और देश को आगे ले जाने की बात करते हैं। युद्धप्रसाद मिश्र नेपाल राष्ट्र और वहाँ की जनता को सर्वोपरी स्थान देते थे। वह नेपाल को निरंकुश शासन व्यवस्था से मुक्ति दिलाने का आह्वान करते हैं। युद्ध प्रसाद मिश्र 'बढ़दै जाओ बढ़दै जाओ' के माध्यम से जनजागृति कर नेपाल की जनता में मुक्ति की चेतना का अलख जगाना चाहते हैं। उनकी विशेष पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

'नयाँ निसाना, नवजागृति, नवचेतनाका साझा हो
हलो, कोदालो, खुकुरी, हँसिया, खुर्पि खुँडाका ताजा हो
पीडित जनले नगरी नहुने घोर क्रान्तिका बाजा हो
दलित गलित हुन बाध्य भएका जनमानसका राजा हो।
तिम्रा जयकार विक्रमतामा देशवासीका लोलुप आँखा
हाम्रा झुपडी झुपडीका तिमी युवक विश्व लडाका

मानवताको श्री लुटिएका जाग्रत जनका प्यारा हो
झलमल दुनियाँ उदित-विदित युग जन्मभूमिका तारा हो।'

वह नेपाल के प्राकृतिक सौन्दर्य, सीधे-सादे मिलनसार लोग और प्यारे से देश को देखा है और भोगा है। राष्ट्र और लोगों के प्रति प्रेम, स्वतंत्रता, लोकतंत्र प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा और मुक्ति की अद्‌भुत इच्छा ने उन्हें कविता लिखने के लिए अभिप्रेरित किया है। नागार्जुन भारत के राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध अपना मोर्चा खोलते हैं ठीक उसी प्रकार की राह पर चलते हुए युद्धप्रसाद मिश्र भी राजशाही की दमनकारी शासन व्यवस्था के विरुद्ध, सामाजिक असंतोष, गरीबी, वर्गभेद और देश की अविकसित स्थिति पर कड़ा प्रहार करते हैं।

निष्कर्ष : नागार्जुन और युद्धप्रसाद मिश्र में सकल-सूरत, चाल-चलन से लेकर रचना संसार तक काफी समानताएँ थीं, जिसे प्रस्तुत लेख के माध्यम से जानने-समझने के लिए प्रयास किया गया है, ताकि दोनों देशों के साहित्य और साहित्यकारों का तुलनात्मक अध्ययन व विश्लेषण किया जा सके। नागार्जुन को भारतीय साहित्य में जो दर्जा दिया जाता है ठीक वही दर्जा नेपाली साहित्य में युद्ध प्रसाद मिश्र को दिया जाता है। युद्ध प्रसाद मिश्र के साहित्य का अध्ययन व विश्लेषण के जरिए ही हम नेपाल के साहित्य और तत्कालीन परिथिति को जान सकते हैं और समझ सकते हैं। अपनी बातों को समेटते हुए यह कह सकते हैं कि दोनों देशों के साहित्यकारों का भाषा-साहित्य पठन-पाठन होने से साहित्य और समाज का दायरा बढ़ेगा साथ ही भारत और नेपाल के आपसी सम्बन्ध और ज्यादा मजबूत होंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि नागार्जुन और युद्ध प्रसाद मिश्र कविताएँ सामाजिक यथार्थ, मानवता, प्रेम की भावना, सामाजिक चेतना, देशभक्ति, वैचारिक स्पष्टता-प्रतिबद्धता, विद्रोह-क्रांतिकारी चेतना तथा शांति-मुक्ति की खोज का प्रतीक बन गयी है।

संदर्भ सूची :

1. https://www.himalini.com/196374/08/19/03/
2. क्षीरसागर डॉ. सुभाष, नागार्जुन के काव्य में जनचेतना, शुभम् पब्लिकेशन, कानपुर, प्रकाशन, संस्करण - 2011, पृष्ठ संख्या -180.

आनंद दास, सहायक प्राध्यापक, श्री रामकृष्ण बी.टी. कॉलेज, दार्जिलिंग (Govt. Aided),
संपर्क - 27 गांधी रोड, बगमारी हाउस, दार्जिलिंग -734101,
मो. : 9804551685, ई-मेल : anandpcdas@gmail.com

✧ ✧ ✧

हाशिए से न्याय तक : 'जय भीम' में आदिवासी संघर्ष

नेहा जॉनी

फिल्म के मुख्य पात्र राजाकन्नू और पत्नी सेन्गेनी इरुला आदिवासी थे, जो जमींदारों के खेत में चूहे पकड़कर और छोटे मोटे-काम कर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन गाँव के सरपंच के घर में घुसे साँप को पकड़ने के लिए राजाकन्नू को बुलवाया जाता है। अपना काम निपटाकर वह चला जाता है। कुछ दिन बाद सरपंच के घर में गहनों की चोरी हो जाती है। पुलिस के पूछने पर कि किसी पर शक है, सरपंच की पत्नी बिना कुछ सोचे राजाकन्नू का नाम बोल देती है। इस पर सारा आरोप पुलिस राजाकन्नू के ऊपर डालकर उसे अपराधी ठहरा देती है। बस इसलिए कि वह नीच जाति का है। राजाकन्नू अपने होने वाले बच्चे और पत्नी के लिए एक घर बनाने की चाव से शहर में काम करने गया था। पुलिस राजाकन्नू के घर आकर उसकी पत्नी सेन्गेनी को घर से घसीटकर ले जाती है जो कि गर्भवती थी।

आदिवासी या प्रारंभिक निवासी ऐसे लोग हैं, जो आदिकाल से ही किसी विशेष क्षेत्र में रहते आ रहे हैं। आदिवासी शब्द का अर्थ भी यही है, आदिम या प्रारंभिक वासी यानी प्रारंभ से निवास करने वाले। वे धरती के मूल एवं प्राचीनतम निवासी हैं, जिनकी अपनी विशेष भाषा, वेश-भूषा, खान-पान, संस्कृति, रीति-रिवाज, कला, परम्परागत विश्वास, आचार-विचार और विशिष्ट जीवन पद्धति हैं। आदिवासी ज्यादातर जंगलों और पहाड़ों में अपना जीवन यापन करते हैं। इस कारण आधुनिक सभ्यता का प्रभाव इन पर बहुत कम पड़ा है। देश के आजाद हुए इतने साल बीत गए लेकिन आज भी आदिवासी समाज पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। आज भी वे अत्याचार और शोषण से मुक्त नहीं हो पाए हैं। जंगलों में वास करने के कारण वनवासी, दानव, राक्षस आदि नाम देकर इन्हें जंगलीपन का एहसास दिलाया जाता है।

"आदिवासियों की उपेक्षा तो भारत में शुरु से ही होती रही है और आज भी हो रही है। संविधान प्रदत्त अधिकार भी उन्हें आज तक नहीं मिल पाए।....... दरअसल आज आदिवासी के अस्तित्व पर ही खतरा मंडरा रहा है।...... आज उनकी अस्मिता और अस्तित्व दोनों की उपेक्षा हो रही है।" आदिवासियों के जीने का मुख्य साधन वन है,

जो उनसे आज छीना जा रहा है। जंगलों की अवैध कटाई, प्रदूषण, बाँध निर्माण और औद्योगीकरण जैसी समस्याओं ने आदिवासियों को अपने ही जमीन से विस्थापित होने और दूसरों पर आश्रित होने के लिए मजबूर किया। फलस्वरूप आज कई आदिवासी लोग मजदूरों में तब्दील हो रहे हैं। उन्हें काम देने के लिए कोई तैयार नहीं है। अगर काम कर भी लेते हैं तो उनकी श्रम शक्ति छीनकर उन्हें पर्याप्त वेतन भी नहीं दिया जाता। उनकी समस्याएँ और उन पर हो रहे शोषण दिन व दिन बढ़ती जा रही है। साहित्य और सिनेमा जैसे माध्यमों के जरिए उन्हें आवाज मिल पाई है। 2 नवम्बर, 2021 को तमिल में रिलीज की गई फिल्म 'जय भीम' सन् 1993 को तमिल नाडु के कुड्डालोर में घटित एक वास्तविक घटने पर आधारित है। यह मद्रास उच्च न्यायालय के इतिहास में वकील चंद्रु द्वारा लड़े सबसे महत्वपूर्ण केस से संबंधित है। यह आदिवासी समुदाय के पिछड़े वर्ग, इरुला आदिवासी समूह के प्रति पुलिस द्वारा की जाने वाली शोषण और जाति उत्पीड़न की कहानी है।

फिल्म पुलिस की बर्बरता और हिरासत में हुई आदिवासी राजाकन्नू की मौत पर आधारित है। फिल्म की शुरुआत में ही पुलिस द्वारा आदिवासियों पर किए जाने वाले जाति आधारित भेदभाव को दिखाया गया है, जो इस फिल्म की मुख्य समस्या है। जेल के बाहर रिहा किए जा रहे हर एक कैदी से जेलर उनकी जाति पूछता है। उच्च जाति के कैदियों को घर छोड़ा जाता है और निम्न जाति के कैदियों को जेलर वहीं पकड़कर रखता है, जिसमें ज्यादातर कैदियाँ आदिवासी थे। एक पुलिस वाले के पूछने पर कि इनकी क्या गलती है? उसे बताया जाता है कि इनका पैदा होना ही इनकी सबसे बड़ी गलती है। निम्न जाति के कैदियों को आस-पास के पुलिस स्टेशन के पुलिसवालों को गिन-गिन कर रिश्वत के बदले बेच दिया जाता है। क्योंकि सभी पुलिस स्टेशनों में अनसुलझा ऐसे बहुत सारे केस थे, जिसके अपराधियों को पुलिस नहीं ढूँढ पाई और ऊपर से प्रेशर भी था। पुलिस जानती थी कि आदिवासियों के लिए आवाज उठाने वाला कोई नहीं है। झूठे अपराध लगाकर इन्हें फँसा भी लिया तो कोई पूछने नहीं आएगा। इस तरह से एक विरोधाभास न्याय प्रणाली देखने को मिलता है कि जिन लोगों पर न्याय बनाए रखने और लोगों के अधिकारों की रक्षा करने की जिम्मेदारी है, वे खुद सत्ता का दुरुपयोग करते दिखाई देते हैं।

सरकारी अधिकारियों द्वारा आदिवासियों के प्रति दिखाई गई बेपरवाही, वर्ग भेदभाव और उदासीनता पर भी फिल्म प्रकाश डालती है। फिल्म के मुख्य पात्र राजाकन्नू अपने साथियों के साथ सरकारी दफ्तर के अधिकारी के पास बच्चों को पढ़ाने के लिए जाति प्रमाण पत्र माँगने को जाता है, तो उन्हें यह कहकर भगा दिया जाता है - "तुम लोग नहीं पढ़ोगे तो दुनिया नहीं चलेगी क्या, ट्राइब्स को जंगलों में रहना चाहिए। जंगल छोड़कर एस टी सर्टिफिकेट के लिए मेरी जान क्यों खाना है। फिर से जंगल में चले जाओ।" अधिकारी वर्ग आदिवासियों को उनके मूल अधिकारों जैसे शिक्षा, भूमि, संपत्ति और सामाजिक न्याय से वंचित रखते हैं, जो कि एक गंभीर

चिंता का विषय है। अधिकारी इन्हें अड्रेस और राशन कार्ड नहीं है, कहकर मना कर देते हैं। वह इसलिए टाल देते हैं कि गाँव के मुखिया यह नहीं चाहते, वे सभी आपस में मिले जुले थे। गाँव के मुखिया, शिक्षक मैत्र से कहते हैं - "मोहतरमा दूसरी जाति वाले लोगों के सामने वोट की भीख माँगनी पड़ती है, इतना काफी नहीं है, अब क्या इनकी झोपड़ी में जाकर झुकने के लिए बोल रही हो।" अधिकारी वर्ग आदिवासियों को बहिष्कृत कर उन्हें हाशिए पर धकेल देते हैं। अशिक्षा के कारण आदिवासी अधिकारियों की बातों को सच मानकर चुप बैठते हैं।

फिल्म के मुख्य पात्र राजाकन्नू और पत्नी सेन्गेनी इरुला आदिवासी थे, जो जमींदारों के खेत में चूहे पकड़कर और छोटे मोटे-काम कर अपना जीवन यापन करते थे। एक दिन गाँव के सरपंच के घर में घुसे साँप को पकड़ने के लिए राजाकन्नू को बुलवाया जाता है। अपना काम निपटाकर वह चला जाता है। कुछ दिन बाद सरपंच के घर में गहनों की चोरी हो जाती है। पुलिस के पूछने पर कि किसी पर शक है, सरपंच की पत्नी बिना कुछ सोचे राजाकन्नू का नाम बोल देती है। इस पर सारा आरोप पुलिस राजाकन्नू के ऊपर डालकर उसे अपराधी ठहरा देती है। बस इसलिए कि वह नीच जाति का है। राजाकन्नू अपने होने वाले बच्चे और पत्नी के लिए एक घर बनाने की चाव से शहर में काम करने गया था। पुलिस राजाकन्नू के घर आकर उसकी पत्नी सेन्गेनी को घर से घसीटकर ले जाती है जो कि गर्भवती थी। उसकी गर्भवती होने की परवाह किए बिना जेल में उसके साथ बहुत अत्याचार किया जाता है। बाद में आकर राजाकन्नू के भाई इरुटप्पन, बहन पचौयाम्मल और बहनोई मोसकुटटी को गिरफ्तार करके स्टेशन ले जाते हैं। राजाकन्नू के ठिकाने के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए राजाकन्नू के रिश्तेदारों को बहुत मारा-पीटा गया। राजाकन्नू की बहन को अधनंगा कर उसे भी खूब मारा गया। सेन्गेनी को छोड़ दिया जाता है। कुछ दिन बाद गाँव में आए राजाकन्नू पुलिस के हाथ लग जाता है।

राजाकन्नू को बचाने के लिए सेन्गेनी गाँव के मुखिया के घर के सामने रोती हुई अपने पति को बचाने की भीख माँगती है। आदिवासी होने के कारण उसे दूर भगा दिया जाता है। फिल्म में उच्च वर्ग के लोग इरुला आदिवासियों को उनके अपने नाम से नहीं, बल्कि उनके जाति नाम से उनका सम्बोधन करते हैं। जैसे - गाँव के सरपंच राजाकन्नू को 'इरुला' कहकर पुकारते है। जब राजाकन्नू ने एक बार यह कहा कि सरपंच की पत्नी उसी के गाँव से है तो उसे बहुत बुरा-भला कहा था। छुआछूत की प्रथा भी फिल्म में कहीं-कहीं दिखाई गई है। अभिजात वर्ग आदिवासियों को उनके श्रम के लिए शोषित कर उनसे लाभान्वित होते हैं। उन्हें कतई सम्मान और गरिमा नहीं देते। यहाँ तक कि उन्हें हीन और अछूत के रूप में देखा जाता है। "अन्य समाज के लोग इन्हें घृणा की तिरस्कृत नजर से देखते हैं। आदिवासियों की सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की गहराई से देखने का प्रयास नहीं किया जाता। सरकारी कर्मचारी एवं अधिकारी भी उनकी उपेक्षा करते हैं।" फिल्म में अभिजात वर्ग की आदिवासियों के प्रति हीन दृष्टि भी दिखाई गई है।

जब राजाकन्नू पकड़ा जाता है, वह पुलिस के पैर पकड़कर कहता है कि उसने चोरी नहीं की। पुलिस को यह केस जल्दी खत्म करना था और राजाकन्नू से गुनाह मंजूर करवाना था। पुलिस वालों ने राजाकन्नू और उसके रिश्तेदारों के साथ ऐसा बदत्तर और क्रूर व्यवहार किया, जिससे मर जाना वे बेहतर समझते हैं। राजाकन्नू और उसके भाइयो को रस्सी से उल्टा लटकाकर लाठी से कई दिनों तक मारा गया। जब मोसकुटटी पुलिस वालों से मर्दों को जेल में रखकर औरत को घर छोड़ने की विनती करता है तो यह सुनकर एक पुलिस वाला मोसकुटटी की पत्नी पचौयाम्मल के कपड़े खींचकर बाकी मर्दों के सामने उसे नंगा किया जाता है और बिना कपड़े के उसे कोने में धकेल दिया जाता है। एक स्त्री होने की मानवीय करुणा भी उसको नहीं दिया गया। पुलिस वाले अपनी बेशर्मी की सारी हदों को पार करते हुए उनका उत्पीड़न जारी रखते हैं। आदिवासियों के साथ पुलिस की बर्बरता का चित्रण फिल्म में व्यक्त किया गया है। राजाकन्नू और उसके रिश्तेदारों के साथ होता इस अत्याचार का दृश्य फिल्म के सबसे भावनात्मक दृश्यों में से एक है, जो किसी भी दर्शक की आँखों में आँसू ला देने वाला है। यह कोई कल्पनात्मक कहानी नहीं, बल्कि घटित सच्चाई थी।

न्यायालय में विपक्ष के वकील राम मोहन जैसे लोग अपने पूर्वाग्रह से आदिवासियों का आंकलन करते हुए उन्हें अपराधी ठहराते हैं। केस में पुलिस की बातों और सबूतों के झूठे साबित होने के कारणवश चंद्रु के आग्रह पर आई जी पेरुमालसामी को केस के महानिरीक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता है। उच्च वर्ग द्वारा पहले से ही शोषित आदिवासियों का पुलिस वाले दोहरा दोहन करते हैं और उन्हें फंसाते हैं। धीरे-धीरे केस की सच्चाई सामने आती है और राजाकन्नू की मौत के बारे में पता चलता है।

कुछ दिन बाद पुलिस राजाकन्नू के घर आकर सेन्गोनी से कहती है कि राजाकन्नू, इरुटप्पन और मोसकुटटी जेल से भाग गए। सेन्गोनी को इसमें कुछ गड़बड़ लगा और वह पुलिस स्टेशन में उनके लापता होने की शिकायत दर्ज करने जाती है। लेकिन पुलिस शिकायत लेने को तैयार नहीं होती। बहुत दिन से जब अपने पति और रिश्तेदारों की कोई खबर न मिलने के कारण कुछ नेताओं की मदद से सेन्गोनी एफ आई आर तो फाईल कर पाती है। केस लड़ने के लिए कोई वकील तैयार नहीं होता। क्योंकि सेन्गोनी के पास वकील को देने के लिए पैसा नहीं था। वकीलों से उसे यही सुनने को मिला कि पैसा है तो कानून भी खरीदा जा सकता है। पैसे से कैसे पूरी न्याय व्यवस्था भी खरीदी जा सकती है इसी का जिक्र यहाँ मिलता है। निस्सहाय सेन्गोनी को किसी से वकील चंद्रु के बारे में पता चलता है, जो मानवाधिकार से संबंधित केस के लिए पैसा नहीं लेते थे। सेन्गोनी उनसे जाकर मिलती है और वकील चंद्रु से मदद करने की प्रार्थना करती है। चंद्रु एक निष्पक्ष विचारधारा रखने वाले वकील थे। चंद्रु सेन्गोनी की समस्याओं को समझते हुए

उसकी मदद करने का वादा करते हैं। सारे सबूत राजाकन्नू और उसके भाइयो के खिलाफ थे। क्योंकि पुलिस ने उनके खिलाफ झूठे सबूत और चश्मदीद गवाह भी बना लिए थे। एक ओर गाँव के मुखिया और पुलिस सेन्गेनी से केस वापस लेने को कहते हैं तो दूसरी ओर चंद्रु धीरे-धीरे केस की हर सुनवाई में पुलिस के घटिया चालों का पर्दाफाश करते हैं।

न्यायालय में विपक्ष के वकील राम मोहन जैसे लोग अपने पूर्वाग्रह से आदिवासियों का आंकलन करते हुए उन्हें अपराधी ठहराते हैं। केस में पुलिस की बातों और सबूतों के झूठे साबित होने के कारणवश चंद्रु के आग्रह पर आई जी पेरुमालसामी को केस के महानिरीक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता है। उच्च वर्ग द्वारा पहले से ही शोषित आदिवासियों का पुलिस वाले दोहरा दोहन करते हैं और उन्हें फंसाते हैं। धीरे-धीरे केस की सच्चाई सामने आती है और राजाकन्नू की मौत के बारे में पता चलता है। इरुटप्पन और मोसकुटटी का अभी भी कोई पता नहीं था। डिपार्टमेंट और पुलिसवालों की बदनामी न हो; इस कारण डी जी पी द्वारा सेन्गेनी को बुलवाया जाता है। उसे एक भारी रकम के बदले में केस वापस लेने को कहा जाता है, जिससे वह अपने बच्चों की परवरिश कर सके। सेन्गेनी इस बार चुप रहने को तैयार नहीं थी। वह अपनी आवाज उठाती है और कहती है "आने वाले इस बच्चे को मैं इसकी बाप से नहीं मिलवा पाऊँगी। पर मेरे पास दौलात बहुत होंगी। उससे मैं बच्चों का पेट भरूँगी। जब वे मुझे पूछेंगे कि मेरे पास इतने पैसे कहाँ से आए है तो कहूँगी तुम्हारे बाप के हत्यारों ने दिए है। क्या यहीं बताऊँगी अपने बच्चों को सर। हमें मार भी देंगे तो पूछने वाला कौन है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम अपने स्वाभिमान को बेच दे। यह केस हार भी जाए तो परवाह नहीं बच्चों से कह दूँगी कि यह लड़ाई हमारी है।" सेन्गेनी अपने पति को खो चुकी थी। अपने स्वाभिमान को सौदा कर उसे बेच देना हर हाल पर उसे मंजूर नहीं था। पुलिस की उच्च अधिकारी, जिनको सच्चाई का साथ देना चाहिए था, वह अपने और अपनी डिपार्टमेन्ट के नाम पर लगे कलंक को मिटाने के लिए एक आदिवासी महिला से न्याय का सौदा करते हुए नजर आते हैं।

अंत में इरुटप्पन और मोसकुटटी को ढूँढ निकाला जाता है। वकील चंद्रु और आई जी पेरुमालसामी द्वारा सारे सच को बाहर लाया जाता है। राजाकन्नू बेकसूर था इसकी खबर पुलिस को थी। सच को छुपाते हुए उन्होंने असली चोरों के साथ धंधा किया और उनसे रिश्वत लिया। केस जल्दी खत्म करने का ऊपर से प्रेशर था। बेचारे राजाकन्नू पर सारा इलजाम डाल दिया गया। जब राजाकन्नू ने नहीं माना तो उसे सब-इन्स्पेक्टर गुरुमूर्ति ने इतने बेरहमी से मारा और मारता ही गया कि छाती की हड्डी टूटने के कारण राजाकन्नू की मृत्यु हो जाती है। इरुटप्पन भी मार खाकर बेहोश हो जाता है। इसे नाटक समझकर उन्हें जगाने के लिए वीरस्वामी और किरुबाकरण उनके आँखों में मिर्ची पाउडर डाल देते हैं। जलन से इरुटप्पन रोता और तड़पता है। राजाकन्नू नहीं उठता, क्योंकि पुलिस की निष्ठुरता को सहते-सहते अब उसमें जान बाकी नहीं था। राजाकन्नू के मौत होने का पता चलते ही फंस जाने के डर से तीनों पुलिस वाले मिलकर उसके शव को दूर जंगल के पास एक सड़क किनारे फेंक देते हैं ताकि देखने वाले को लगे कि यह

एक एक्सीडेंट है। सारे सबूतों को मिटा दिया जाता हैं और झूठे सबूत और गवाहों को बनाकर इरुटप्पन और मोसकुटटी को भी छुपा दिया जाता हैं। चंद्रु न्यायालय में अपराधियों को कड़ी से कड़ी सजा देने का अनुरोध करता है। तीनों पुलिस वालों को गिरफ्तार किया जाता हैं, सेन्गोनी को गाँव के बीचों-बीच घर बनाने के लिए जगह दी जाती है। सेन्गोनी को तीन लाख, इरुटप्पन और मोसकुटटी को दो-दो लाख रुपए का मुआवजा दिया जाता हैं। इस फिल्म में पुलिस वाले, गाँव के मुखिया, सरपंच और उनकी पत्नी आदि शोषक वर्ग के रूप में नजर आए जो आदिवासियों के साथ भेदभाव करते हैं। जबकि दूसरे वर्ग में वकील चंद्रु, आई जी पेरुमालसामी और मैत्र जैसे लोग हैं, जो आदिवासियों के हक की लड़ाई में शामिल होकर उनके अधिकारों को उन्हें दिलाने में मदद करते हैं। वे निष्पक्षता और समानता में विश्वास रखते हैं।

यह कहानी एक आदिवासी महिला के न्याय के लिए अपनी हक की लड़ाई है। अंत में सेन्गोनी को इंसाफ मिल जाता है। ऐसी कितनी ही सेन्गोनियाँ रही होगी, जो न्याय से वंचित रहे हैं और जिन्हें मुख्य धारा समाज द्वारा चुप कराया होगा। यह फिल्म आदिवासियों पर हो रहे जातिगत अन्याय, भेदभाव, अत्याचार, सत्ता की संस्थागत दुरुपयोग, कानूनी व्यवस्था में अन्याय और पुलिस की बर्बरता पर सवाल उठाता है। फिल्म 'जय भीम' किसी के धर्म, जाति, वर्ग, सामाजिक और आर्थिक स्थिति देखे बिना न्याय सभी के लिए सुलभ होने का तथा आदिवासियों को इंसान के रूप में देखने का संदेश देती है। ऐसी फिल्में आदिवासियों को कानून प्रणाली के प्रति आशा और विश्वास को प्रेरित करते हुए उनके समुदायों में जागरूकता को बढ़ावा देने में निर्णायक साबित होता है।

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

1. रमणिका गुप्ता, आदिवासी अस्मिता का संकट, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ. 45
2. टी.जे. ग्नानावेल, जय भीम (फिल्म), 2021
3. वहीं
4. डॉ. शेख शहेनाज बेगम अहेमद, आदिवासी साहित्य : स्वरूप एवं विश्लेषण, समता प्रकाशन, कानपुर, 2014, पृ. 186
5. टी.जे. ग्नानावेल, जय भीम (फिल्म), 2021
6. वहीं

नेहा जॉनी, शोध छात्र, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कोच्ची, केरल - 682022
ई-मेल : nehajohny1999@gmail.com

रामकथा साहित्य में प्रचलित मुस्लिम रामायण

(मुस्लिम संस्करणों के विशेष संदर्भ में)

दीपेंद्र कुमार शर्मा

मुगल बादशाहों ने रामायण-महाभारत साहित्य के उर्दू और फारसी में अनुवाद को प्रोत्साहित किया। बादशाह अकबर के कहने पर अब्दुल कादिर बदौनी ने वाल्मीकि की रामायण का सन् 1584 और 1589 के बीच पद्य रूप में फारसी में अनुवाद किया। शाहजहां के शासनकाल के दौरान एक गद्य अनुवाद पूरा हुआ। जहांगीर के शासन के दौरान, सदुल्लाह कैरानावी तहकल्लु समसिहा द्वारा रचित रामायण -ए-मसिही बेहद लोकप्रिय हो गया। इस काम में, पैगंबर ईसा 'यीशु' और उनकी माँ मरियम 'मैरी' जैसे पात्रों को रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया था। ईसा और मरियम मुसलमानों के विश्वास का एक आंतरिक हिस्सा रहे हैं जैसे वे ईसाइयों के लिए हैं। रामायण का कोई अन्य संस्करण अभी तक खोजा नहीं गया है, जहाँ यीशु और मैरी को चित्रित किया हो। सदियों से, भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच ऐसे कई सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए हैं।

सारांश - सनातनी सरजमी पर हिंदुओं की राम भक्ति परंपरा सदैव संयुक्त व साझेदारी की रही है। हिंदू धर्म की भक्ति साहित्य परंपरा में विभिन्न धार्मिक ग्रंथों और रचनाओं की निजी मनोभाषिकता से अवतरित नए संयुक्त ग्रंथों का अवतरण प्रायः होता ही रहा है। रामभक्ति की समसरता एवं विविध धार्मिक बंधुओं की मिश्रित व संयुक्त मनोभाषिक भक्ति की साझेदारी व श्रद्धा से उत्पन्न नवीन रामकथाओं के संस्करणों की एक लंबी कतार आज मौजूद है। रामकथा के विरक्त संस्करणों व रचनाओं के आधार में चाहे विविध धर्म के रचनाकारों की संयुक्त भक्ति एकता रही हो अथवा सामाजिक भेदभाव से ऊपर भक्ति के गठजोड़ की मनोभाषिकता। नवीन कथा का प्रार्दुभाव तो निश्चित ही हुआ है। इसी तरह रामकथा के कुछ संस्करणों में मुस्लिम रचनाकारों व उनकी राम के प्रति भक्ति की मनोभाषिकता ने अपनी श्रद्धा से मुस्लिम रामायणों का एक नवीन रूप प्रदान कर नए रामकथा संकलन में अनूठा स्तंभ स्थापित किया है। इस आलेख में प्रचलित मुस्लिम रामायणों के संस्करणों पर प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द - मुस्लिम, रामायण, रामभक्ति, रचनाकार, मिश्रित, रामकथा, संस्करण, श्रद्धा, मनोभाषिक, संस्करण

आलेख- रामभक्ति साहित्य में मुस्लिमों का सदैव से सहयोगात्मक रवैया रहा है। मुस्लिम बादशाहों ने भी रामभक्ति को महत्व दिया है। रामकथा साहित्य अथवा रामायण की बहुस्वरता को उसकी एक सीमा के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि अनंत संभावना के दायरे के रूप में देखा जाना चाहिए। भारत की अनगिनत जातियाँ और धर्म, जो भारत में पैदा हुए या फैल गए, वे सभी रामायण से अलग-अलग हद तक प्रभावित हुए हैं। राम की कहानी को हिंदू, बौद्ध, जैन, मुस्लिम, दलित और आदिवासी संस्करणों में विभिन्न रूपों में अपनाया गया है। न केवल भारत में बल्कि इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, जापान, पाकिस्तान और बांग्लादेश सहित अन्य देशों में मुसलमानों के पास इस कहानी के अपने संस्करण हैं। हालांकि रामायण की यह कहानी कुछ जगहों पर इस्लामी धर्मशास्त्र के भीतर अच्छी तरह फिट बैठती है, तो दूसरी जगहों पर यह एक सांस्कृतिक और साहित्यिक परंपरा का हिस्सा है। यद्यपि कि इन कई संस्करणों पर अधिक गंभीर शोध-कार्य अभी तक नहीं किया गया है।

इस्लाम हालांकि अरब प्रायद्वीप में विकसित हुआ, लेकिन वह हजरत मुहम्मद (570-632 ईसवी) के समय में ही भारत में फैल गया। पिछली सहस्राब्दी में, भारत में इस्लाम हिंदू धर्म के साथ एक बहुत गहरे सांस्कृतिक आदान-प्रदान में लगा हुआ है। भक्ति आंदोलन और सूफीवाद इसी समन्वयवाद का हिस्सा थे। उदाहरण के लिए, कबीर के गुरु, चौदहवीं शताब्दी के कवि-तपस्वी रामानंद (रामानंद कबीर के गुरु थे, इस मिथक को हिंदी के कई अध्येताओं ने तथ्यात्मक तौर पर कब का खारिज कर दिया है, बहुजन वैचारिकी के अध्येता चंद्रिका प्रसाद 'जिज्ञासु' ने विस्तार से इस संदर्भ में लिखा है, जिसकी पुष्टि कंवल भारती और अन्य अध्येता भी करते हैं- संपादक) ने दलितों और मुसलमानों को अपने शिष्यों के रूप में स्वीकार किया। सत्रहवीं शताब्दी के धार्मिक विद्वान जुल्फकार मुबेद लिखते हैं कि जब भक्ति आंदोलन लोकप्रिय था, उस समय कुछ मुसलमान विष्णु की पूजा करते थे।

इस्लामिक परंपरा में मुसलमानों के एक वर्ग द्वारा राम को मुसलमानों के पैगंबर के रूप में स्वीकार किया गया है। इस्लामी मान्यता के अनुसार मुहम्मद से पहले एक लाख चौबीस हजार से अधिक और पैगंबर हुए हैं। हालांकि कुरान में, इन पैगंबरों (नबियों) में से केवल 25 के नामों का उल्लेख है और उनके विवरण दिए गए है। कुरान में यह भी घोषणा है कि अलग-अलग देशों और समुदायों के लिए अलग-अलग पैगंबरों की व्यवस्था की गई है। हालांकि, मुसलमानों का मानना है कि इनमें से कोई भी पैगंबर ईश्वर या ईश्वर के पुत्र नहीं थे, लेकिन वे केवल मानव थे। कुरान में यह भी कहा गया है कि दूतों-पैगंबरो को अलग-अलग समय पर अलग-अलग राष्ट्रों और जातियों में भेजा गया था। उनके प्रति सम्मान के साथ समान व्यवहार करना इस्लामिक विश्वास का एक आंतरिक हिस्सा है।

भारत में कुछ ऐसे मुसलमान हैं जो कृष्ण और राम को ऐसे ही पैगम्बर मानते हैं। कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक तर्क दिया है कि हो सकता है राम की कथा की उत्पत्ति अरब जगत में हुई

हो। अपनी पुस्तक थूलिका चलनंगल में अध्येता के बलराम पन्निकर ने सुझाव दिया है कि प्राचीन मिस्र में या इसके आसपास के क्षेत्र में सूर्य की आराधना की परंपरा ने रामायण के सृजन को जन्म दिया। पन्निकर लिखते हैं कि 'रामायण' का शाब्दिक अर्थ राम के जीवन की पद्धति है और यह उस शब्द का रूपांतरण है जो सूर्य-पूजा का जिक्र करता है। उनका मानना है कि भगवान के लिए अरबी शब्द 'रब्बी' का मूल 'रवि' के समान है, जो सूर्य के लिए इस्तेमाल होने वाला एक संस्कृत शब्द है और एक अन्य अरबी शब्द 'रहमान' है, जिसका इस्तेमाल भगवान को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। यह राम के उच्चारण से जुड़ा हुआ है।

अध्येता एम. वेंकट रत्नम के अनुसार, दशरथ चौदहवीं शताब्दी ईसा पूर्व में एक मितानी राजा तुशरत थे, जबकि राम रामसेस द्वितीय थे, जो एक फैरो थे, जिन्होंने तेरहवीं शताब्दी ईसा पूर्व में मिस्र पर शासन किया था। अपनी पुस्तक 'द ग्रेटेस्ट फैरो ऑफ इजिप्ट' में, रत्नम इस तथ्य की ओर भी इशारा करते हैं कि वाल्मीकि की रामायण आर्य साहित्य है, और आर्यों की उत्पत्ति मध्य एशिया में हुई थी। विद्वानों ने प्राचीन हदीस की पांडुलिपियों में कृष्ण पर मुहम्मद के कथनों का दस्तावेजीकरण किया है। बारहवीं शताब्दी के इस्लामी विद्वान अबू मंसूर अल-दालामी ने अपनी कृति फिरदौस-उल-अकबर और तारिक-उल-हमदान में मुहम्मद को यह कहते हुए उद्धृत किया, 'भारत में एक नबी था, जो काले रंग का था, और जिसका नाम कहिन (कृष्ण) था।' इस कथ्य को अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है।

मुगल बादशाहों ने रामायण-महाभारत साहित्य के उर्दू और फारसी में अनुवाद को प्रोत्साहित किया। बादशाह अकबर के कहने पर अब्दुल कादिर बदौनी ने वाल्मीकि की रामायण का सन् 1584 और 1589 के बीच पद्य रूप में फारसी में अनुवाद किया। शाहजहां के शासनकाल के दौरान एक गद्य अनुवाद पूरा हुआ। जहांगीर के शासन के दौरान, सदुल्लाह कैरानावी तहकल्लु समसिहा द्वारा रचित रामायण-ए-मसिही बेहद लोकप्रिय हो गया। इस काम में, पैगंबर ईसा 'यीशु' और उनकी माँ मरियम 'मैरी' जैसे पात्रों को रूपक के रूप में प्रस्तुत किया गया था। ईसा और मरियम मुसलमानों के विश्वास का एक आंतरिक हिस्सा रहे हैं जैसे वे ईसाइयों के लिए हैं। रामायण का कोई अन्य संस्करण अभी तक खोजा नहीं गया है, जहाँ यीशु और मैरी को चित्रित किया हो। सदियों से, भारत में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच ऐसे कई सांस्कृतिक आदान-प्रदान हुए हैं। यह कला, परंपराओं, भाषा, खान-पान और यहां तक कि पहनावे की शैलियों में भी देखा जा सकता है। केरल के मालाबार क्षेत्र में, हिंदू और मुसलमान ऐतिहासिक तौर पर परस्पर सौहार्द के साथ रहते हैं। यह परंपरा आज भी जारी है और इस प्रकार समन्वयवाद केरल की मुस्लिम और हिंदू दोनों संस्कृतियों में गहराई से अंतर्निहित है।

थेय्यम में इस्लाम का प्रभाव देखा जा सकता है, जो हिंदू मंदिरों में पूजा का अनुष्ठानिक नृत्य रूप है। कन्नूर और कासरगोड जिलों में हिंदू मंदिरों में 'मापीला थेय्यम' का प्रदर्शन किया जाता है। उन्हें 'उम्माची थेय्यम' और 'मुकरी थेय्यम' जैसे नामों से जाना जाता है। मालाबार के

मुसलमान 'उम्माची' शब्द का प्रयोग 'माँ' के लिए करते हैं। उम्माची थेय्यम मालाबार में मुस्लिम महिलाओं द्वारा पहनी जाने वाली वेशभूषा में किया जाता है। 'मुकरी' वह व्यक्ति है, जो मस्जिदों में नमाज पढ़ने के लिए अजान करता है। मुकरी थेय्यम में नृत्य की शुरुआत प्रार्थना के लिए पुकार से होती है। इस सांस्कृतिक आदान-प्रदान में मप्पिला रामायण का सृजन हुआ। इसने मप्पीला गीतों का रूप ले लिया है, और यह मौखिक या पाठ्य दोनों रूपों में हो सकता है। शुरुआती दिनों में, मप्पिला गीत अरबी-मलयालम में लिखे गए थे, जिसमें मलयालम शब्दों को लिखने के लिए अरबी लिपि का उपयोग करना शामिल था। अरबी-मलयालम के एक शोधकर्ता के के अब्दुल करीम के अनुसार, अरबी-मलयालम में छह हजार से अधिक काव्य ग्रंथ और बारह सौ गद्य ग्रंथों की रचना की गई है। अष्टांग हृदयम और शीलावती जैसी प्रसिद्ध संस्कृत कृतियों और अरबी, फारसी और उर्दू में कई क्लासिक ग्रंथों का अरबी-मलयालम में पिछली शताब्दी में अनुवाद किया गया था।

लोक गीतकार टी.एच. कुन्हीरमन नांबियार, लोक गायक हसनकुट्टी की मदद से मप्पिला रामायण के लोक गीतों को एकत्रित और संकलित करने वाले पहले व्यक्ति थे, जिनकी 2004 में मृत्यु हो गई। 143 पंक्तियों की उनकी कृति मालाबार के मुस्लिम समुदाय के जीवन की पृष्ठभूमि में राम की कहानी को प्रतिरोपित करती है। इसके पात्र मप्पिल लोगों की बोली, पोशाक, भोजन, रीति-रिवाजों और मान्यताओं को अपनाते हैं। यह केवल पात्रों के नाम नहीं हैं, जो स्थानीय रूपों में बदल जाते हैं। दशरथ के विवाह को निकाह कहते हैं। मौत को संदर्भित करने के लिए मलयालम मारनम के बजाय अरबी शब्द मौत का उपयोग किया जाता है। दशरथ को राम का बप्पा कहा जाता है, जो पिता के लिए मप्पिला शब्द है। जबकि रावण की बहन सूर्पनखा को पेंगलुम्मा कहा जाता है, जिसे मप्पिला पोशाक पहने दिखाया गया है। रामायण के पात्र कोझी और पाथल का सेवन करते हैं। कोझी एक प्रकार की चिकन बिरयानी और पाथल एक भाप से तैयार मालाबार व्यंजन है। इस्लामिक दौर में मुस्लिम रचनाकारों द्वारा रामभक्ति साहित्य में रचित मुस्लिम संस्करणों को निम्न प्रकार से किया जा रहा है-

मप्पिला रामायण - केरल के मालाबार क्षेत्र में रहने वाले मप्पिला मुसलमानों ने राम और रावण की कहानी को अपनी मनोभाषिक संस्कृति के सांचे में ढाला। वे राम को लामा और रावण को लवना कहते हैं। इन पंक्तियों में आया अल्लाह का संदर्भ उनके इस्लामी विश्वास प्रणाली की ओर इशारा करते हैं। मप्पिला रामायण, रामायण के विभिन्न पाठों के एक विशाल साहित्य-संसार का केवल एक हिस्सा है, जिसमें दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया में रामायण के विभिन्न इस्लामी संस्करण शामिल हैं। मलयालम से अनुवादित ये पंक्तियाँ मप्पिला रामायण के नाम से ख्याति रामायण की कहानी का एक हिस्सा है। जैसा कि अनगिनत अन्य स्थानों और समुदायों ने किया है,

जैसा राजा दशरथ के प्रिय पुत्र लामा ने चाहा,
उन्होंने कमल की शहद जैसी सीता से विवाह किया।
पर एक दिन लंका के शासक दस नाक वाले राजा लावन ने,
बेशर्मी से सीता के सौंदर्य का बखान किया, नारीत्व का रत्न कहा,
'आप जवान लड़कियों में मोती हैं, जब से हम आपको लंका लाए हैं,
कितने दिन हो गए, मेरे मोती, मेरी दीप्तिमान फूलों की माला!
मेरी दो आँखों में तुम्ही हो, मैं तुम्हारी ही शपथ लेता हूँ, मेरी प्यारी,
मेरी ऐसी इच्छा है कि मैं तुम्हें देखूं और तुम्हें बताऊं,
मुझे क्या चाहिए ।।।
पर जब ऐसी स्त्री को मेरे साथ आनंद के सागर में प्रवेश करना चाहिए था-
क्यों, अल्लाह! आपने उस लामा का साथ क्यों दिया?

अध्येता ए. के. रामानुजन ने अपने निबंध 'थ्री हंड्रेड रामायण : पाँच उदाहरण और अनुवाद पर तीन विचार' में लिखा है, राम की कहानी के अनगिनत लिखित और मौखिक संस्करण छोटी धाराओं की तरह हैं, जो एक शक्तिशाली नदी की ओर बहती हैं जो कि रामायण का साहित्य-संसार है। हालांकि वाल्मीकि की रामायण अक्सर मुख्यधारा की कल्पना पर कब्जा कर लेती है, यह धारणा कि कोई एक संस्करण दूसरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ या अधिक प्रामाणिक है, इसे आधुनिक अध्येताओं द्वारा हर एक रामायण का निश्चित काल निर्धारण न होने के बावजूद भी खारिज कर दिया गया है।

मप्पिला रामायण का पहला गीत राम की कहानी का संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत करता है। पहली दो पंक्तियाँ हैं : 'वह गीत जिसे दाढ़ी वाले संत ने बहुत पहले गाया था। इस विवरणात्मक गीत को हमारी रामायण की तरह देखा जाए।' मूल रूप में इस्तेमाल किए गए 'दाढ़ी वाले संत' शब्द, वाल्मीकि को संदर्भित करता है, जो औलिया है। औलिया सूफी साधकों के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है। गीत आगे बढ़ता है : 'हमारे बैठ कर प्रतीक्षा करने का गीत, कड़कड़कम के महीने के लंबे इंतजार में ध्वह गीत, जिसे हम अपनी कानों में उंगलियाँ डालकर गाएँगे।' केरल के हिंदू घरों में, कड़कड़कम के महीने में रामायण का पाठ होना आम बात है - जो जुलाई और अगस्त महीनों के बीच पड़ता है। एक अन्य गीत में, प्यार करने वाली सूर्पनखा लामा के लिए भावप्रवण प्रणय निवेदन करती है। जब वह शादी का प्रस्ताव रखती है, तो वह (लामा-राम) उसे बताते हैं कि वह पहले से ही शादीशुदा है और इसलिए दोबारा शादी नहीं कर सकते। वह जवाब देती है कि शरीयत के अनुसार, पुरुषों को अधिकतम चार पत्नियाँ रखने की अनुमति है और विनती करती है कि लामा उसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें।

ईशाल रामायण-केरल के मुसलमानों के बीच लोकप्रिय रामायण का एक लिखित संस्करण, ईशाल रामायण है। यह ओट्टमालियाक्कल मुथुकोया थंगल द्वारा रचित एक कविता

है। ओट्टमालियाक्कल मुथुकोया थंगल को ओम करुवरकुंडु के नाम से भी जाना जाता है, जो केरल के मलप्पुरम जिले के करुवरकुंडु के मूल निवासी हैं। 'ईशाल' जिसका अर्थ है धुन, मप्पीला गीत में एक प्रकार का मीटर (पैमाना) है। करुवरकुंडु एक सफल मप्पिला कवि हैं, जिन्होंने अब तक एक हजार से अधिक गीत लिखे हैं और वे अरबी के लंबे समय तक शिक्षक रहे हैं। ईशाल रामायण में, करुवरकुंडु वाल्मीकि की रामायण को मप्पिला गीत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसके 140 गीतों की रचना मप्पिला गीतों की तुकबंदी की पद्धति के अनुसार की गई है, जिनमें एक खास तरह के राग और लय हैं। गीतों में विभिन्न प्रकार की धुनें होती हैं। ईशाल रामायण में लगभग सभी प्रमुख धुनों का प्रयोग किया गया है। ईशाल रामायण में कई अरबी वाक्यांश आते हैं। कुछ दृश्यों में, इस्लामी इतिहास की घटनाओं को सामने लाया जाता है। उदाहरण के लिए, राम और रावण के बीच की लड़ाई सातवीं शताब्दी के बदर की लड़ाई की ओर इशारा करती है, जो मुहम्मद की सेना और मक्का के कुरैश के बीच लड़ी गई थी। ईशाल रामायण में केरल के मुसलमानों में प्रचलित एक कला रूप, ओप्पना का भी उपयोग किया गया है। ओप्पना मप्पिला गीत की एक निश्चित धुन का उपयोग करता है और इसमें एक नृत्य शामिल होता है जो आमतौर पर शादियों के दौरान किया जाता है। ईशाल रामायण के कई गीतों को इस तरह से सुनियोजित किया गया है कि उन्हें ओप्पना के लिए भी गाया जा सकता है।

केरल में पहले भी इसी तरह के प्रयास किए जा चुके हैं। 1922 में एक इस्लामी विद्वान और पलक्कड़ के मूल निवासी करूमन कुरिक्कल ने नवीन रामायण लिखी। इस 720 पृष्ठ की कविता की प्रस्तावना हिंदू पंडित वदनूर वडक्केपट्टू नारायणन नायर द्वारा लिखी गई थी। तमिल रामायण, रामावतारम्, जिन्हें कंबर रामायण भी कहा जाता है, के दो उल्लेखनीय उन्नायक प्रसिद्ध पुनर्लेखक मुस्लिम थे- अठारहवीं शताब्दी के तमिल कवि उमर पुलवर और राजनेता एम. एम. इस्माइल। पुलावर एक प्रमुख सूफी कवि थे और इस्लामी विद्वान थे, जिन्होंने सीरा पुराणम् भी लिखा था, जो मुहम्मद की जीवनी थी, जिसे विद्वानों ने कंबर रामायण से प्रभावित पाया है। इस प्रकार मुसलमानों ने सदियों से रामायण को आत्मसात करने और उसकी व्याख्या करने की कोशिश की है। आज भी रामलीला में भाग लेकर और रामायण के कथानक को उसके खास कला रूपों में स्वीकार कर यह प्रयास जारी है। रामायण की साहित्यिक परंपरा पूरे एशिया में फैली हुई है। इंडोनेशिया, मलेशिया, थाईलैंड, श्रीलंका, चीन, वियतनाम, जापान, पाकिस्तान और बांग्लादेश सहित देशों के रामायण के अपने-अपने संस्करण हैं। इनमें से कई जगहों पर कहानी को एक भारतीय प्राचीन कथा के रूप में नहीं देखा जाता है, बल्कि एक ऐसी कहानी के रूप में देखा जाता है, जो उनके अपने क्षेत्रों में घटित होती है। प्रत्येक संस्करण में अपने-अपने भौगोलिक स्थानों, लोगों और समुदायों के संदर्भ हैं। प्रत्येक संस्करण में उनके समुदाय की मान्यताएँ और रीति-रिवाज हैं, जो उनके रामायणों में व्याप्त हैं। थाईलैंड में अयुथ्थाय नामक एक शहर है, जो अयोध्या का एक रूपांतर है। इस देश में रामायण के प्रभाव को दर्शाया जाता है।

कोठानी रामायण-कोथन की रामायण का अपना एक संस्करण है, जिसे कोठानी रामायण कहा जाता है। कोथन, जो पूर्वी क्षेत्रों में एक जगह है, जो पहले तुर्किस्तान था। यह अनुमान लगाया गया है कि कोठानी रामायण नौवीं शताब्दी में किसी समय लिखी गई थी। इस संस्करण में, राम और लक्ष्मण दोनों सीता से विवाह करते हैं। कोथान एक ऐसा क्षेत्र था, जहाँ पुराने समय में बहुपतित्व की प्रथा प्रचलित थी। जिस प्रकार वर्षा जिस भूमि पर पड़ती है, उसका रंग ग्रहण कर लेती है, उसी प्रकार रामायण कथाओं ने प्रत्येक भूमि के गुणों को ग्रहण कर लिया। कोठानी संस्करण तिब्बती रामायण की कहानियों के समान है। इसके अनुरूप, यह भी देखा जा सकता है कि बौद्ध क्षेत्रों तक पहुँचने वाली रामायण की कहानियों में बौद्ध विषय हैं।

इंडोनेशिया में राम कथा प्राचीन काल से चली आ रही है। हालांकि इंडोनेशियाई रामायण की कहानी और भारतीय रामायण के बीच कई समानताएँ हैं। इंडोनेशिया में मुसलमानों का बहुमत है और उन्हें अक्सर रामायण की कहानी में दर्शाया जाता है। इसलिए इंडोनेशियाई रामायण अन्य रामायण साहित्य से आश्चर्यजनक रूप से भिन्न है। इंडोनेशिया में दो तरह की रामायण कथाएँ प्रचलन में हैं। एक जावानीस रामायण है, जो वाल्मीकि की रामायण से काफी मिलती-जुलती है और दूसरी आधुनिक संस्करण है। इंडोनेशियाई रामायणों की एक सामान्य विशेषता राम के प्रति भक्ति का अभाव है। राम कहानी से संबंधित इंडोनेशिया में सबसे पुराना साहित्यिक कार्य काकाविन रामायण है। यह ग्रंथ दसवीं शताब्दी में लिखा गया माना जाता है। इसके रचयिता के संबंध में अधिक स्पष्टता नहीं है। अध्ययनों से पता चलता है कि काकाविन रामायण किसी एक लेखक की कृति नहीं है, बल्कि इस पाठ को समय के साथ कई लेखकों द्वारा जोड़ा और संशोधित किया गया है। विद्वान मनमोहन घोष लिखते हैं कि इस पाठ का स्रोत सातवीं शताब्दी की कविता भट्टिकाव्य थी, न कि वाल्मीकि की रामायण। वाल्मीकि, जिन्हें संस्कृत साहित्य का पहला कवि माना जाता है और पहले इंडोनेशियाई कवि माने जाने वाले सुनन कलिजाग की जीवन कथाओं में कई समानताएँ हैं। एक मुस्लिम उपदेशक कलिजाग को आदिवली की उपाधि मिली थी। आदिवली यानी पहला कवि। सूफी संतों के लिए अक्सर प्रत्यय 'वली' लगाया जाता है।

पौराणिक कथा के अनुसार, संन्यासी के रूप में अवतरित होने से पहले वाल्मीकि एक शिकारी हुआ करते थे, जो लूट और हत्या भी करते थे। एक दिन घने जंगल में उन्होंने दो संन्यासियों को लूटने का प्रयास किया। लेकिन वे उनके (संन्यासियों) व्यक्तित्व के तेज का सामना नहीं कर पाए और संन्यासियों ने उनके व्यक्तित्व को रूपांतरित कर दिया। वे एक महान तपस्वी (साधक) और एक महान ऋषि बन गए। यह भी माना जाता है कि वाल्मीकि ने सप्तऋषियों की उपस्थिति में आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। सात ऋषि, जिनकी हिंदू ग्रंथों में चर्चा एवं प्रशंसा की गई है।

कलिजाग का आध्यात्मिक जीवन से पहले का जीवन वाल्मीकि के समान था। जावानीस लोककथाओं के अनुसार, कलिजाग एक ठग और डाकू हुआ करते थे। माना जाता है कि वह एक चतुर ठग थे। एक दिन, उन्होंने इस्लामी दर्शन के शिक्षक सुनन बोनांग नामक एक संन्यासी को लूट लिया। बोनांग ने कलिजाग को इस्लाम के सिद्धांत समझाए, जिससे उनका व्यक्तित्व रूपान्तरित हुआ। कलिजाग ने इस्लाम स्वीकार किया, सूफीवाद का पालन करना शुरू किया और माना जाता है कि उन्होंने इंडोनेशिया में इस्लाम के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वाल्मीकि की तरह, कलिजाग के सही समय का पता लगाना असंभव है। ऐसा माना जाता है कि इस्लाम इंडोनेशिया में नौ वलियों द्वारा फैलाया गया था, जिनमें से कलिजाग पहले थे। कलिजाग ने वायंग के लिए रामायण और महाभारत की कहानियों की भी रचना की। एक शास्त्रीय जावानीस कठपुतली नाटक, जो कठपुतली द्वारा फेंकी गई छाया का उपयोग पीछे से प्रकाशित एक पारभासी स्क्रीन के विपरीत करता है। माना जाता है कि कलिजाग ने इस शैली का आविष्कार किया था।

इंडोनेशिया में रामायण के कई संस्करण ऐसे भी हैं जो उतने पुराने नहीं हैं। इनमें सेराथु कंदम और रामकेलिंग शामिल हैं, जिनका जावानीस नाटक पर मौलिक प्रभाव पड़ा है। बाली में, वायंगा वोंगा नाटक पूरी तरह से रामायण के दृश्यों से बना है। रामायण के आधुनिक रूप इंडोनेशिया से वियतनाम, थाईलैंड और म्यांमार जैसे क्षेत्रों में फैल गए हैं। इन रूपों की खास विशेषता उनमें निहित इस्लामी विषय हैं। सेराथु कंदम में आदम, मुहम्मद और अल्लाह पात्रों के रूप में दिखाई देते हैं। राम और रावण के युद्ध के बीच, जिब्रील युद्ध से बचाने के लिए वार्ता का हिस्सा बनते हैं, जिब्रील महादूत हैं जो ईश्वर और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करते हैं। इंडोनेशियाई मुसलमान रामायण को एक सांस्कृतिक परंपरा और अपनी साहित्यिक विरासत का हिस्सा मानते हैं। वे रामायण के मंचन और अन्य कलात्मक प्रयासों में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं।

एक और देश जहाँ रामायण की जड़ें बहुत गहरी हैं, वह है फिलीपींस। इस क्षेत्र के कई संस्करणों में इस्लामी धाराएँ मौजूद हैं। यह उनमें स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, जिसे भारतविद् जुआन आर। फ्रांसिस्को ने 1968 में खोजा था। इस पाठ में रावण प्रमुख व्यक्ति है, और इसका नाम लवाना है, जैसा कि मप्पिला रामायण में है। लवाना के आठ सिर हैं और वह पुलु बंदियार के सुल्तान का पुत्र है। अपने बेटे लवाना के आक्रामक कृत्यों को सहन करने में असमर्थ, सुल्तान उसे एक द्वीप पर निर्वासित कर देता है। रामायण का एक और संस्करण, हिकायत महाराजा रावण है, जो रावण के वनवास से शुरू होता है। तपस्या के रूप में रावण अपना सिर अग्नि की वेदी को समर्पित करता है। बारह साल बाद अल्लाह आदम को यह पूछने के लिए भेजते हैं कि रावण क्या चाहता है। रावण चारों लोकों पर अधिकार करने की इच्छा व्यक्त करता है और आदम से कहता है कि यदि उसकी इच्छा पूरी हो जाती है तो वह क्रोध को त्याग देगा। फिलीपींस में मुसलमानों के बीच प्रसारित होने वाली सबसे पहली रामायण की कहानियाँ

मौखिक रूप में थीं। लिखित रूप में दर्ज होने के बाद भी, मौखिक संस्करण अभी भी व्यापक रूप से लोकप्रिय हैं।

मलेशिया की भी रामायण और महाभारत की अपनी समृद्ध साहित्यिक परंपरा है। इन कहानियों ने लोगों के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को गहराई से प्रभावित किया है। लिखित रूप में महाभारत, जिसे हिकायत युदा के नाम से जाना जाता है, मलेशिया में भी उपलब्ध है। मलेशियाई संस्कृति और भाषा का भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा से गहरा संबंध है। मलेशिया एक ऐसा राष्ट्र है, जहाँ कभी हिंदू पौराणिक कथाओं की जड़ें गहरी थीं। राम की कहानी का न केवल उसके साहित्य पर, बल्कि उसके विभिन्न प्रकार के रंगमंच पर भी प्रभाव पड़ा है। पश्चिमी मलेशिया में कथा के क्षेत्र में, वायंग कुलित नामक छाया-कठपुतली नाटक रामायण पर आधारित है। इंडोनेशियाई संस्करणों की तरह मलेशियाई लोगों में भी राम के प्रति भक्तिभाव की कमी है और वे इस्लाम से गहराई से प्रभावित हैं।

मलेशियाई मुसलमानों के लिए रामायण पर आधारित विभिन्न नाटक केवल एक कला रूप हैं। मलेशिया के पूर्व उप प्रधानमंत्री अनवर इब्राहिम ने एक साक्षात्कार में कहा, 'मैं एक मुसलमान हूँ, जो दिन में पांच बार नमाज अदा करता हूँ। हमारे सांस्कृतिक उत्सवों में आपकी रामायण और महाभारत की निर्णायक भूमिकाएँ हैं। मलेशिया के अधिकांश हिस्सों में मुसलमान हैं, जो नियमित रूप से उनका पाठ करते हैं। हमारी महाभारत और रामायण शायद वैसी न हों जैसी आप भारत में उसे देखते हैं। मुझे यह बताया गया है कि मलेशिया में उन्हें 'इस्लामिक रूप से' फिर से लिखा गया है। तथ्य यह है कि हमने अपनी सीमाओं के भीतर इन मिथकों को अपनी संस्कृति के हिस्से के रूप में विकसित किया है।" मलेशिया में इस्लाम के आगमन से पहले की रामायण की कुछ पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। सातवीं शताब्दी से पहले के रामायण से संबंधित कुछ पत्थर के शिलालेख हैं। कई संस्करण ऐसे भी हैं, जो वाल्मीकि रामायण के प्रभाव को दर्शाते हैं। हालांकि, मलेशिया में इस्लाम के प्रसार के साथ, पुराने धर्म, संस्कृति और साहित्य का काफी हद तक इस्लामीकरण कर दिया गया है।

हिकायत सेरी राम - तेरहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी के बीच लिखे गए हिकायत सेरी राम में कई इस्लामी अवधारणाएँ शामिल हैं जैसे कि अल्लाह और आदम नबी का जिक्र है, जिन्हें इस्लाम में पहला मानव और पहला पैगंबर माना जाता है। हिकायत सेरी राम के सात भाग हैं। पहले भाग में रावण को उसके पिता द्वारा उसके कुकर्मों के लिए वनवास दिया जाता है। फिर वह सिंहल द्वीप पर पहुँचता है और तपस्या करता है। पैगंबर आदम और मुहम्मद के आग्रह पर, अल्लाह उसे चार दुनियाओं पर अधिकार देते हैं - स्वर्ग, नरक, पृथ्वी और समुद्र। हालांकि, अल्लाह शर्त रखते हैं कि रावण न्याय के साथ इन क्षेत्रों का प्रशासन करें। रावण हर देश की एक राजकुमारी से शादी करता है और कई पुत्रों को पिता बनाता है जो बाद में राजा बनते हैं। सेरी राम में दशरथ आदम नबी के पुत्र हैं। विष्णु, शिव और ब्रह्मा जैसे हिंदू देवताओं को इस्लामी अवधारणाओं के अनुरूप

परिवर्तित करके नया स्वरूप दिया गया है। अगर हम तुलना करें कि सेरी राम और वाल्मीकि की रामायण में रावण कैसे सत्ता में आता है, तो अंतर स्पष्ट हो जाता है। विलियम एस बक द्वारा अनुवादित वाल्मीकि संस्करण में यह सामने आता है :

रावण ने अपने गले पर चाकू रखा, तब ब्रह्मा प्रकट हुए और कहा, 'रुको! मुझसे एक बार वर मांगो!'

रावण ने कहा, 'मुझे खुशी है कि मैं आपको प्रसन्न कर पाया हूँ।'

'मुझे प्रसन्न करो!' ब्रह्मा ने कहा। "तुम्हारी इच्छा भयानक है, इतनी प्रबल है कि उपेक्षा की जा सकती है, एक बुरी बीमारी की तरह मुझे इसका इलाज करना चाहिए। तुम्हारा दर्द मुझे दुख देता है। कहो!'

'मैं अजेय होना चाहता हूँ और देवताओं या किसी स्वर्ग के किसी व्यक्ति, नरक के शैतानों या असुरों या दानव आत्माओं, पाताल लोक के नागों या यक्षों या राक्षसों द्वारा कभी भी पराजित नहीं होना चाहता।'

'यह वर देता हूँ!' ब्रह्मा ने जल्दी से कहा। उन्होंने रावण को उसके जले हुए सिर वापस दे दिए। वह पहले से बेहतर दिखने लगा। वे (रावण के सिर) राख से जीवित हो उठे और रावण के गले में लग गए। रावण मुस्कुराया और अपनी काली मूंछों को संवारा।

सेरी राम में भी यही प्रसंग दिखाई देता है। डब्ल्यू.जी. शेलबियर के अनुवाद के अनुसार इसमें एडम नबी मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। ब्रह्मा के बजाय, सर्वोच्च व्यक्ति अल्लाह बन जाते हैं :

अल्लाह (एसडब्ल्यूटी) के आशीर्वाद और शक्ति के साथ, पैगंबर आदम को पृथ्वी पर कुछ समय के लिए जन्नत से उतारा गया था। एक बार की बात है, भोर के समय, पैगंबर पृथ्वी पर चहलकदमी कर रहे थे, जब वे रावण से मिले। वह तपस्या कर रहा था, उल्टा लटक रहा था। नबी ने रावण पूछा :

'हे रावण, तुम अपने साथ ऐसा क्यों कर रहे हो? तुम कब से इस तरह से हो?' रावण ने उत्तर दिया, 'हे अल्लाह के दयालु पैगंबर। मैं बारह साल से इस हालत में हूँ।' आदम ने फिर कहा, 'हे रावण, वह क्या है कि जिसके लिए तुम अल्लाह (सुब्हान व ताश्अला) से याचना कर रहे हो, तुम्हें क्या चाहिए?' रावण ने उत्तर दिया, 'हे मेरे मालिक पैगंबर, क्या यह संभव होगा कि आप मालिक अल्लाह से मेरी इच्छा पूरी करने के लिए कहें। उसके बाद मुझे किस तरह की चीज चाहिए मैं इसे बताऊँगा।'

नबी आदम ने तब कहा, 'हे रावण तुम किस तरह की इच्छा रखते हो, मुझे बताओ।'

रावण नबी से कहता है कि वह पृथ्वी, स्वर्ग, पाताल लोक और समुद्र पर शासन करना चाहता है। पैगंबर जवाब देते हैं, "इसलिए, इस समय, तुमको मुझसे वादा करना होगा कि जब तुम गलत काम करोगे या आप इस तरह का कोई काम करते हो, तो तुमको भगवान या अल्लाह के क्रोध को स्वीकार करना होगा और अच्छा काम करते हो तो तुमको आशीर्वाद मिलेगा। यदि तुम इस वादे पर सहमत हो, तो मैं इसके बाद मालिक अल्लाह से तुम्हारी विनम्र इच्छाओं के लिए माँग करता हूँ।" कहानी को इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुरूप बनाने के लिए दो प्रकरणों में ये अंतर आवश्यक है।

हिंदू त्रिमूर्ति की अवधारणा इस्लाम में ईश्वर की एकेश्वरवादी अवधारणा के विरोध में है। अल्लाह को सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी माना जाता है और इस प्रकार तपस्या या महान कार्यों द्वारा उसके अधिकार का अतिक्रमण या बलपूर्वक उनके दायरे में हस्तक्षेप करना संभव नहीं है। हालांकि, रामायण और इसी तरह की कहानियों में ब्रह्मा के अधिकार में हेरफेर किया जा सकता है। रावण कई लोकों पर अधिकार माँग कर ठीक यही करता है। वह अपनी तपस्या के माध्यम से ब्रह्मा की सर्वोच्चता को कम करता है। इसलिए, जब कहानियों में ब्रह्मा को अल्लाह द्वारा प्रतिस्थापित किया जाता है, तो कहानी की पूरी क्रिया को फिर से परिभाषित करने की आवश्यकता होती है। मलेशिया, इंडोनेशिया, फिलीपींस और भारत में मुसलमानों के लिए रामायण और महाभारत सांस्कृतिक ग्रंथ हैं, जिनमें दर्शकों की जीवंत वास्तविकता को अपनाया गया है। इस प्रकार, उनके लिए रामायण की कहानियाँ ईसप की दंतकथाओं, पंचतंत्र और वन थाउजेंड एंड वन नाइट्स जैसे क्लासिक ग्रंथों से मिलती-जुलती हैं। कुछ बदलाव मुसलमानों को रामायण की कहानियों को एकेश्वरवादी इस्लामी विश्वदृष्टि के अनुरूप बनाने की सुविधा प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष- रामकाव्य जगत में भक्ति साहित्य की अनमोल मणि व रामकथा साहित्य की वानगी श्री रामायण की कथा श्रृंखला में मुस्लिम रामायणों का स्थान विशेष स्थान रखता है। मुस्लिम रामायण की कहानियों का सार रामायण की सौंदर्य और विविधता में निहित होते हुए नवीन प्रखरता प्रदान करता है। आज दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया में कोई भी समुदाय रामायण के प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। रामायण व रामकाव्य से चाहे वे हिंदू, बौद्ध, जैन, मुस्लिम, दलित या आदिवासी कोई भी हों, सभी प्रभावित हुए हैं। हालांकि रामायण की जड़ें भारतीय हैं और वैश्विकस्तर पर रामायण की शाखाएँ बढ़ी और फैल गई । विविध समुदायों व धर्मों के द्वारा सांस्कृतिक संवेदनाओं को ढालने में निर्णायक भूमिका निभाई गई है। रामायण के किसी भी ग्रंथ व रचना की विरोध व अपवाद को एक संकीर्ण सोच है। माना जा सकता है कि रामायण का कोई एक संस्करण दूसरे से अच्छा व शुद्ध है और दूसरा संस्करण गलत व भ्रष्ट है। ऐसा सोचना महाकाव्य के व्यापक सांस्कृतिक प्रभाव के साथ घोर अन्याय करता है। साथ ही रचनाकार की विरक्त मनोभाषिकता को भी अपमानित करता है। अतः मुस्लिम रामायण भी रामायण के अन्य संस्करणों के समान ही महत्वपूर्ण व मूल्यवान हैं।

संदर्भ-

1. डॉ. बद्रीनारायण तिवारी- 'रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार', प्रकाशक मानस संगम, कानपुर, प्रकाशन वर्ष-1979, पृ.सं.158-159
2. राम पटवा 'हे राम के वजूद पे', हिन्दोस्तां को नाज। (अल्लामा इकबाल की कविता से लिया गया) पुस्तक-बाँग-ए-दरा, प्रकाशन वर्ष-1924
3. रामधारी सिंह दिनकर, 'संस्कृति के चार अध्ययाय' (प्रकरण 16-सर मो. इकबाल), प्रकाशक उदयांचल, आर्यकुमार रोड, पटना-4, प्रथम संस्करण-प्रकाशन वर्ष-1946, पृ.स. 345
4. वही, पृ.स. 358
5. वही, पृ.स. 458
6. पं. रामप्रकाश त्रिपाठी- 'भारतीय संस्कृति में मुस्लमानों का अवदान'। लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1977, पृ.स. 465
7. पं. रामप्रकाश त्रिपाठी- 'भारतीय संस्कृति में मुस्लमानों का अवदान'। लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-1977, पृ.स. 475
8. https://www-swargvibha-com/ post & single/ Dr & Vishala & Sharma / Muslim & Kavitavo & Par & Ramkavya & Ka&Prabhav/CONTNT&2278/843#
9. https://caravanmagazine-in/religion/ many & muslim & versions & ramayana & hindi
10. अंग्रेजी कारवां के नवम्बर 2021 में प्रकाशित इस निबंध का हिंदी में अनुवाद। डॉ. सिद्धार्थ ने किया।
11. इंटरनेट साभार

दीपेंन्द्र कुमार शर्मा, शोधार्थी, भारतीय भाषा विभाग, अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर,
म.नं. 37/300जे/1, नगला पदी, समीप सुपर मार्केट, न्यू आगरा, आगरा-282005 (उत्तर प्रदेश)
मो. 9219793659, 7454893659, ईमेल - up80dk@gmail.com, deependraaaa@yahoo.com

✧ ✧ ✧

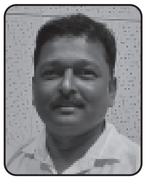

आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव उनवांस की यथा कथा

(किसलिए उदास है उनवांस!)

अश्विनी कुमार आलोक

हमारी गाड़ी जहाँ रुकी, वहाँ कभी पुस्तकालय हुआ करता था। वागीश्वरी दयाल पुस्तकालय और राजकुमारी वाचनालय। शिवपूजन सहाय ने उसकी स्थापना अपने माता-पिता के नाम पर की थी। अब एक कमरे का घर बचा था, कोई राजस्व कर्मचारी उसमें रहते थे। लक्ष्मीकांत मुकुल ने बबलू जी को आवाज दी। बबलू जी आचार्य शिवपूजन सहाय के छोटे भाई के पौत्र हैं, मनोरंजन सहाय के बड़े बेटे विनोद कुमार के बेटे और सुख्यात वामपंथी लेखक तथा पूर्व प्राध्यापक कर्मेंदु शिशिर के भतीजे। यह कमरा बहुत स्वच्छ नहीं था, दालान जैसा था। इसीलिए हमें उसके पश्चिमी किनारे पर बने एक घर के दरवाजे पर बैठाया गया। चाय - बिस्कुट के साथ परिवार और परिजनों के विषय में बताने वाले लोग बहुत नहीं थे। एक तो बबलू जी थे, दूसरे उनके पिता विनोद कुमार।

जिंदगी में हिस्सा बनकर मौजूद रहने की किस्मत सदा कहाँ रह पाती है! न जाने कोई हिस्सा कब किस्सा बन जाए। यादों में तब भी पड़ी रहती है जिंदगी। कि यादें हमारी मसरूफियत से किसी दिन बचाए न बचेंगी, तब यादें किस्सों में किधर बिखर जाएँगी, कह नहीं सकते। फ्रांसिस बुकानन ने शाहाबाद गजेटियर में कुछ नदियाँ लिखी थीं, नदियों के नाम लिखे थे। नदियाँ पानी से लिखी गयीं, जैसे पानी के भाव बिक गयीं। पानी केरा बुदबुदा। 1812-13 में बिहार और अवध की सीमा पर एक नदी बहती थी, आज भी बहती है। पर बहने-सा नहीं बहती। धर्मावती नाम है उसका। बस ही, खीरी के रास्ते दर्जनों गाँवों को छूती हुई कर्मनाशा की ओर चली थी। नदियों का नाम कोई धरता है, या धरा जाता है, कह नहीं सकते। नदियाँ जीवन में आती हैं जीवन देने। धर्मावती आयी थी, तो करीब सौ गाँवों को जीवन मिला था। न जाने उसका पानी कहाँ विलुप्त हो रहा है कि लोग धर्मावती का नाम तक भूलने लगे हैं। एक नदी और बह चली, उसके पानी के पानीपन ने काया को कंचन बनाने के लिए पैंतीस किलोमीटर की यात्रा की। रोहतास जिले के करंज गाँव से बक्सर जिले के धनसोई गाँव की यात्रा। नदी भी 'कंचन' कहायी। लेकिन गाँव ने कंचन को 'कोचानो' कहा। अपनी बहन - बेटियों के नाम

घर के भाई - बाप ही बिगाड़ते हैं, इस बिगाड़ का उन्हें अधिकार है। कोचानो इटाढ़ी प्रखंड की ठोरा नदी में विलीन हो गयी। अब पानी नहीं रहा। जस मानस की जात, देखत ही छुप जात है, ज्यों तारा परभात। मनुष्य बदले, तो नदियाँ भी नदी की तरह नहीं रह सकीं। इन्हीं धर्मावती और कोचानो के बीच गेरुआ बांध के किनारे कभी बगेड़ियों का झुंड उतरता था, ऊदबिलाव उस झुंड पर झपटने को उस्तादी मानते थे। हारिल सुग्गा और बाया चिड़ैं पेड़ों से धनखेतों में उतरते - विचरते थे। अब कुछ न बचा। कुछ काले हिरण अवश्य बचे हैं, जो गेरुआ बांध को टपते - डेबते किसी सुबह रोहतास की सीमा को लांघकर बक्सर की सीमा में प्रवेश कर जाते हैं, शाम में घर लौटते हुए अपने साथ बक्सर का अपनत्व और आशीर्वाद भी उठा लाते हैं। उसी गेरुआ बांध के समीप स्थापित उच्च विद्यालय को हमने दूर से देखा। यह धारणा स्वाभाविक ही मेरे मन में उतर आयी कि उनवांस गाँव में आचार्य शिवपूजन सहाय के घर के समीप स्थापित होने के कारण आचार्यवर की शिक्षा का यही केंद्र रहा होगा। लेकिन ऐसा नहीं था। कवि लक्ष्मीकांत मुकुल ने बताया कि शिवपूजन बाबू की शिक्षा तो आरा में हुई थी, तो इस स्कूल से उनका वास्ता हो ही नहीं सकता। लेकिन मनुष्य जिस मिट्टी में जन्म लेता है, उससे कटकर भी कहाँ हट पाता! कवि बैरागी प्रभाष चतुर्वेदी और उनके पिता प्रेमशंकर चौबे के बड़े - से मकान से निकलकर हम उस स्कूल तक जाना चाहते थे। लेकिन रास्ता चारपहिया वाहन के लायक नहीं था। सीताराम उपाध्याय संग्रहालय के सरकारी वाहन को हम आचार्य शिवपूजन सहाय के भाई के घर के समीप छोड़ कर आए थे। अमूमन गाँव में रास्ते होते हैं, गलियाँ नहीं। परंतु उनवांस का वह इलाका शहर की चहल-पहल भले नहीं रखता है, गलियों की तरह घुमाव और संकीर्णता में उलझ कर रह गया था। उन्हीं गलियों में से निकलकर आये एक बुजुर्ग ने विनत भाव से अनुरोध किया : 'ऐसे आते - जाते आप आचार्य शिवपूजन सहाय को पढ़ - जान सकते हैं, परंतु भोलानाथ को समझे बगैर शिवपूजन को कभी नहीं समझ पाएँगे। एक दिन गाँव में घूमियेगा, तो भोलानाथ के आचार्य शिवपूजन सहाय बनने का हवा - पानी आपसे बोलेगा - बतियायेगा। संकोच उतरेगा, तभी कुछ सोच जुटाया जा सकता है।' बुजुर्ग की राय गलत नहीं थी। लेकिन मुझे शाम तक बक्सर में कोई ट्रेन पकड़नी थी कि पटना लौट सकूँ। पता चला कि आचार्य शिवपूजन सहाय कहीं से आते थे, तो उसी शिवमन्दिर में पूजा - अर्चना करते थे। उच्च विद्यालय के अहाते में न जाने कब से खड़ा है वह शिवमन्दिर। उन दिनों से, जब वह विद्यालय नहीं था। मैं अकेला नहीं था। मेरे साथ सीताराम उपाध्याय संग्रहालय के संग्रहालयाध्यक्ष डॉ. शिव कुमार मिश्र, कवि लक्ष्मीकांत मुकुल, बैरागी प्रभाष चतुर्वेदी, पत्रकार अभिजीत और शिवपूजन सहाय के भाई के पौत्र बबलू भी थे। पर हम उस मंदिर पर उस रास्ते सिर्फ पैदल ही जा सकते थे। हमारी चारपहिया गाड़ी लेखक कर्मेंदु शिशिर के दरवाजे के समीप रुक गयी थी। घुमावदार रास्तों में अपने पांव ही साथ देते हैं। उस मंदिर पर जाने के लिए हमें गेरुआ बांध के रास्ते निकलना पड़ता। कठिन धूप असह्य हो रही थी। बबलू जी ने आश्वस्त किया कि वह उस मंदिर का फोटो खींच कर भेज देंगे। तब हम लौट चले। लेकिन हमारी यात्रा का मुख्य उद्देश्य जिस धरती को स्पर्श करना था, वहाँ हम अभी गये ही नहीं थे। वह जमीन, जहाँ शिवपूजन

सहाय ने जन्म लिया था। मुझे बताया गया कि वहाँ कुछ नहीं है। कुछ डिसमिल जमीन मात्र है, जिसे चाहरदीवारी से घेरकर ताला मार दिया गया है। मैंने जिद न छोड़ी, तो कोई चाभी ले आया। हम उन दीवारों के बीच जाकर खड़े हो गये, जहाँ कुछ सूखे फूल धरती पर बेसुध बिखरे पड़े थे।

बक्सर के किसी गाँव के थे डॉ. व्रजकुमार पांडेय। वह बीते पचास वर्षों से हाजीपुर में रहते थे। जब उनसे मैंने आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव जाने का रास्ता पूछा था, तो उन्होंने बताया था कि चौसा रेलवे स्टेशन से उनवांस गाँव जाया जा सकता है। उन्होंने उधर के किसी व्यक्ति का फोन नंबर देने का वादा भी किया था। किन्तु दुर्भाग्य कि मैंने आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव जाने की जब तक योजना बनायी, व्रजकुमार पांडेय स्वयं संसार से चले गये।

वह रास्ता बंद हुआ, तो दूसरा रास्ता बेहद सरल और उत्साहजनक मिला। प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद डॉ. शिव कुमार मिश्र बक्सर के सीताराम उपाध्याय संग्रहालय में संग्रहालयाध्यक्ष

बनकर पहुँचे। मैंने उन्हें फोन पर निवेदन किया कि वे मुझे आचार्य के गाँव ले चलें। शिव कुमार मिश्र सामान्य संग्रहालयाध्यक्षों की भांति सिर्फ नौकरी नहीं करते। वह पुरातत्त्व अन्वेषण और विश्लेषण के लिए बहुत परिश्रम करते हैं। 'मिथिला भारती' का बरसों से संपादन करते हुए उन्होंने अपनी इतिहास दृष्टि का व्यापक उपयोग किया है। उन्होंने मुझे बार-बार बक्सर बुलाया। लेकिन, जिस दिन मुझे फुर्सत मिली, मैं बीमार हो गया। तब भी नहीं माना।

हमारे गाँव में एक कहावत है 'मन अनुराग, तो गाओ गीत'। अर्थात किसी प्रकार का सत्कर्म - अपकर्म बिना मन के अनुराग के नहीं कर सकते। यह अनुराग देह का धर्म है, मन का बाद में। देह को स्वास्थ्य चाहिए। विकट भागदौड़ में मैं अक्सर देह को भूल जाता हूँ, यह जानते हुए भी कि दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार। मैंने उस दिन आचार्य शिवपूजन सहाय के घर जाकर वंशजों से मिलने की योजना बना तो ली थी, रात में डॉ. शिवकुमार मिश्र को कह भी दिया

था कि आऊँगा। परंतु उसी रात बुखार और जुकाम ने हिम्मत पशत कर दी। शिवकुमार मिश्र को मेरी हालत कहाँ पता थी, उन्होंने सुबह - सुबह फोन किया। मेरे मुँह से निकल गया कि आऊँगा। थकावट और शरीर की असहमति के बीच मेरा मन फिर उड़ चला।

महात्मा गाँधी सेतु पर असामान्य भीड़ थी, गाड़ियाँ चीटियों की चाल में भी लगातार ससरतीं, तो ढाई घंटे नौ किलोमीटर की दूरी पार करने में नहीं लगते। वक्त इतना लगा कि सुबह की सारी ट्रेनें गुजरती चली गयीं। एक साथ तब भी करीब पौने बारह बजे पटना जंक्शन से दो ट्रेनें खुलीं, उनमें से एक पटना- कोटा एक्सप्रेस में मैं चला जा रहा था।

मुसाफिर अपनी मंजिल पर पहुँच कर चैन पाते हैं,
वो मौजें सर पटकती हैं जिन्हें साहिल नहीं मिलता।

करीब दो बजे मैं बक्सर रेलवे स्टेशन पर पहुँच गया। शिवकुमार मिश्र ने वहाँ एक युवक को भेजा था, मुझे ले जाने को। बक्सर की यह सड़क मेरे लिए बहुत अपरिचित नहीं थी। परंतु एक बार आने - जाने से कोई परिचय प्रगाढ़ नहीं हो जाता। जब साहित्य- हृदय मोहन प्रसाद बक्सर में डीडीसी थे, तो एक बार उनसे मिलने आया था। इसी तरह चलते हुए दुकानों पर लगे बोर्ड पढ़े थे, चौराहों की भीड़ से निकलकर पहुँचा था।बाकी तो तब भी सब रह गया था। बक्सर का इतिहास - पुराण एक दिन के भ्रमण से नहीं समझ सकते। रामकालीन संदर्भ और अंग्रेजी हुकूमत के वक्त का इतिहास बक्सर के बक्से से बहुत लोगों ने खोले पढ़े, पर पूरा पढ़ा न गया। मेरी यह यात्रा तो बक्सर के संदर्भ में थी ही नहीं, बेहद वस्तुनिष्ठ थी। मुझे सिर्फ आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव उनवांस जाना था।

मुझे शिवकुमार मिश्र का वह दूत जैसे ही सीताराम उपाध्याय संग्रहालय में लेकर गया, बरामदे पर बैठे तीनों लोग अदब से खड़े हो गये। शिवकुमार मिश्र ने अपने हृदय की तरह संग्रहालय के परिसर को स्वच्छ और निस्पृह बनाया था, मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने मुझे सुस्ताने का वक्त न दिया, कहा : 'पहले ही विलंब हो चुका है। गाड़ी बाहर खड़ी है।' मुझे शिवकुमार मिश्र के घर जाना था, लेकिन विलंब हो चुका था। वह मेरे लिए घर से भोजन बनवाकर संग्रहालय में ले आये थे। पालक पराठा, खीर, मिठाई और आलूदम। मैंने जल्दी से हाथ - मुंह धोया और खाकर तैयार हो गया। दस मिनट उन्होंने संग्रहालय के दुर्लभ और अलभ्य पुरावशेषों की ओर मुझे घुमाया, उनके परिश्रमी व्यक्तित्व से संपन्न हुए संग्रहालय के सौंदर्य ने मुझे अभिभूत कर दिया। एक - दो दिन ठहर जाता, तो संग्रहालय की धरोहरों को पढ़ - लिख लेता।

करीब बीस किलोमीटर दक्षिण इटाढ़ी मार्ग पर हमारी गाड़ी बढ़ी जा रही थी। हम अर्थात मैं, शिवकुमार मिश्र और एक स्थानीय पत्रकार अभिजीत। आचार्य शिवपूजन सहाय के गाँव के समीप हमारी प्रतीक्षा में कवि लक्ष्मीकांत मुकुल खड़े थे। लक्ष्मीकांत मुकुल जहाँ खड़े थे,

वह जगह पंचायत भवन के करीब थी। यह उनवांस गाँव का प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। एक हनुमान मंदिर और उसी के निकट पंचायत भवन। इटाढ़ी प्रखंड मुख्यालय के कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर उनवांस गाँव है। पुराने किसानों और जमींदारों का गाँव होगा, लेकिन गाँव के लोगों का मिजाज भी अब गाँव - सा नहीं रहा। प्रतीत यह हुआ कि नयी पीढ़ी के लोगों ने गाँव में कोई उदासी उतार दी। उपेक्षा से उदासियाँ उपजती हैं। लोग बक्सर, आरा, पटना अथवा पड़ोस के बड़े शहर बनारस की ओर रुख कर चले। एक अजीब-सी अरुचि को झेलते हुए उनवांस के पुराने घरों का जीर्णोद्धार कम ही हुआ। जीर्णोद्धार के नाम पर कुछ हुआ भी, तो यह कि वंशबेलि बढ़ी, तो पूर्वजों के निर्माणों को दीवारों से पाट दिया गया। हमारी गाड़ी गाँव की आबादी शुरु होने से पूर्व रुक गयी। यह बड़ा - सा परिसर था। एक बड़ा-सा पोखर, सरकारी धन से सौंदर्यीकृत। सीढ़ियों से उतरकर पानी में पाँव डाले रखने का निरापद सुख सहज ही सुलभ था इस पोखर में। लेकिन मौसम का मिजाज अनुकूल नहीं था। मेरे लिए तो और भी असह्य। सुबह में बुखार और जुकाम में उलझी हुई मेरी काया शर्ट के नीचे एक तह स्वेटर में लिपटी हुई थी, ऊपर से मार्च महीने के पहले हफ्ते में सूर्य का उत्ताप सीधे चानी को भेद रहा था। गाड़ी से निकलते ही एक शुष्क और निष्ठुर प्राकृतिक वातावरण हममें आह्लाद जगाने को कम ही व्यग्र था, आतिथ्य की सहिष्णुता मनुष्यता को प्रकृति के समर्थन ही से उदार बनाती है। प्रकृति का स्वभाव थोड़ा स्थिर होता, तो यात्रा का सामान उसी तरह से निर्धारित हो जाता है। हमारे गाँव में इस मौसम को 'दोरस' कहा गया है, दो रसों का द्वंद्व, या दोष का आलंब। परिसर में पोखर, पौधे और एक मंदिर। लेकिन इनमें मेरी कोई पुरातत्विक रुचि होती, तो हमारी यात्रा का नेतृत्व कर रहे डॉ. शिवकुमार मिश्र हमारा ज्ञानवर्धन अवश्य करते। इस परिसर के संबंध में लक्ष्मीकांत मुकुल को भी बहुत ज्ञान नहीं था। शिलालेख था, जो परिसर के मुख्य द्वार पर आचार्य शिवपूजन सहाय की मूर्ति के नीचे सुरक्षित था। यह मूर्ति तत्कालीन डीएम धर्मेन्द्र कुमार सिंह के समय कुछ ही वर्ष पूर्व स्थापित की गयी थी। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने 'जल जीवन और हरियाली' योजना के तहत इसे विकसित किया था। इस बड़े - से परिसर के संबंध में बाद में मुझे आचार्य शिवपूजन सहाय के भाई के प्रपौत्र बबलू जी ने बताया। उन्होंने बताया कि यह बावन बीघे का परिसर गाँव उनवांस के एक साहुकार ने सार्वजनिक सुविधाओं के लिए दान किया था। शिवमन्दिर और पोखर उन्हीं के बनवाए हुए थे। साहुकार के बाद की पीढ़ी के लोग उनवांस में अब भी रह रहे हैं, लेकिन उनकी जमींदारी और

उनके धन का स्वरूप ऐसा बदल चुका है कि अब वे पहचाने भी कम ही जा सकें। साहुकार का नाम संभवतः दाता साव था। गाँव में किंवदंती है कि किसी अंग्रेज अधिकारी ने उनसे कुछ धन माँगा, तो उन्होंने घोड़े पर चांदी के सिक्के लाद दिए थे। गंगा और अनेक छोटी सहायक नदियों के किनारे बसा हुआ उनवांस गाँव बक्सर जिले के दक्षिणवर्ती गाँवों में से एक है। उनवांस के पंद्रह किलोमीटर दक्षिण जाने के बाद कौआकोच पुल है और उसी के बाद रोहतास जिला। हमारी यात्रा में साथ चल रहे कवि लक्ष्मीकांत मुकुल का घर भी रोहतास जिले का गाँव था, मयरा गाँव। दाता साव के बावन बीघा पोखरे के बाद कुछ ही फर्लांग की दूरी पर एक और विवादित भूखंड था। लक्ष्मीकांत मुकुल हमें वहाँ भी ले गए। एक असहाय - सा कुआँ, जो बुझे जलस्रोतों की उदास स्मृतियों में न जाने कब अपने अस्तित्व की आंधी में गिर गया। असंयत गड्ढे, आवारा झाड़ियाँ और अनिर्वचनीय दारिद्र्य। इन सबके बीच कोई अपठनीय शिलालेख, जिसे पता नहीं किसी पुराविद् ने पढ़ने की चेष्टा की या नहीं। एक उपेक्षित-सा मंदिर यहाँ भी था, बड़े से परिसर में अपरिचित घास - झाड़ और धूल में पड़ी हुई आचार्य शिवपूजन सहाय की एक और मूर्ति। यह मूर्ति भी बहुत पुरानी नहीं थी। विवादित जमीन पर दीपक कुमार सिंह नामक डीएम ने यह मूर्ति कोई एक दशक पहले स्थापित की थी। आचार्य शिवपूजन सहाय शिवजी के भक्त थे। इन मंदिरों में वे तब जरूर आते थे, जब वे पटना, आरा, कोलकाता अथवा अन्यत्र से लौटते थे।

हमारी गाड़ी जहाँ रुकी, वहाँ कभी पुस्तकालय हुआ करता था। वागीश्वरी दयाल पुस्तकालय और राजकुमारी वाचनालय। शिवपूजन सहाय ने उसकी स्थापना अपने माता-पिता के नाम पर की थी। अब एक कमरे का घर बचा था, कोई राजस्व कर्मचारी उसमें रहते थे। लक्ष्मीकांत मुकुल ने बबलू जी को आवाज दी। बबलू जी आचार्य शिवपूजन सहाय के छोटे भाई के पौत्र हैं, मनोरंजन सहाय के बड़े बेटे विनोद कुमार के बेटे और सुख्यात वामपंथी लेखक तथा पूर्व प्राध्यापक कर्मेंदु शिशिर के भतीजे। यह कमरा बहुत स्वच्छ नहीं था, दालान जैसा था। इसीलिए हमें उसके पश्चिमी किनारे पर बने एक घर के दरवाजे पर बैठाया गया। चाय - बिस्कुट के साथ परिवार और परिजनों के विषय में बताने वाले लोग बहुत नहीं थे। एक तो बबलू जी थे, दूसरे उनके पिता विनोद कुमार। विनोद कुमार ने बहुत वक्त आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ गुजारा था, पटना में उनके साथ रहते थे। लेकिन अस्सी बरस के इस बुजुर्ग के पास वैसा कोई इल्म नहीं कि क्या बताया जाए। मैं भी जो पूछ सका, वह शायद ही कोई और पूछने आया होगा। वर्ना समूचे देश में पत्रकारों और लेखकों की एक समुन्नत पीढ़ी खड़ी करनेवाले हिन्दी साहित्य और भाषा के सबसे कम पढ़े - लिखे पंडित के जीवन - जगत को जानने-समझने की उत्सुकता लेकर कम ही लोग आते हैं उनवांस गाँव। लोगों को पता है कि उनवांस गाँव में होने- सा कुछ नहीं। न घर, न घरवाले। गाँव के लोगों में वैसे एक - दो लोग ही बचे होंगे, जिन्होंने आचार्य शिवपूजन सहाय को देखा हो। यदि कुछ बूढ़े लोग होंगे, तो वे शिवपूजन सहाय को नहीं, भोलानाथ को जानते रहे होंगे। तब, कौन आये उनवांस गाँव!

उनवांस गाँव का कोई ऐसा ऐतिहासिक पक्ष नहीं, जिसे कहा - सुना जा सके। इतना कह सकते हैं कि करीब तीन सौ बरस कब्ल यह गाँव आबाद हुआ था। स्थानीय आबादी भले कुछ रही हो, परंतु अधिकांश आबादी उत्तर प्रदेश के विभिन्न अंचलों से स्थानापन्न थी। आचार्य शिवपूजन सहाय के दादा आए होंगे। उनके नाम का स्मरण विनोद कुमार को नहीं। ये वह जमाना था, जब लोभ - मोह की व्याप्ति इतनी भयानक नहीं थी। लोग साधु की तरह उठते थे और कंबल - कमंडल लेकर नयी जगह पर जम जाते थे। आचार्य शिवपूजन सहाय के दादा उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के शेरपुर नामक किसी गाँव से आए थे। अकेला परिवार। न गोतिया, न दयाद। बही - खातों की असलियत जानने वाली यह जाति साहुकारों के मुहल्ले में रोजगार देखती थी। उनवांस में उन दिनों कुछ अच्छे और नामचीन व्यवसायी थे। गाजीपुर के शेरपुर गाँव वाली जमीन - जायदाद का कोई अता-पता नहीं। परंतु उनवांस में करीब डेढ़ सौ बीघे का रकबा आचार्य शिवपूजन सहाय के पिता वागीश्वरी दयाल ने अर्जित किया था। वागीश्वरी दयाल के तीन बेटे हुए शिवपूजन सहाय, रामपूजन सहाय और देवनंदन लाल। शिवपूजन सहाय के दो बेटे हुए आनंदमूर्ति और मंगलमूर्ति। रामपूजन सहाय के शारदारंजन। देवनन्दन लाल के मनोरंजन लाल और राजीव रंजन लाल। मनोरंजन लाल के विनोद, कर्मेंदु शिशिर और प्रभात। राजीव रंजन के अरुण और अशोक। लेकिन इतनी जाल - फौज में से किसी को उनवांस की कोई दरकार नहीं। सब बाहर-बाहर। महीने - सालभर में कोई आया, तो आया। आचार्य शिवपूजन सहाय ने पटना के पुनाईचक में एक मकान बनवाया था। उस पर भी आचार्य के बेटों आनंदमूर्ति और मंगलमूर्ति के बीच विवाद है। आचार्य शिवपूजन सहाय के बेटों को वंशानुगत करीब सत्तर बीघे जमीन हाथ आयी थी। बचा क्या? चार कट्ठा केवल। इस भूखंड पर कोई चारपहिया वाहन नहीं जा सकता। तिकोने बनाते रास्तों का अपना दुःख है कि रहवासियों के ख्वाहिशात बढ़ते गए, जमीं सहमती - सिकुड़ती गयी। इस भूखंड में देखने को कुछ नहीं। तब भी मैंने चाभी मंगवाकर चाहरदीवारी को एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाप दिया, गोया यह पैगाम छोड़ने के लिए कि आचार्य का रक्तवंश भले उनवांस को उपेक्षित कर गया हो, शब्दवंश अभी जिंदा रहेगा।

आचार्य शिवपूजन सहाय का शब्दवंश सिर्फ उनवांस या शाहाबाद अथवा उनके गृहराज्य बिहार तक सीमित नहीं है। भाषा - व्याकरण, लेखन और साहित्यकर्म के अन्य अनेक पक्ष उन्होंने समृद्ध किए। कम पढ़े - लिखे लेखक का संपादक और साहित्य संशोधक होना साहित्य क्षेत्र के लिए सर्वथा असामान्य घटना है। उन्होंने करीब पचास वर्षों तक साहित्य की समर्पित सेवा की, शब्द साधना में लगी एक विशिष्ट पीढ़ी के लिए आचार्य की भूमिका निभाकर उसमें भाव, सौंदर्य और जीवन के स्वरूप का उन्मेष कराया। पटना, कोलकाता, लहेरियासराय और काशी के साहित्य समाज में आचार्य की उपस्थिति इतनी विशिष्ट रही कि वे उन शहरों में जहाँ - जहाँ से जुड़े, वहाँ से हटे नहीं। उनके बिना साहित्य गोष्ठियों की कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। उस समय के न जाने कितने बड़े लेखकों की पांडुलिपियाँ पहले आचार्य शिवपूजन सहाय के सामने से गुजरीं, तभी उन्हें प्रकाशन हेतु भेजा गया। यह नहीं कह सकते कि उन्हें सिर्फ गद्य की समझ थी। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' का भाषा - परिमार्जन आचार्य शिवपूजन सहाय ने किया था, तो जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' के लिए उपयुक्त परामर्श दिये थे।

आचार्य शिवपूजन सहाय 1926 में पुस्तक भंडार, लहेरियासराय की पुस्तकों और सर्वप्रतिष्ठित पत्रिका 'बालक' को प्रकाशित कराने के लिए काशी आए थे। काशी उन दिनों साहित्य सक्रियता की धुरी हुआ करता था। काशी - बनारस की नियमित गोष्ठियों में आचार्य शिवपूजन सहाय की भूमिका बहुत थी। उन दिनों प्रकाशित हो रही संभवतः कोई पुस्तक आचार्य शिवपूजन सहाय की दृष्टि से गुजरे बगैर प्रकाशित नहीं होती थी। इस संबंध में विनोद शंकर व्यास ने लिखा है : 'शिवजी स्वभाव के बड़े सरल हैं। अतएव बहुत जल्दी सब के प्रिय बन जाते हैं। उनमें अहंकार और अभिमान तनिक भी नहीं है। इसलिए सहृदयों को अपने समीप खींच लेते हैं। प्रसाद जी का बहुत निकट स्नेह उन्हें प्राप्त था। काशी में रहने पर हमलोगों के किसी भी जमघट में शिवपूजन सहाय न हों, ऐसा कभी न होता था। हमलोगों की मंडली में शिवपूजन जी का सम्मान विशेष रूप से था। पुस्तकों के संपादन, प्रकाशन का कार्य वे ही करते थे। इसलिए मेरी और प्रसाद की लिखी अधिकांश रचनाओं से वे परिचित थे। उनका निर्णय ही अंतिम समझा जाता था। प्रसाद जी जब कुछ नयी रचना प्रस्तुत करते, तब शिवपूजन जी को सुनाए बिना उन्हें संतोष नहीं होता था।'

विनोद शंकर व्यास, प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद ही नहीं, आचार्य शिवपूजन सहाय को रामकृष्ण दास, लाला भगवानदीन, रत्नाकर जी, रामचंद्र शुक्ल और श्याम सुंदर दास की भी स्नेहिल मैत्री प्राप्त थी।

आचार्य शिवपूजन सहाय उन दिनों के हिन्दी साहित्य लेखन में बड़े विद्वान, साहित्य संशोधक और प्रूफ रीडर थे। उन्होंने स्वयं बहुत नहीं लिखा, पर लिखवाया बहुत। उनके जैसा संपादक उन दिनों दूसरा कोई नहीं था। संपादक बिना लेखकीय प्रतिभा और साहित्य - भाषा की समझ के नहीं बना जा सकता। दूसरों का साहित्य संशोधित करनेवाले संपादक की अपनी

रचनात्मकता पर आघात पहुँचता है। आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ यही हुआ। वह सिर्फ एक उपन्यास 'देहाती दुनिया' और सोलह कहानियाँ 'हठ भगत जी', 'अनूठी अंगूठी', 'तोता मैना', 'विचार मित्र', 'मुंडमाल', 'सतीत्व की उज्ज्वल प्रभा', 'विषपान', 'हतभागिनी', 'चंद्रतारा', 'प्रायश्चित', 'खोपड़ी के अक्षर', 'कुंजी', 'शरणागत रक्षा', 'मानमोचनी', 'कहानी का प्लाट', 'बुलबुल का गुलाब' ही लिख पाए। इस संबंध में श्री माधव ने 'परिषद' पत्रिका के जुलाई, 1963 अंक में लिखा है : शिवजी ने अपने जीवन में शायद हजारों पृष्ठ लिखे, परंतु उन्होंने काली स्याही की अपेक्षा लाल स्याही का ही उपयोग किया। गरज कि दूसरों के लिखे हुए को सुधारने - संवारने में उनके जीवन का अधिकांश समय गया और इस प्रकार पिछले पचास सालों में उन्होंने सैंकड़ों पुस्तकों का संपादन किया। लेख सुधारे, प्रूफ देखे। प्रूफ के दो ही पंडित हिंदी में माने जाते थे, एक शिवजी और दूसरे शांतिप्रिय जी।

आचार्य शिवपूजन सहाय का जन्म बक्सर के उनवांस गाँव में 19 अगस्त, 1893 को हुआ था। गरीबी थी, आरा में अपने रिश्तेदार के यहाँ पढ़े और 1913 में मैट्रिक पास हुए। रोजगार तुरंत जरूरी था। बनारस कचहरी में नकलनवीस बन गए। लेकिन उस काम को चार सालों तक करने के बाद 1917 में आरा टाउन स्कूल में अध्यापक बन गए। 1920 में असहयोग आंदोलन में शामिल हुए। 1921 ईस्वी में उन्होंने मास्टरी छोड़ दी और कोलकाता जाकर 'मारवाड़ी सुधार' पत्रिका का संपादन करने लगे। वहीं से वे मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के संपर्क में आए। उन्होंने 'माधुरी', 'मतवाला' आदि विशिष्ट पत्रिकाओं का संपादन किया। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संस्थापक मंत्री और बाद में निदेशक बने। उन्होंने 'हिंदी साहित्य को बिहार की देन' नामक पुस्तक शृंखला का संपादन कर बिहार की साहित्यिक प्रतिबद्धता और उसके साहित्येतिहास का प्रामाणिक आधार दिया। पटना से 'साहित्य' और 'परिषद्' जैसी विशिष्ट पत्रिकाएँ निकालीं। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् और आचार्य शिवपूजन सहाय के संबंध में डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने 'परिषद् पत्रिका' जुलाई, 1963 के अंक में लिखा है - "बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् सत्यमेव उनका कीर्ति स्तम्भ है। उसकी ईंट- ईंट बटोर कर तथा जोड़कर इस कीर्ति स्तम्भ को उन्होंने खड़ा किया और उनके अवेक्षण और श्रम का वरदान पाकर परिषद् निरंतर फूली- फली, कैसा विचित्र कल्पवृक्ष परिषद् के रूप में वे छोड़ गए हैं। अपने वज्रासन से ध्यान की शक्ति द्वारा उन्होंने बहुत कुछ दिया। अनेक नए विषयों की उद्भावना योग्य लेखकों से करायी। उन ग्रंथों की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति है। हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का 'हिंदी साहित्य : आदिकाल' और मोतीचंद्र जी का 'सार्थवाह' जो परिषद् के आरंभिक जीवन के प्रथम दो वर्षों में छपे थे, वे हिंदी जगत के गौरव की वस्तु हैं।"

आचार्य शिवपूजन सहाय ने हिंदी के अतिरिक्त भोजपुरी साहित्य को भी समृद्ध किया। उनकी रचनाएँ 'शिवपूजन रचनावली' में संकलित हैं। उन्हें उन्नीस सौ साठ में भारत सरकार ने पद्मविभूषण सम्मान दिया और उनके नाम पर एक डाक टिकट भी जारी किया। उन्हें डिलिट की

भी सम्मानोपाधि दी गयी। लेकिन आश्चर्य यह कि बिहार सरकार का राजभाषा विभाग बिहार के जिन करीब तीन दर्जन साहित्यकारों की जयंती मनाती है, उनमें लंबे समय तक आचार्य शिवपूजन सहाय का नाम सम्मिलित नहीं था। करीब एक दशक पूर्व इस भूल का सुधार कर लिया गया। आचार्य शिवपूजन सहाय पर लिखा - पढ़ा बहुत गया, तब भी बहुत कुछ लिखना - पढ़ना शेष है। वीरेंद्र परमार ने उनके लेखन और जीवन पर परिश्रमपूर्वक शोध किया है। 21 जनवरी, 1963 को उनका देहान्त हो गया।

आचार्य शिवपूजन सहाय ने ग्रामीण परिवेश की सरलता और जीवन संघर्षों को अपने साहित्य का विषय बनाया।

'देहाती दुनिया' से आंचलिक साहित्य का आविर्भाव माना जाता है, इसे आगे चलकर फणीश्वरनाथ रेणु ने साहित्य की एक विशिष्ट शैली के रूप में प्रतिष्ठित किया।

विस्तृत महत्त्व का साहित्य प्रस्तुत करनेवाले आचार्य शिवपूजन सहाय ने गाँव और उसके परिवेश को समझा - समझाया, परंतु उनके वंशजों ने उनकी धरोहरों को बचाना जरूरी नहीं समझा। उनके द्वारा स्थापित पुस्तकालय की कुछ पुस्तकें जिला पुस्तकालय, बक्सर में संग्रहित हैं। उनके बाल - बच्चे प्रायः उनकी स्मृति में कोई आयोजन नहीं करते। बक्सर शहर में उनके नाम पर कोई मार्ग या चौक - चौराहा नहीं। पटना में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् जिस मार्ग में है, सैदपुर का वह मार्ग आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग कहा गया है।

उनवांस की उदासियाँ आचार्य शिवपूजन सहाय की विद्वत्ता और अपने भोलानाथ के भोलेपन को आत्मसात किए रहेंगी। उनवांस में आचार्य का कोई स्मृति अवशेष नहीं बचाया जा सका। उनकी कुर्सी तक बेच दी गयी।

उनवांस का एक निजी विद्यालय जिस निष्ठा से साल में एक बार आचार्य की स्मृति में कार्यक्रम आयोजित करता है, यदि पटना और लखनऊ में रहनेवाले उनके परिजन उसमें शरीक भी हो जाते, तो आचार्य की शब्दबेलि - वंशबेलि के अंतर्संबंध से भारतीय मनीषा को चिंतित होना न पड़ता। अपने ऋषि - पुरोधा के अवदान हमारी परंपरा - मर्यादा को शून्य में भ्रमित होने से रोकते हैं।

अश्विनी कुमार आलोक, प्रभा निकेतन, पत्रकार कालोनी, महनार, वैशाली, पिन - 844506
मो. - 8789335785

✧ ✧ ✧

'दस्तावेज' स्तंभ के अंतर्गत हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिका 'अवंतिका' में प्रकाशित रचनाओं का पुर्नप्रकाशन 'साहित्य यात्रा' में किया जाता रहा है। इस अंक में महादेवी वर्मा की कविताओं पर प्रो. रामअवध द्विवेदी के द्वारा लिखा गया महत्वपूर्ण लेख 'श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता' प्रकाशित की जा रही है, जो अवंतिका के अगस्त 1956 अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके साथ ही फणीश्वरनाथ रेणु की एक महत्वपूर्ण कहानी 'विषयांतर' भी प्रकाशित की जा रही है, जो अवंतिका के जनवरी 1956 अंक में प्रकाशित हुई थी।

श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता

प्रो. रामअवध द्विवेदी

सन् 1928 तथा 1931 के बीच लिखी हुई कविताएँ 'रश्मि' में संकलित है। समय तथा विकास दोनों के ही क्रम में ये 'नीहार' की कवितओं के बाद आती है। 'नीहार' की कविताएँ जिज्ञासा तथा आश्चर्य से ओतप्रोत है। कवयित्री का मन जीवन के इस प्रथम प्रहर में विस्मय तथा कौतूहल से भर गया था और यही भावनाएं इनके काव्य में प्रतिध्वनित हुई थीं। विस्मय के उपरांत चिंतन की अवस्था आती है जो अधिक प्रौढ़ता की सूचना देती है। मन अनायास प्रश्न पूछने लगता है और अपने आप से उत्तर मांगता है। जानने और समझने का यह प्रयास 'रश्मि' की कविताओं में निहित है।

प्रायः तीस वर्ष से अधिक हुए जब श्रीमती महादेवी वर्मा ने सर्वप्रथम हिंदी के काव्य-जगत में प्रवेश किया। 'चाँद' में प्रकाशित होनेवाली इनकी कविताओं ने काव्य-रसिकों को आकृष्ट करके हलचल पैदा कर दी थी। तदुपरांत कवयित्री की रचनाएँ कुछ दिनों तक निरंतर प्रकाशित होती रही। फिर वह कई वर्षो तक मौन रहीं और लोगों की यह धारणा होने लगी कि उनकी प्रेरणा का स्रोत सूख चुका था। प्रायः छः-सात वर्ष मौन रहने के बाद जब सन् 1948 ई0 में 'दीपशिखा' का प्रकाशन हुआ, तब काव्य-प्रेमियों के मन में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई। इधर अनेक वर्षो से महादेवी जी फिर मौन है। संभव है कि फिर एक बार मौन टूटे और 'दीपशिखा' से भी अधिक महत्वपूर्ण रचना हमारे सामने आए, किंतु ज्यों-जयों मौन की अवधि लंबी होती जाती है, यह संभावना क्षीण होती जाती है और आशा अधिकाधिक धुँधली। अतः अब यह मान लेना

अनुचित नहीं प्रतीत होता कि कवयित्री की कृतियों के मूल्यांकन का समय आ गया है। पिछले वर्षों में महोदवी जी की कविताओं की विशेषताओं तथा उसके महत्व के संबंध में अनेक विरोधी मत प्रकट किए गए हैं। इस मतभेद में कितना तथ्य है इस बात का भी निर्धारण हो जाना चाहिए।

श्रीमती महोदेवी वर्मा का प्रायः संपूर्ण काव्य गीतों तथा लघु मुक्तकों में रचा गया है। इनका यह रूप अत्यंत उपर्युक्त है। नारी हृदय की तीव्र प्रणयानुभूति एंव वेदना का प्राचीन काल से इसी माध्यम से प्रकाशन हुआ है। इस संबंध में श्रीमती महादेवी वर्मा के साथ-साथ क्रिस्टियाना रोजेटी, श्रीमती ब्राउनिंग, मीराबाई तथा प्राचीन यूनान की प्रसिद्ध कवयित्री सैफो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। यौरप में तो लघुमुक्कों की लंबी परंपरा का प्रदुर्भाव की सैफो की कविताओं में सर्वप्रथम हुआ था। ऐसा प्रतीत होता है मानो आत्मनिवेदन के क्षणों में मधुर काव्य इन कवयित्रीयों के कंठ से पिकी के संगीत के समान अनायास मुखरित हो उठता है। श्रीमती महादेवी की रचनाओं में रोमांटिक काव्य की अनेक विशेषताएँ विद्यमान है, अतः मुक्तकों के प्रति उनका आकर्षण स्वाभाविक है। एडगर एलेन पो ने इस प्रकार के छोटे मुक्तकों को ही उच्चतम काव्य-रूप माना है। इनका मत है कि काव्य-प्रेरणा कुछ क्षणों के लिए ही उपलब्ध होती है और उन थोड़े से क्षणों में केवल छोटे मुक्तकों की ही रचना संभव है। थोड़े ही काल में प्रेरणा विलीन हो जाती है अतः लंबी रचनाएँ निर्जीव और शुष्क होती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय प्रतीकवादी के विचारों से प्रभावित हुए और हम यह भी देखते हैं कि श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में प्रतीकों का एक विशेष महत्त्व है। इस प्रकार रोमांटिक और प्रतीकवादी दृष्टिकोण से देखने पर महादेवी जी की गीतात्मक प्रवृत्ति सरलता से समझ में आ जाती है।

कवयित्री की प्रारंभिक रचनाएँ 'नीहार' में संकलित हैं जिन पर किशोरावस्था की छाप स्पष्ट रूप से अंकित है। कौतूहल, अस्पष्ट आकांक्षाएँ, अज्ञात के प्रति आकर्षण, सुख-दुख की तीव्र अनुभूति, कल्पना की प्रखरात ये सभी किशोरावस्था से संबंध रखते हैं तथा 'नीहार' की कविताओं में निरंतर लक्षित होते हैं। इन कविताओं की रचना-शैली से भी इस बात की सूचना मिलती है कि अभी उसका रूप स्थिर नहीं हो पाया है। अनेक स्थलों पर भी सुमित्रानंदन पंत का प्रभाव मिलता है तथा सामान्य रीति से भाषा में उन्हीं की-सी सफाई की चेष्टा भी दृष्टिगोचर होती है। इतना होते हुए भी इन रचनाओं में प्रचुर सौंदर्य तथा माधुर्य है। इसकी बड़ी बात यह है कि अधिकांश कविताओं में सादगी के साथ ऐसी उलझनों का अभाव है जिसका सामना 'दीपशिखा' के पाठक को करना पड़ता है। रूपकों के चमत्कार तथा अभिव्यक्ति कर नवीनता से मन बार-बार प्रभावित होता है उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियों को लीजिए :-

हँस देता जब प्रात, सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली
लहरों की बिछलन पर जब
मचली पड़ती किरणें भोली,

x x x x x x x

जिस दिन नीरव तारों से
बोली किरणों की अलकें,
'सो जाओ अलसाई हैं
सुकुमार तुम्हारी पलकें।'

सन् 1928 तथा 1931 के बीच लिखी हुई कविताएँ 'रश्मि' में संकलित है। समय तथा विकास दोनों के ही क्रम में ये 'नीहार' की कवितओं के बाद आती है। 'नीहार' की कविताएँ जिज्ञासा तथा आश्चर्य से ओतप्रोत है। कवयित्री का मन जीवन के इस प्रथम प्रहर में विस्मय तथा कौतूहल से भर गया था और यही भावनाएँ इनके काव्य में प्रतिध्वनित हुई थीं। विस्मय के उपरांत चिंतन की अवस्था आती है जो अधिक प्रौढ़ता की सूचना देती है। मन अनायास प्रश्न पूछने लगता है और अपने आप से उत्तर मांगता है। जानने और समझने का यह प्रयास 'रश्मि' की कविताओं में निहित है। साथ-ही-साथ शैली में भी विकास परिलक्षित हुआ है। जब 'नीहार' की कविताओं के बाद हम 'रश्मि' की कविताओं का अवलोकन करते है तब सहज की इस बात का पता लगता है कि सन् 1928-1931 के वर्षो में महादेवी जी की कला निर्माण-सौष्ठव की दृष्टि से कहीं आगे बढ़ चुकी थी। 'नीहार' की रचनाओं में अनेक स्थानों पर परिमार्जन का अभाव खटकता है तथा अधिकांश कविताओं में एक आध ढीली पंक्तियाँ अवश्य मिलती है। 'रश्मि' की कविताओं में कवयित्री का आत्म-विश्वास अधिक सुदृढ़ हुआ जान पड़ता है। और लचर पंक्तियों का अनुपात बहुत कम हो गया है। रचनाओं का आंतरिक विकास भी अब पहले की अपेक्षा अधिक सफल प्रतीत होता है। निम्नलिखित पंक्तियों में 'रश्मि' की कविताओं में चिंतन की प्रवृति तथा उनकी सफल एवं सार्थक अभिव्यंजना का पता लगेगा-

दिया क्यों जीवन का वरदान!
इसमें है स्मृतियों का कम्पन,
सुप्त व्यथाओं का उन्मीलन,
स्वप्नलोक की परियाँ इसमें
भूल गई मुस्कान!
इसमें है झंझा का शैशव,
अनुरंजित कलियों का वैभव,
मलय पवन इनमें भर जाता
मृदु लहरों के गान!

x x x x x x x

कह दे मां क्या अब देखूँ।
देखूँ खिलती कलियाँ या
प्यासे से सूखे अघरों को,
तेरी चिर यौवन सुषमा
या जर्जर जीवन देखूँ।
देखूँ हिम हीरक हँसते
हिलते नीले कमलों पर
या मुरझााई पलकों से
झरते आँसू कण देखूँ।

'नीहार' 1924-28 तथा 'सांध्यगीत' 1934-36 में महादेवी की कला और भी विकसित हुई है। शैली का निखार तथा कविताओं की आंतरिक योजना दोनों है अधिक आकर्षक हो जाते है। इन दोनो संग्रहों में साक्ष्य और अनुभूति के गायन सनिविष्ट है, जिनसे कवयित्री के सुख-दुःख में पारस्परिक सामंजस्य उत्पन्न करने की आकांक्षा का पता चलता है। नैराश्य का रंग कुछ अधिक गहारा हो गया है। पीड़ा के प्रति आकर्षण बढ़ गया है तथा आत्मविसर्जन की भावना निरंतर व्यक्त हुई है। सुख-दुःख की आँखमिचौनी का बड़ा ही प्रभावोत्पादक चित्रण हुआ है। नीरजा की कई कविताओं में प्राकृतिक सौंदर्य का सुदर चित्रण परिमार्जित शैली में हुआ है, किंतु इस चित्रों में कोरा रूप-विधान नहीं प्रस्तुत किया गया है, अपितु सौंदर्य के प्रत्येक उपकरण पर तीव्र भावना का रंग चढ़ा हुआ है, अतः इन रचनाओं में बाह्य पदार्थो की अपेक्षा हृदय की अनुभूतियों का ही मूल्य अधिक है।

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात! वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात जीवन विरह का जलजात!

x x x x x x x

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रतिदिन प्रति क्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम का घुल रे मृदु तन
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल।

'दीपशिखा' श्रीमती महोदवी वर्मा की प्रौढ़तम रचनाओं का संग्रह है। वातावरण रात्रि का है तथा मानसिक अवस्था भी उसी के अनुरूप है, केवल अँधेरे में दीपशिखा की तरह आशा और विश्वास की टिमटिमाहट दिखाई पड़ती है। भावना और अनुभूति का बोझ इतना अधिक हो

गया है कि काव्य की पंक्तियाँ कभी-कभी उसे सँभालने में असमर्थ प्रतीत होती है। अभिव्यंजना-प्रणाली पूर्ण रचनाओं की अपेक्षा कहीं अधिक जटिल और दुरूह हो गई, यहाँ तक कि कतिपय स्थलों पर सरलापूर्वक ग्रहण नहीं होता तथा रूपक स्पष्ट चित्र अंकित नहीं करते। बीच-बीच में एक आध कविताएँ अत्यंत सुंदर बन पड़ी है जिनमें कवयित्री की प्रतिभा ने उत्कृष्टता की चरम सीमा को छू लिया है, उदाहरणार्थ निम्नलिखित सुविख्यात रचना को लीजिए-

यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो।
रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण वंशी वीणा-स्वर,
गए आरती-बेला को शत शत लय से भर,
जब था कल कंठो का मेला,
बिहँसे उपल तिमिर था खेला,
अब मंदिर में इष्ट अकेला,

इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो। चरणों से चिह्नित अलिंद की भूमि सुनहली, प्रणत शिरों के अंक लिए चंदन की दहली,

झरे सुमन बिखरे अक्षत सित,
धूप अर्ध्य नैवेद्य अपरिमित,
तम में सब होंगे अंतर्हित,
सबकी अचित कथा इसी लौ में पलने दो।
पल के मने के फेर पुजारी विश्व सो गया,
प्रतिध्वनि का इतिहास प्रस्तरों बीच खो गया,
साँसों की समाधि सा जीवन,
मसि-सागर-सा पंथ गया बन,
रुका मुखर कण-कण का स्पंदन

इस ज्वाला में प्राणरूप फिर से ढलने दो। झंझा है दिग्भ्रांत रात की मूर्च्छा गहरी, आज पुजारी बने, ज्योति का यह लघु प्रहरी,

जब तक लौटे दिन की हलचल,
तब तक यह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभा जल,
दूत साँझ का इसे प्रभाती चलने दो।

नैराश्य की भावना प्रारंभ से ही महादेवी की रचनाओं में विद्यमान है तथा यह दिन-दिन गंभीर होती गई है। यदि यह केवल प्रारंभिक रचनाओं मे ही मिलती तो हम उसे केवल उचाट मात्र मानकर टाल देते, क्योंकि मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किशोरावस्था की मानसिक क्रियाओं में समुचित संतुलन न होने के कारण एक हल्की विषाद की भावना सहज ही उत्पन्न हो सकती है।

किंतु बात ऐसी नहीं है अतएव इस निराशा का कारण ढूँढ़ना आवश्यक हो जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस नैराश्य का कोई वैसा सुदृढ़ दार्शनिक आधार नहीं है जैसा आधुनिक यूरोपीय अस्तित्ववाद द्वारा प्रतिपादित नैराश्य का है। कतिपय विद्वानों ने महादेवीजी के जीवन वृत्तांत की ओर संकेत करते हुए इस निराशा को निष्फल मनोरथ से उद्भूत बताया है। पता नहीं इस प्रकार फ्रायड का अनुसरण करते हुए हम समीक्षा के अंतिम ध्येय तक पहुँच सकते है अथवा नहीं। अभी तक मनोविश्लेषण के आधार पर की हुई साहित्यिक आलोचना विशेष संतोषप्रद सिद्ध नहीं हुई है। फिर नैराश्य का कारण क्या है! 'नीरजा' से लेकर 'दीपशिखा' के रचनाकाल तक वैसे भी हिंदी कविता में दुःखवाद महादेवीजी के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाओं में भी प्रकट हो रहा था, किंतु महादेवीजी के नैराश्य को एक प्रकार का रोमांटिक विषाद मानना ही ठीक होगा। यह निस्संदेह किसी अंश में वैयक्तिक है, क्योंकि कवयित्री ने बार-बार लिखा है कि उनके मन में पीड़ा को निरंतर आमंत्रित करती रहती है, क्योंकि उनके प्रति उनके मनमें स्वाभाविक आकर्षण है। इसके अतिरिक्त रोमांटिक परिपाटी के कवियों की रचनाओं में दुःख और निराशा की निरंतर अभिव्यक्ति हुई है। इस संबंध में शेली, वाइरन,हाइने, रिल्के प्रभृत कवियों के नाम विशेष उल्लेखनीय है और हम महादेवीजी को भी उन्हीं की श्रेणी में रख सकते हैं।

यह प्रश्न बार-बार पूछा गया है श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता में व्याप्त किसी अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षण आध्यात्मिक महत्त्व रखता है अथवा वह केवल किसी एक विशेष मानसिक अवस्था की सूचना मात्र देता है। स्वयं कवयित्री के कथनों से यह ध्वनि निकलती है कि उनके मिलन की तीव्र आकांक्षा परोक्ष और अपरोक्ष, सीमित और असीम के एकाकार हो जाने की प्रक्रिया का ही द्योतक है। उन्होंने इस तर्क का खंडन भी किया है कि रहस्यवाद वास्तव में धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र की वस्तु है तथा काव्य में उसका अपना कोई स्थान नहीं है। आलोचकों में कुछ ने तो उन्हें रहस्यवादी माना है और यहाँ तक कह दिया है कि छायावाद के सभी कवियों में महादेवीजी का ही रहस्यवाद सबसे व्यवस्थित और सुस्पष्ट है। अन्य आलोचकों ने जिनमें महिलाएँ भी है उनकी रहस्य भावना को अस्वीकार करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि विफल प्रणय एवं अतृप्त वासना ने ही किसी अज्ञात प्रेमी के प्रति रहस्यात्मक आकर्षण का रूप ले लिया है। यह तो स्पष्ट ही है कि श्रीमती महादेवी वर्मा के वियोग की जलन न तो उतनी तीव्र ही है और न उतनी स्वाभाविक ही जितनी सेंट टेरिसा अथवा मीरा के हृदय की पीर थी। यह सत्य है कि उनको निरंतर मौन-निमंत्रण मिलता रहता है और उनका प्रियतम मेघ में, चपला में, तुहिन-कणों में, सुमन तथा समीर मे उनसे मिलने आता है। यह भी सत्य है कि कवयित्री वियोगजनित दुःख का अनुभव करती है तथा मिलने के सुखस्वप्न से आह्लादित होती है। इतना होते हुए भी यह मानना कठिन है कि महादेवीजी की अनुभूति उसी कोटि की है जैसी अनुभूति विभिन्न युगों में रहस्यवादी संत कवियों की होती आई है। परिपुष्ट आध्यात्मिक भूमिका का अभाव है। यह अनुभूति केवल मानसिक है और विस्मय, कौतूहल आदि भावनाओं के समकक्ष

ही बैठती है। रोमांटिक कवियों में दूरस्थ तथा अज्ञात के प्रति आकर्षण बार-बार ध्वनित हुआ है इसी की शैली ने पतंग का नक्षत्रों के प्रति आकर्षणा, रात्रि का प्रभात के प्रति आकर्षण और मनुष्य का दुःख की सीमा के बाहर किसी दूरस्थ सत्ता के प्रति आकर्षण के रूप में देखा है। यह रहस्यवाद नहीं है केवल रोमांटिक कल्पना एवं भावना का काव्य में प्रकाशन मात्र है। महादेवीजी की तथाकथित रहस्यभावना को इसके अतिरिक्त और कुछ मानना उचित नहीं है।

कवयित्री के काव्य में प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उन्होंने अपने लेखों में बताया है कि उपनिषदों से लेकर रवींद्रनाथ ठाकुर तक की प्रतीकवादी परंपरा से वे भली-भांति परिचित है और कबीर तथा सूफियों के काव्य का भी उन्होंने अनुशील किया है, प्रतीकवादी साहित्य के इतने विशद ज्ञान होने पर उसकी पद्धति की ओर खिचाव स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त उनकी कविता में उनकी तीव्र कल्पना ने पग-पग पर रूपकों और प्रतीकों का सफल निर्माण किया है जिससे अद्‌भुत सौंदर्य की सृष्टि हुई है। दो एक पंक्तियों में ही आँखों के सामने एक अत्यंत आकर्षक चित्र प्रस्तुत कर देने की देवी जी में अपूर्व क्षमता है। अनेक कविताओं में आदि से अंत तक एक ही रूपक का सांगोपांग निर्वाह भी हुआ है। चित्रों में छाया और प्रकाश का मेल तथा अनेक रंगों की सजावट रहती है। रेखाएँ कहीं स्पष्ट हैं और कहीं धूमिल, तस्वीर कभी साफ सामने आती है और कभी उस पर झिलमिल पर्दा पड़ा रहता है। यह सभी उपकरण और विशेषताएँ चमत्कार-उत्पादक है। एवं कवयित्री के यश तथा उनकी लोकप्रियता इन पर आधारित है, केवल एक बात खटकनेवाली है वह है वैविध्य का अभाव। एक ही प्रकार के रूपक बार-बार सामने आते है। रात्रि के अंधकार, प्रभात की स्वर्णिम आभा, संध्या की लाली, दीपक, नौका, पथिक आदि से संबंधित चित्रों की निरंतर पुनरावृत्ति हुई है। कल्पना एक सीमित दायरें में अपना काम करती है और कुछ इने-गिने उपादानों को ही काम में लाती है।

श्रीमती महादेवी वर्मा अपने युग की प्रमुख कवयित्री है। उनके काव्य से असंख्य जनो को आनंद मिला है। उन्होंने अनुपम सौंदर्य की सृष्टि की है तथा आधुनिक हिंदी-कविता को सक्ष्म विशेषताओं के आविर्भाव द्वारा समृद्ध बनाया है। उनके काव्य के मूल्यांकन से यही निष्कर्ष निकलता है कि उनकी रचनाएँ रोमांटिक कविता का उत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत करती है। वे व्यक्तिनिष्ठ, भावप्रवण, कल्पना प्रधान रचनाएँ है, जिनमें एक विशिष्ट प्रकार के नैराश्य तथा अज्ञात के प्रति एक रहस्यपूर्ण आकर्षण का समावेश हुआ है।

अवंतिका अंक अगस्त 1956, लेखक :- प्रो. रामअवध द्विवेदी

विषयांतर

श्री फणीश्वरनाथ रेणु

गाँव के पुस्तकालय में पठनागार है, जिसे कभी-कभी 'गप्प-घर' बना दिया जाता है।'' छुट्टियों में स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी गाँव आते हैं। नाटक-ड्रामा का प्रोग्राम बनाते है, मिटिंग करते हैं अथवा सभी अपने-अपने कॉलेज की उन लड़कियों की कहानी बारी-बारी से कहते सुनते हैं-जो हिम्मत बाँधकर, कमर कसकर उनके साथ-एक साथ पढ़ने के लिए कॉलेज में उत्तर पड़ी है। भिंमल मामा 'पठनागार' के एक कोने में बैठकर किसी बासी पत्रिका में डूबे रहते हैं। श्रवणशक्ति को हीन करने के लिए जेब से 'देव-कपास' निकालकर कान में डाल लेते हैं।...बोलते कम हैं, मगर 'दौरे' के दिनों में अनवरत 'बुदुर-बुदुर' करते रहते हैं। राह चलते लोगों से प्रश्न करते हैं, परिभाषा माँगते हैं और पचीस भाषाओं में सलाम करते हैं-'अंग्रेजी में गुड मॉनिंग, चाइनिज में चुंगचा, फ्रेंच में लॉतों, पश्त् में अकरम-बकरम.....आदि आदि।.... जाहिर है, दौरे के दिनों में पुस्तकालय और 'पठनागार' में उनके प्रवेश निषिद्ध घोषित कर दिया जाता है।

नान्हू चौकीदारी-मेरे गाँव का चौकीदार है। बचपन से ही देख रहा हूँ, उसकी याद आते ही मन के पर्दे पर एक सिलहुट छवि उतर आती है-गाढ़े लाल रंग की छाबा!! ......सरकारी नीली वर्दी और पगड़ी ही इस 'कंपलीमेंटरी कला' का कारण है-पिछले साल मेरे चित्रकार बंधु ने बताया। 'कंपलीमेंटरी कलर' इंप्रेशनिस्टों का आविष्कार है। फिर उसने 'कंपलीमेंटरी कलर' के बारे में समझाते हुए कहा था-किसी भी पत्र-पत्रिका में लाल रंग के मोटे अक्षर या ब्लॉक को देर तब देखने के बाद-सफेद दीवार पर नजर डालने के अक्षर अथवा ब्लॉक की हरी छाया दिखाई पड़ेगी।...एकदम विरोधी रंग...! चित्रकार मित्र ने मुझे एक भारी भ्रम से निकाल लिया! पिछले साल तक इसे मैं कोई 'अलौकिक व्यापार' मानता था!....नीली वर्दी का 'कंपलीमेंटरी कलर'-लाल रंग का नान्हू चौकीदार!

नान्हू की देह-उस नीली वर्दी के अंदर ही अंदर इतनी जर्जर हो चुकी है, हाल में मालूम हुआ। 'ढोला-कुम्मर' गीत-कथा गाते समय जब वह हाँफने लगा, तब समझा...मेरे लोक गीतों का यह जीवंत रेकार्ड अब जवाब दे रहा है।....इसके गीतों को 'टेप रेकार्ड' करवाने की बहुत दिनों से बात चल रही है-यानी मेरे मन में! और, एक स्केच करने की लालसा है, एक स्केच लिखने की इच्छा है।

सामने एक हल्का प्रकाश दे दूँ इस सिलहुट छवि पर! नान्हू की ऊँची किंतु मोक्षरी नाक पर प्रकाश का एक हल्का 'परस'!...धनी, किंतु छोटी मूँछों की आड़ में टूटी, उखड़ी दंत-पंक्तियाँ.. ..कलेसर का 'नड़हा कुँआ' देख है न? टूटी हुई ईंटों पर तरह-तरह के जंगल-झाड़ पैदा हो गए हैं. ....!! मगर यही उसकी सजीव मुस्कुराहट की मुद्रा है!! मूँछों के उस पार से झाँकती हुई हँसी.... लगता है, अभी-अभी उसने घुघली-घटवार की गीत-कथा गाकर समाप्त की है।

ऋणी हूँ मैं इस बूढ़े चौकीदार नान्हू ततमा का। ...कुमार बिजैभान, लोरिक, सलेस, घुघली-घटवार और होरिल सिंह के अलावा निलहे साहबों-मेमों की अनेक कहानियाँ उसने मुझे सुनाई हैं।....मोबलीं साहेब, एंथॅनी साहेब, मकफरसन साहेब की...! अपनी भरी जवानी में वह रहिकपुर कोठी के विलयम साहब के यहाँ काम करता था!....सैंकड़ों कहानियाँ नाच की, मगरमच्छ के शिकार की, साहेब-मेम की लड़ाई...बेहयाई की भी!! ...नान्हू का एक स्केच लिखना है। उसकी एक तस्वीर लेनी है और...!

'स्केच!...स्केच!!'-जब कभी स्केच लिखने बैठता हूँ-भिमल मामा की याद आ हाजिर होती है-'क्या लिखता है? स्केच!!'

मेरे किसी प्रकाशित स्केच को पढ़कर भिमल मामा ने गाँव के पुस्तकालय में, 'पठनागार' में-खूब रस लेकर बातें की थीं-'हिस्ट्री, स्टोरी, नॉवेल, ड्रामा, खंड-अखंड काव्य सब सुना, तब सुना रिपोर्टाचारज! और, अब यह स्केच! स्केच!! रेखा-चित्र, शब्द-चित्र!!...क्या अर्थ? परिभाषा बताओ!

भिंमल मामा के चेहरे पर भी रोशनी डाल दूँ?.....क्योंकि भिंमल मामा से पहले ही परिचय करा देना अच्छा है। स्केच लिखनेवाली कला का मूलमंत्र मैंने उन्हीं से प्राप्त किया है।.... ..आज भी वे स्केच का नाम सुनकर चिढ़ते हैं, भड़कते हैं और समय पड़ने पर 'युद्धमदेहि' कहकर ललकारते भी हैं-'नो!नो!नहीं, नहीं!! भिंमल को राजा अकबर मत समझो कि बीरबल ने बीच 'परपट मैदान' पर परिस्तान दिखा दिया!....साबित करो!' आदि आदि।

भिंमल मामा-सारे परानपुर गाँव के मामा। मेरा घर गाँव परानपुर.....इसलिए मेरे भी मामा। ...ग्रामवासी योगी हैं। तीस साल पहले पत्नी मुई, मुकदमेबाजी में परिवार की संपत्ति समाप्त की। दोनों बड़े भाई तो हिम्मत से गृहस्थी में लगे रहे-किंतु तीस साल की उम्र में ही भिंमल मामा बगैर मूड़ मुड़ाए सन्यासी हो गए।....असमय में ही सब बाल झड़ गए! कहते हैं, लगातार आठ वर्षो तक, उन्होंने अपनी मैट्रिक-फेल विद्या-बुद्धि से बहुत किस्म के उद्योग किए, धंधे फैलाए, मगर हाथ कुछ न आया।....पिछले बीस साल से उनके संबंध में और उनके दिमाग के बारे में तरह-तरह की फुलझड़ी कहानियाँ सुनी-सुनाई जाती है। गाँव के हर टोले के लोग, कुछ न कुछ, जानते हैं उनके बारे में।

-इंदरजाल पढ़ते-पढ़ते पगला गए मामू।

-न-न, झूठी बात। लग्गो बात। असले बात यह है कि 'मैटरी' में तीन बार लगातार फेल करने के बाद उनकी स्त्री ने...।

-धत्! सब वे-बात की बात। आदमी बड़ा काबिल है। जग 'सनकाहा' है। ज्यादा काबिल होने से ऐसा ही होता है। सच्ची बात मुँह पर कहता है, इसलिए किसी से पटती नहीं।

-महामूर्ख है।-पागल है।-कुकाठ है, आदमी नहीं। साठ ही उम्र है। ...हिसाब लगाकर देखा गया है, पिछले बीस साल में गाँव से 'पढुआ' लोगों के सात-आठ दल निकले। हर दल में एक-न-एक काबिल लड़का निकला। किंतु, भिंमल मामा से किसी काबिल की पटरी नहीं बैठी। .. .भिंमल-कृत 'भानुमती-पेटिका' के तीन सौ तेरासी प्रश्नों के उत्तर की बात तो दूर, उनकी एक पेटेंट पंक्ति-'होल्डिंग डाँग ओ सब्जीवाला' का सही अर्थ कोई नहीं बता सका। रामायण की तीन चौपाइयों की शंका का समाधान किसी से न हो सका। ...तो क्या किया? 'कोच्छ' नहीं किया।

गाँव के पुस्तकालय में पठनागार है, जिसे कभी-कभी 'गप्प-घर' बना दिया जाता है।'' छुट्टियों में स्कूल-कॉलेज के विद्यार्थी गाँव आते हैं। नाटक-ड्रामा का प्रोग्राम बनाते है, मिटिंग करते हैं अथवा सभी अपने-अपने कॉलेज की उन लड़कियों की कहानी बारी-बारी से कहते सुनते हैं-जो हिम्मत बाँधकर, कमर कसकर उनके साथ-एक साथ पढ़ने के लिए कॉलेज में उत्तर पड़ी है। भिंमल मामा 'पठनागार' के एक कोने में बैठकर किसी बासी पत्रिका में डूबे रहते हैं। श्रवणशक्ति को हीन करने के लिए जेब से 'देव-कपास' निकालकर कान में डाल लेते हैं।...बोलते कम हैं, मगर 'दौरे' के दिनों में अनवरत 'बुदुर-बुदुर' करते रहते हैं। राह चलते लोगों से प्रश्न करते हैं, परिभाषा माँगते हैं और पचीस भाषाओं में सलाम करते हैं-'अंग्रेजी में गुड मॉनिंग, चाइनिज में चुंगचा, फ्रेंच में लॉतों, पश्त् में अकरम-बकरम.....आदि आदि।....जाहिर है, दौरे के दिनों में पुस्तकालय और 'पठनागार' में उनके प्रवेश निषिद्ध घोषित कर दिया जाता है।....इस मामले में भिंमल मामा बहुत सभ्य हैं। बक-बक करते, खड़ाऊँ खट-खटाते, आसमान में हवाई जहाज उड़ानेवाले चालक को रामायण की पंक्तियाँ सुनाते भिंमल मामा ज्यों ही पुस्तकालय के आहाते में प्रवेश करते है-पुस्तकालयाध्यक्ष एक कार्ड-बोर्ड की तख्ती-जिस पर कुछ लिखा होता है-लेकर खड़ा हो जाता है-पुस्तकालय में आज आपका प्रवेश अनावश्यक है।'' आपकी कोई प्रिय पत्रिका 'पठनागार' में नहीं।

'नो पत्रिका! देन नो एडमिशन। पत्रिका नहीं हो प्रवेश भी नहीं।'-कह कर वे पास के पेड़ के नीचे जा जमते ।

किसी बात को बगैर परिभाषा के यदि गाँव में चलाना चाहेगा कोई, तो उसे भिंमला मामा चलने नहीं दे सकते।....'धूल किसी और की आँखों में झोंकना। भिंमल ने हिंदूपंच, मतवाला,

बलिदान-अंक, चांद का फांसी-अंक पढ़ा है।.....लिख तो ले कोई 'लाल चिट्ठी' की तरह किताब? चंद्रकांता के बाद कोई उपन्यास निकला ही नहीं। उपन्यास की गलत परिभाषा भिंमल को मत समझाओ!'

फिर, परिभाषा देने से ही पिंड नहीं छूटने को। वह परिभाषा यदि उनकी बुद्धि में नहीं बैठी तो-ले बलैया! सब कोई माने, माने-सुरूज-चनवाँ, तबहूँ न माने रामाँ-हमर भिंमल ममवाँ!

उपर्युक्त गीत की रचना हुए दस साल हो रहे हैं। गाँव के लड़कों ने इसे गा-गाकर पुराना कर दिया है, तो क्या, बात सोलहो आने सच है।...याद है, रिपोरटाचारज परिभाषा को भी लेकर भिंमल मामा भड़के थें, किंतु मैंने उन्हें समय पर समझा दिया था। कम शब्दों में, थोड़े से कठिन वाक्यों में, पाँच बार 'आप तो समझते ही हैं, आप तो पुराने पाठक है'- आदि को बैठा दिया। मामा खुश हो गए-'लिखो!लिखो! चलेगा!....मैं समझ गया, ह्वाट इज योर रिपोरटाचारज!

पिछले दस साल में पंद्रह बार लोगों ने समझा-भिंमल मामा से मेरी अब ठनी। दो तीन बार स्वयं मेरी स्थिति डाँवाडोल हो गई थी। एक बार निश्चय भी कर लिया था-लड़कर मुक्ति ले लूँ। बकबक-झकझक से छुट्टी मिले। क्योंकि एक बार झगड़ा कर लेने के बाद भिंमल मामा से 'प्रत्यक्ष वार्त्ता' का सौभाग्य नहीं प्राप्त होता। और, 'प्रत्यक्ष' बैठकर 'अप्रत्यक्ष वार्त्ता' करने की कला लोगों ने उन्हीं से सीखी है। इसे सभी मानते हैं।

प्रयागचंद की आदत है कि अपने मन के समाचार अथवा लेख के 'लेखांश' की वह जोर-जोर से पढ़ता है। पॉलिटिकल साइंस में एम.ए. की परीक्षा देकर आया, तो भिंमल मामा से लड़ाई हो गई। भिंमल मामा ने अधिकार पूर्ण लहजे में पूछा था-'पॉलटिक्स पढ़कर क्या करोगे, प्रयाग?.....बगैर पॉलटिक्स पढ़े ही तुम्हारे बाबू जी ने घर-घर में 'पार्टी-पॉलटिक्स' की लत्ती लगा दी है, जो फूल-फल रही है।.....'

प्रयागचंद ने धमकी दी थी-युवक सभा की अगली बैठक में सर्वसमति से प्रस्ताव पास करके 'काँके' ने भेजा तो कहना?

इसलिए, प्रयागचंद जब जोर-जोर से पढ़ता है, तब भिंमल मामा अपनी प्रिय वासी पत्रिका से निकल कर, एक बार चारों ओर देख लेते हैं, फिर दीवार की ओर देखकर जरा खाँसते हैं और जोर से बोल उठते हैं-'सांती से!सांती से!'

परमा, शिवमंगल, मनोहर अथवा अन्य सदस्य उनकी 'शांतिवाणी' का कभी 'केयर' नहीं करते हैं। प्रयाग, किंतु, कठोर जवाब दे देता है-'चिंतन करनेवाने कान में रूई लें सकते हैं।'

इस जवाब से भिंमल मामा जरा भी विचलित नहीं होते। पुनः अपनी प्रिय पुरानी बासी पत्रिका में डूब जाते है।....उनका कथन है, अप्रत्यक्ष वार्त्ता में बात दुहराई नहीं जाती!

हिसाब करके यह भी देखा गया है कि भिमंल मामा हर दो ढाई महीने के अंतर पर एक पूरा पखवारा 'पगलैट' बने रहते हैं। उन दिनों उनकी बातों को कोई बुरा नहीं मानता, उनके सवालों को कोई जवाब नहीं देता।

राँची के निकट का वह स्थान, जहाँ पागलों की चिकित्सा होती है। हिंदी, उर्दू, अँगरेजी, बँगला, राजस्थानी आदि की खिचड़ी करके जो भाषा बोलते हैं-उसका प्रयोग अखिल भारतीय पैमाने पर करके सफलता प्राप्त की जा सकती है, किंतु गाँव में तो प्रलाप-वाणी के सिवा उसका और कोई महत्व नहीं। शब्दों, चीजों और नामों की परिभाषा पूछते हैं अथवा किसी सामयिक राजनीतिक समाचार पर लोगों की राय बटोरते चलते हैं- 'कैन यू से ह्वाट पाकिस्तान वांट्स? कह सकते हो तुम कि क्या पाकिस्तान चाहता है? नो, नो! यू डोंट नो, आइ नो-वट नॉट टेल।तुम जानते नहीं, मैं जानता,पर नहीं कहूँ!'

बिना अनुवाद के एक पद नहीं बोलेंगे। अनुवाद तो आपने सुन ही लिया। अनुवाद पर भिंमल मामा की अपनी पक्की राय है...।

...सो, 'स्केच' शब्द की परिभाषा दिए बगैर मैं स्केच लिख रहा था, लिखता जा रहा था भिंमल मामा कैसे बर्दाश्त करें? 'पठनागार' में कड़क कर बोले थे-'आस्क हिम दि परिभाषा ऑफ स्केच, एंड हि विल प्रोड्यूस चूड़ा एंड अमावट, वन एंड हाफ सियर......अब आप अनुवाद कर ही सकते हैं! 'डेढ़ सेर चूड़ा अमावट' तो नहीं ....?

हमेशा की तरह जब उन्हें 'स्केच' की परिभाषा समझाने की चेष्टा की तो गर्दन हिलाते हुए बोले-'नो-नो! आइ एम नॉट किंग अकबर....।'

मानो, लड़ने की पूरी तैयारी कर चुके थे। मामा बोले-'सुनो जित्तन! शब्द-चित्र, रेखा-चित्र अथवा ....जो भी कहो। लेकिन, मैं नहीं मानता। चित्र, चित्र है और लेख, लेख! अक्षरों द्वारा, शब्दों द्वारा तुम चित्र प्रस्तुत करोगे?....बड़ा जगदीशचंदरा बासु समझने लगे हो खुद को। क्या समझ लिया है? सभी राजा अकबर है कि दिखा दिया परिस्तान!'

तीन महीने तक वे शिवजी के 'बसहा' की तरह गर्दन हिलाकर अस्वीकार करते रहें। .. ...प्रश्न मैं क्यों उठाने लगा? मुझे देखते ही खुद-ब-खुद वे स्केच पर अपनी राय देने लगते थे- 'नो, जिन नों! परिभाषा साफ नहीं करोगे, स्केच पढ़ाओगे भिंमल को? नो, नो!'

एक दिन हठत् मेरे घर पर आए। बैठे, फिर अपनी चादर के नीचे से एक पुरानी बँगला-पत्रिका निकालकर उलटने लगे। एक पृष्ठ खोलकर मेरे सामने रखते हुए बोले- 'हाट्स दिस? है यह क्या?'

-स्केच है। नंदलाल बसु का!

'स्केच' का नाम है-पड़ोसी। गाँव की गली का एक कोना है, कुछ औरतें एक साथ बैठकर हुक्का पी रही है, एक मर्द 'बैंहगीं' में कुछ लटकाकर जा रहा है, दो मुर्गे लड़ रहे है, छोटे-छोटे 'चूजे' गेंद की तरह 'रॉल' कर रहे है।....एक कुत्ता घूरे पर लेटा है। स्केच को गौर से देखने लगा। भिंमल मामा ने, अचानक उत्तेजित होकर कहा-' इसे तुम शब्दों-द्वारा प्रस्तुत करोगे?....खेल समझा है?...देखो जित्तन! बात समझो!...देखेन-वाले की नजर में चित्र एक ही बार समा जाता है। है न? लेकिन? पढ़ते समय तो पंक्ति-पंक्ति पकड़कर घूमना पड़ेगा पाठकों को। खंड-खंड से तब टोटल, तब ग्रैंड टोटल।.....किसको है इतना धीरज?.......कौन समझेगा?

समझनेवालों की कमी नहीं होगी, अथवा इसी टाइप के किसी जवाब से लड़ाई मोल ली जा सकती थी। किंतु, मैं जरा चौंक गया। भिंमल मामा की बात में मुझे सच्चाई की गंध लगी-वन तुलसी की तरह!...वन-तुलसी की गंध जरा.....कड़वी भी होती है।

दर्शक की सुविधा? पाठक की असुविधा?....कितना सच?

मुझे गुमसुम देख मामा का उत्साह बढ़ता ही गया-और तब से 'अनवरत' बोलने लगे-'.. .और दिस आर्टिस्ट दि ग्रेट नंदो लालो को पूछो जाकर। इसे 'प्रद्युस' (प्रोड्युस और प्रस्तुत को मिलाकर भिंमल मामा का शब्द) करने में हाउ-मच मंड-लेबर करना पड़ा है।....स्पष्ट देख लो, विषय छोड़कर 'विषयांतर' में गया है। विषय है-पड़ोसी। जो, दो लड़नेवाने मुर्गे हैं। 'विषयांतर' हैं ये चूजे, यह बँहगीवाला....। सूखी झिंगुनी का स्पंज देखा है न?...वैसी ही रेखाओं से बेकार इधर-उधर काम किया है। मगर 'विषय' को जाननेवाला ही विषयांतर से अपने विषय को स्पष्ट करता है! जित्तन, आइ से, मैं कहता हूँ- यू कांट डू...भाषा द्वाग...?'

भिंमल मामा बकते-झकते चले गए, तो मैंने फिर एक बार उस 'स्केच' को देखा-लड़ते हुए मुर्गो की आवाज स्पष्ट सुनाई पड़ी!....गली की गंध नाक में समा गई, मुर्गो की 'झटपटाहट' से उड़नेवाली धून के साथ.....!

.......शब्द! नंदलाल बसु के पास शब्द नहीं है, मेरे पास शब्द है। ....उनके लड़ते हुए मुर्गों की आवाज मैं सुन सका। शब्द-शिल्पी क्या शब्दों-द्वारा इसे और स्पष्ट नहीं कर सकेगा?

फिर उसी दिन से मेरे शब्द-चित्रों में, स्केचों में, कहानियों में मुर्गे बोलने लगे, मोटर के हार्न, गाड़ी सीटी, ढोलक के ताल-शब्द उतरने लगे।...कहीं इसकी अधिकता से कान की झिल्ली बंद हो सकती है, यह अब अनुभवों से जान रहा हूँ।...न-न! पाठकों की असुविधा मैं जानता हूँ, समझने की चेष्टा करता हूँ। अपनी आदतों की अच्छाई-बुराई से सतर्क हूँ, क्योंकि स्वयं एक पाठक हूँ।............पढ़नेवाले का धैर्य?..........

भिंमल मामा स्केच तो नहीं पढ़ते, कहानियाँ मेरी खोजकर अवश्य पढ़ लेते हैं- साल में एकाध यदि कहीं निकलती है।....भिंमल मामा बासी पत्रिका ही पढ़ते हैं। दैनिक समाचार पत्र के बारे में उनका कहना है- 'दैनिक खबर मत पढ़।...जैसा वह है, वैसा मैं हूँ। जो तुम्हारे गाँव की खबर, वही संसार का समाचार।...गाँव की पार्टी-बंदी में फरीक अव्वल एक मूरख-गँवार आदमी है, दूसरा संभवतः जाहिल। गाँव के झगड़े में जैसी बेवकूफी-भरी बातें, संसार में झगड़नेवाले के नेताओं की बातें मिलाकर देखो।...मिलाकर देखा, एकदम सही।'

भिंमल मामा को मन-ही-मन प्रणाम किया!...गाँव के अन्य लड़कों से उनका झगड़ा जारी ही रहे, इसी की चेष्टा करता रहा। क्योंकि मुझे भय हुआ, भिमंल मामा दूसरों को भी मूलमंत्र दे देंगे।

....भिंमल मामा साइकिल्स (चक्र) में एक-डेढ़ सौ कहानियाँ हैं। मैं सिर्फ स्केचवाली कहानी सुना रहा हूँ। नान्हू चौकीदार का स्केच तो आज होने से रहा। 'विषयांतर हो ही गया है तो और दो कड़ी।...मोटी रेखाओं में कामकर दूँ- आपको सुविधा होगी।

नई प्रयोगवाली कहानी लिखते पाँच-सात साल हो रहे हैं, चार साल पहले एक दिन भिंमल मामा आए और बोले- 'वाह! वाह! गूड-गूड-भेरा गूड! गूड-वेटर-वेटर!.... अच्छा, बहुत अच्छा! सुंदर बेहतर-सर्वश्रेष्ठ!....खूब लिखा-'मोरंग बनिजरवा।' हू-ब-हू, एक्जैक्ट!

मुझे स्मरण हुआ, भिंमल मामा साइकिल (चक्र) में मोरंग (नेपाल) की लदनीवाली कहानी भी है। वही, एकबार उन्होंने सोचा कि स्वावलंबी होने के लिए गाड़ी की बहलमानी क्या, लाट साहब की दीवानी क्या, सब बराबर।...घर से पूँजी लेकर, गाड़ी बैल लेकर निकले। मोरंग से धान और लकड़ी लाकर प्रोफिट करने लगे।....लंबी कहानी है।

'समझे जित्तन! ठीक तुम्हारा कहानी का झबू गाड़ीवान की तरह हम भी मोरंग की तराई में, गाँवों में घूमा है।...साखू पेड़ की नीचे, धुनी जलाकर 'बसेड़ा' किया है।....बाघ को कनस्तर बजाकर भड़काया है...एकदम एक्जैक्ट। मोरंगिया जोंक तुमने कहाँ देखा, जित्तन? साला! ठीक पत्तों के नोंक पर आकर लकपकाता रहता है...।'

समझ गया-कहानी उतरी है-सही!....भिंमल मामा को मन-ही-मन प्रणाम किया। वे पुरुष द्वारा लिखी कहानी को पुल्लिंग कहते हैं, कहानी तो लेखिका की होती ही है।

एक-एक शब्द के लिए झगड़नेवाले भिंमल मामू ने बहुत से शब्दों की रचना की है। उनके साथ उनके शब्दों में बातें करने से वे बहुत खुश होते हैं। ....फिर, गलती से यदि कभी गलत निकला, बस भिंमला मामा उठकर खड़ाऊँ खटखटाते-ठीक नाक की सीध...।

...दुखांत नहीं, दुखदायेंड। सुखांत नहीं, सुखदाता। टेलीग्राम को तार कहिए, वे नहीं कहेंगे-ट्रा। हाँ, टेलीग्राम को 'ट्रा'। इसकी वैज्ञानिकता सुनिएगा?....

आप को एक-दूसरे शब्द की कहानी बताऊँ। मेरे जिले में 'कामत' का प्रचलन खूब है। कभी 'कामत' शब्द की जाति, धर्म, नस्ल पर ध्यान नहीं दिया। लिखना पड़ा, लिख दिया-मोहनपुर कामत पर कोई कामती स्थिर होकर नहीं रहे, फिर भी एक सौ मन धान हुआ।...आपने नहीं समझा? घर से दूर, दूसरे गाँव में जमीन खरीद कर खेती करने के लिए जो घर बनाया जाता है, उसे 'कामत' कहते हैं। फार्म कह लीजिए।....कामत की एक खास विशेषता है कि वहाँ स्त्री के साथ आप नहीं रह सकते। घर का कोई 'समांग' भी कमतिया हो, तो भी नहीं।....फिर एक-एक किसान के पास दर्जनों 'कामत;।

तो भिंमल मामा ने प्रश्न उपस्थित किया एक दिन-'कामत की परिभाषा? उत्पत्ति?

मैंने कहा-'संभवतः यह उर्दू शब्द है।' हमारे इलाके में मुसलमान जमींदारों के कई 'कामत' थे।'

'उँहु! रौंग। गलत। सही अर्थ मैं जानता हूँ एक महीने का समय देता हूँ। पटना जाते हो, लिख भेजना पंडितों से बूझकर। देखूँ, सही अर्थ बता सकता है। या नहीं।'

पटने आकर भूल गया। एक कार्ड मिला भिंमल मामा का -ह्वाट्स कामंत?

उर्दू के एक मशहूर कथाकार से पूछा। बोले-यह तो अरबी का शब्द है अकामत। इसका अर्थ है- रहने की जगह। इसी से कामत हुआ है। ...भिंमल मामा को कार्ड लिख दिया।

दूसरे दिन एक पाली जाननेवाले मित्र ने कहा 'कामती' का अर्थ पाली में होता है-खेती की रखवाली करनेवाला। इसी से कामंत हुआ होगा। ...भिंमल मामा को दूसरा कार्ड लिख दिया। ...दो महीने के बाद घर गया तो भिंमल मामा हँसते हुए मिले-'बोथ रौंग। दोनों गलत। न अकामत, न कामंत। सही शब्द है- कामांत। पुराकाल में, बड़े गृहस्थ के परिवार में किसी व्यक्ति को यदि किसी कारणवश स्त्री-वियोग सहना पड़ता, तो वह अपने 'काम' का अंत कर देता था। परिवारवाले गाँव से बाहर उसके लिए 'कामांत' बनवा देते थे। वहीं रहकर वह खेती-बारी देखता था! ऐसे कामांतियों-द्वारा-लगाई हुई फसल....।

स्केच की बात कहूँ। एक महीना पहले की घटना है। भिंमल मामा आकस्मिक ढंग से एक दिन लापता रहे। मालूम हुआ कि बीमार है और भी आश्चर्य हुआ। कभी तो उन्हें बीमार होते नहीं देखा गया। ....तीन दिनों तक जब घर से नहीं निकले, तो गाँव के लड़कों ने समझा कि भिंमल मामा क्या चीज हैं। ...प्रयाग, शिवमंगल, मनोहर आदि पूछने गए थे! भिंमल मामा की पड़ोस की मौसी ने कहा-पगलवा तो बीमार है, बबुआ!........भिंमल मामा अपनी झोपड़ी के अंदर से ही बोले-'नो एडमिशन। पेरियड मेडिटेशन।...शिवमंगल कहता है, बोले-मेडिटेशन। मनोहर कहता है -नहीं-नहीं, मामा बोले-मेडिसिन।

दूसरे पहर, मैं गया। बंद दरवाजे पर हल्की थपकी दी। दरवाजा खुल गया। देखा, भिंमल मामा शीर्षासन करने की तैयारी में लगे हैं-क्या है मामा? क्या समाचार?

'आओ जित्तन। मैं तुम्हें बुलानेवाला था।...गूड, गूड, वेरी-गूड! गूड-वेटर-वेस्ट।.... सर्वश्रेष्ठ! ....तुम्हारा कहानी पढ़ा। पढ़ा ही नहीं। बड़ा जुल्म किया तुम्हारा कहानी।...आइ विल ईट फीस। मैं खाऊँगा माछ।....नॉट मीट। नहीं, मांस।'-

'ऐ ?....क्या बात है?'

भिंमल मामा कंठीधारी वैष्णव तो नहीं थे-किंतु 'मांस-मछली' शब्द का उच्चारण भी नहीं करते थे। और, अचानक....।

'पूछता, क्या बात है? तुम्हारा कहानी जादू डाला। उसमें एक मछली मारनेवाला की बात है। ...डिस्टिक्ट बोर्ड पुल के नीचे, काली कोसी में मैं भी 'बँड़सी' लेकर मछली मारता था।... .मांगुर, सौल, बड़ी-बड़ी भुनचटटी....'बँड़सी' में।...एकदम एक्जैक्ट....।' -भिंमल मामा ने अपने 'छिट्टे' (बुकसेल्फ) से पत्रिका निकाली-'चाँद-सितारे'। अपने जिले की मासिक पत्रिका है 'चाँद-सितारे'।...इस अंक में मेरी 'माछ का झेल' प्रकाशित हुआ था।...बाहर की किसी पत्रिका में इसलिए भी नहीं दिया कि मछली की बात थी।....

भिंमल मामा ने जरा उत्तेजित होकर कहा-मैं वैष्णव नहीं। आत्मा नहीं माँगता था, नहीं खाता था। तुम्हारी कहानी पढ़ने के बाद-मेरा आत्मा डोला है। मैं सपने में मांगुर मछली देखता हूँ, पकड़ता हूँ....खाता हूँ। मैं मछली खाऊँगा। मैं कल से 'बँड़सी' की लग्गी लेकर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड पुल के नीचे जाकर बैठूँगा।... अहा! क्या बताऊँ।...एक्जैक्ट, उसी तरह! सेंवार से भरी काली कोसी, करमी के खिले हुए असंख्य फूल, पानी में गोता मार कर मछली पकड़नेवाले चिड़िया -माछ लोकनी! टिटही की आवाज......बगुले का ध्यान! एक्जैक्ट। पानी में तैरती हुई मछलियाँ! मछलियाँ!'

तीस साल का वैष्णव मेरे कारण फिर से पथभ्रष्ट होने जा रहा है...गाँव के लड़के पागल हो जाएँगे, जब भिंमल मामा बँड़सी की लग्गी लेकर निकलेंगे। ...फिर आदत लगी ताक पुस्तकालय, वाचनालय का सपना भी न देखेंगे।....जब भिंतल मामा ही नहीं आए वाचनालय में तो....क्या बैठेगा कोई एक क्षण पुस्तकालय के अहाते में।....सब दोष मुझे लगेगा।

मैं घबरा गया। भिंमल मामा ने मुझे दिखाया, उन्होंने इन तीन दिनों में सब कुछ तैयार कर लिया है। 'बँड़सी' की डोरी कैसी होनी चाहिए, मुझे समझाने लगे।....'चाँद-सितारे' के संपादक पर गुस्सा हो आया। 'माँछ का झोल'-एक छोटा स्केच था। संपादकजी ने कुछ लिखा ही नहीं। भिंमल मामा पढ़गए, इसी से।......विषय-सूची में देखा, लिखा था-माछ का झोल (स्केच)। तुरंत, मेरे मुँह से निकल पड़ा-'मामा। यह तो स्केच है। आप कैसे पढ़ गए?

'धत्! ...झूठी बात। स्केच नहीं, कहानी है।

'देखिए। क्या लिखा है विषय सूची में।'

'ग्रेट आउट। जाओ बाहर। क्रिमनल, फौजदार!.... तुमने मुझे मछली खिला दिया धोखे में। ...यू ...यू...वेट! ठहरो....!'

जीवन में पहली बार देखा-भिंमल मामा को आक्रमण करने की चेष्टा करते। मैं उठा खड़ा हुआ तो, वे चुप हुए। फिर बोले-'जित्तन, डोंट...डोंट!'

मैं चुपचाप चला आया। भिंमल मामा रो पड़े थे!!

भिमंल मामा से मेरी लड़ाई है। अब अप्रत्यक्ष वार्त्ता होती है। मैंने उनसे संधि करने की सैकड़ों बार चेष्टा की, पर बेकार!

कल गाँव से समरेंद्र आया है। कह रहा था- भिंमल मामा अब आक्रमण करने लगे हैं। अपनी भाषा भूल कर अब सीधे ग्राम्य शब्दों में गाली देते हैं। ....दारोगा साहब तीन बार आए हैं।

समरेंद्र ने यह भी बताया कि दौरा के पहले भिंमल मामा ने समरेंद्र की नई कविता सुनकर कहा था-

हतो तुलसूरवींद्र छंद रटि के
अब समरेंद्र करे-हरफंद-डटि के।

मैं अपने को दोषी समझता हूँ। भिंमल मामा की आत्मा को मैंने ही 'चलायमान' कर दिया।....देवता! मुझे क्षमा करें। दोष, थोड़ा 'चाँद सितारे' के संपादक के सिर थोपकर भी मुक्ति नहीं...।

और, भिंमल मामा के नाम की भी कहानी है। नाम-विजयमल्ल सिंह। 'सिंह' को मामा ने सन् उन्नीस सौ बीस में ही उड़ा दिया। लिखने लगे-व्ही. मल्ल, म.म.। चूँकि, भिंमल-कृत 'भानुमती पेटिका' के सभी प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता, इसलिए, उन्होंने महामहोपाध्याय जोड़ना शुरू किया। संक्षेप में...म.म.। बाद में नाम हुआ, भिंमल मामा....। वे किसी के मामा नहीं, और न.....। ...नान्हू चौकीदार का स्केच आज नहीं हो सका!

अवंतिका अंक जनवरी 1956, लेखक :- श्री फणीश्वरनाथ रेणु

समकालीन कथा साहित्य में सामाजिक प्रतिरोध पर विचार रखने के लिए सेमिनार में मंचासीन प्रोफेसर कलानाथ मिश्र, मणिपुर विश्वविद्यालय से डॉक्टर ए. विजयालक्ष्मी, भारतीय भाषा केंद्र जेएनयू से प्रोफेसर वंदना झा, महाविद्यालय की प्राचार्य प्रोफेसर मीरा कुमारी, हिन्दी विभाग की अध्यक्ष प्रो. रेखा मिश्रा आदि।

जे.डी. वीमेंस कॉलेज, पटना में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में प्रोफेसर कलानाथ मिश्र का स्वागत करती हुई महाविद्यालय की हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. रेखा मिश्रा साथ में मंचासीन प्राचार्य प्रो. मीरा कुमारी, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय मधेपुरा से प्रोफेसर दीपक गुप्ता आदि।

RNI No. : BIHHIN05272
ISSN 2349 - 1906
Postal Registration No. : PT-7C

Design & Print @ Gyan Ganga Creations # 09334110685